[illegible]हाभारत

शान्ति, [illegible], अश्वमेध, आश्रमवासिक,
मौषल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहणपर्व्व
समाप्त।

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास-कृत मूल संस्कृतसे
योग्य पण्डितोंके द्वारा
[illegible]नुवादित
और
११७।१ बहूबाजार ष्ट्रीट, कलकत्तेसे
श्री शरच्चन्द्र सोमके द्वारा
प्रकाशित।

द्वितीय संस्करण।

VOL. [illegible]

कलकत्ता;
श्री माणिकचन्द्र [illegible]कवर्त्तीके द्वारा
११७।१ बहूबाजार ष्ट्रीट,—[illegible] मेशिन प्रेससे मुद्रित।

राजधर्म्म-प्रकरण ।

नारायण, व्यासदेव और सरस्वती प्रणाम करके महाभारत पुराणको ...हे ।

...महाराजा धृतराष्ट्र, विदुर, भरत-कुलकी ...और पाण्डव लोग दुर्य्योधन आदि मृत ...हृद पुरुषोंकी जलदानादिक क्रिया विधि-...पूर्वक करके शोकित चित्तसे एक महीनेतक नगरके बाहर गङ्गा तीरपर वास करने लगे। उस ही समय साधुओंमें श्रेष्ठ महात्मा नारद, वेदव्यास, देवल, देवस्थान, और कण्व आदि ...सिद्ध, ...र्षि, महर्षि त... उन महात्माओंके ...सुखि प्रिय ...निवृत्त धर्मराज युधि-...रके समीप उपस्थित हुए साधु, पवित्र, ...बुद्धिवाले तथा वेद जाननेवाले, गृहस्थ और ...क ब्राह्मणोंने आकर कुरुसत्तम युधिष्ठि-...र्शन किया। अनन्तर वे सब वहांपर ...। महर्षि लोग यहां उचित रीतिसे ...कर सुन्दर आसनोंपर बैठ गये। इसी ...करोड़ों हजारों ब्राह्मण लोग उस समयके ...र पूजा और दान ग्रहण करके पवित्र ...शीके तटपर स्थित हुए और शोकसे ...राजा युधिष्ठिरको घेरकर उनके चारों ...बैठके धीरज धारण कराते हुए उनके सङ्ग ...लाप करनेमें प्रवृत्त हुए। देवऋषि नारद ...पायन आदि मुनियोंके सङ्ग मिलकर ...युधिष्ठिरसे उस समयके अनुसार यही वचन बोले, महाराज! आपने अपने बाहुबलके प्रभाव और कृष्णकी प्रसन्नतासे धर्म्म-पूर्व्वक इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया है; प्रारब्धसे ही आप इस महाभयङ्कर संग्राममें जीवित मुक्त हुए हैं; इससे इस समय आप क्षत्रिय धर्म्ममें रत होकर सन्तुष्ट तो हैं? आप युद्धभूमिमें सम्पूर्ण शत्रुओंको पराजित करके इस समय इष्टमित्रोंके आनन्दको बढ़ाते तो हैं? आपने इस समय सम... राज-लक्ष्मी प्राप्त की है, इससे शोकादि ... तुम्हारे चित्तको दुःखित तो नहीं करते हैं?

राजा युधिष्ठिर देवर्षि नारदके ऐसे वचनोंको सुनकर बोले, हे भगवन्! कृष्णके बाहुबलके सहारे ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता और भीम अर्जुनके पराक्रमसे मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया है, यह ठीक है; परन्तु लोभके वशमें होकर जातिके पुरुषोंके नाश करनेसे, मेरा चित्त सदा दुःखित रहता है। देखिये सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके पांचो पुत्र,—इन सम्पूर्ण प्रिय पुत्रोंके युद्धमें मारे जानेसे मेरी विजय लाभ भी पराजयके समान हो ...म...हो रही है। मेरे भाईकी भार्या वृष्णि-कुल-नन्दिनी सुभद्रा मुझे क्या कहेगी! और ...तोने ...ताप...वाले, मधुसूदन कृष्ण भी जब यहांसे द्वारकापुरीमें जायंगे, तब उनके द्वारिकावासी लोगोंने भी क्या कहेंगे? देखिये! हम लोगोंके प्रियकार्य्योंमें सदा

सुनिये। मेरी माता कुन्ती देवीने ... गोपनकी थी, उससे मैं इस समय अधिक दुःखसे व्याकुल होरहा हूं। जो बुद्धिमान इस पृथ्वीके बीच अद्वितीय रथी कहके विख्यात थे, जिनकी गति और पराक्रम सिंहके समान था। जो दश हजार हाथियोंके समान बलशाली, दयावान, दाता और सदा व्रताचरणमें रत, अत्यन्त पराक्रमी, निर्भय-चित्तवाले, क्रूड़-स्वभाव, मानी और धृतराष्ट्र-पुत्रोंके आश्रय स्वरूप थे। जो अद्भुत पराक्रम प्रकाशित करनेवाले कृती, चित्रयोधी, शीघ्र अस्त्र चलानेमें समर्थ महाबलवान और प्रतियुद्धमें हम लोगोंके चित्तमें संशय ...त्पन्न करते थे; वह हम लोगोंके भ्राता ... और गुप्त रूपसे उन्होंने कुन्तीके गर्भसे ...न्न हुए थे। आज सब पुरुषोंको जल देनेके समय कुन्तीने कहा, कि कर्ण सूर्य्यके प्रभावसे मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए थे। माताने ऐसे गुणवा... पुत्रको जन्मते ही मञ्जूषामें रखकर गङ्गाके स्रोतमें बहा दिया था। हे ऋषिसत्तम! जिसे सब कोई सूतवंशमें उत्पन्न हुआ समझते थे, वह कुन्तीके ज्येष्ठपुत्र हम लोगोंके सहोदर भाई थे। हे महर्षे! मैंने बिना जाने ही जो अपने भाईका बध किया है, इस ही कारण मेरा शरीर शोकरूपी अग्निसे इस प्रकार भस्म हुआ चाहता है, जैसे अग्नि रूईको भस्म कर देती है। कर्ण हम लोगोंके ... भ्राता थे, इस वृत्तान्तको मैं तथा भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव कोई भी नहीं जानते थे; परन्तु श्रेष्ठ व्रत करनेवाले कर्ण हम ...ओंको अपना भ्राता ही जानते थे। मैंने सुना ... मेरी माता कुन्ती देवी हम लोगोंके ...

...दय... था, कि "मैं इस उपस्थित दु... नको किसी भांति परित्याग न कर... यदि मैं ऐसा कर्म्म करूं तो मेरी नीच... सता और कृतघ्नता प्रकाशित होगी ... करके यदि मैं तुम्हारे मतके अनुसार ... रके सङ्ग सन्धि करूं, तो सब कोई मुझे ... भयभीत हुआ समझेंगे; इससे मैं कृष्णके ... अर्ज्जुनको पराजित करके पश्चात् युधि... सङ्ग सन्धि करूंगा।" महाबाहु कर्ण... वचनको सुनकर अन्तमें माताने उनसे ... वचन कहा, "हे पुत्र! तब तुम केवल अर्ज्जुनके ही सङ्ग युद्ध करना; और अर्ज्जुनके अतिरि... मेरे अन्य जो चार पुत्र हैं, उन्हें युद्धमें अभयदान करो!" उस समय कर्ण हाथ जोड़के भयसे कांपती हुई माताने यह वचन बोले,—"हे देवी! यदि तुम्हारे ... चारों पुत्र ... करके असमर्थ होकर ...रे वशमें भी होजावेंगे, तो भी मैं तुम्हारे अन्य चारों पुत्रोंका प्राण नाश न करूंगा। इस युद्धमें मेरे अथवा अर्ज्जुनके ... जानेपर भी तुम्हारे पांच पुत्र उपस्थित र... इसमें कुछ सन्देह नहीं है।" अनन्तर ... कल्याणकी इच्छा करनेवाली मा... कर्णसे कहा "हे पुत्र! ... तुम ... कामनाकी अभिलाषा करती हो उस ... व...ती दुर्य्योधनादिकोंके कल्या... सा... कार्य्यको करनेमें प्रवृत्त रहो; उसविषय... कुछ भी आपत्ति नहीं है"—... मेरी माता कुन्तीदेवी कर्णको परित्याग क... अपने गृहमें चली आई थी। ... हम लो... वही सहोदर भ्राता महाबाहु कर्ण अप... अर्ज्जुनके हाथसे मारे गये हैं, पर...

…त्तान्तको कुन्तीदेवी, अथवा कर्ण,—इन …ने किसीने भी प्रकाशित नहीं किया था, और … मेरे सहोदर भ्राता महाधनुर्द्धर कर्ण …ने भाई अर्ज्जुनके हाथसे मारे गये। हे …त्तम! मैंने माताके मुंहसे इस समय वह …न्त सुना है, कि कर्ण हम लोगोंके ज्येष्ठ …ता थे। जबसे मैंने इस वृत्तान्तको सुना … तभीसे भ्रातृहत्याके कारण शोकसे मेरा …त्त अत्यन्त व्याकुल होरहा है क्योंकि कर्ण …र्ज्जुनकी सहायतासे मैं देवतोंके सहित …न्द्रको भी जीत सक्ता। कौरवोंकी सभाके …ीच जब धृतराष्ट्रके दुष्ट पुत्रोंने हम लोगोंका बहुत अपमान किया उस समय अकस्मात् मेरे चित्तमें क्रोध उत्पन्न हुआ था, परन्तु कर्णके दोनों चरणोंको देखते ही शान्त होगया; क्योंकि कर्णके दोनों चरण मेरी माता कुन्ती-देवीके चरणोंके समान ही थे। उनके पांव मेरी माताके पांव समान कैसे हुए, इस बातको मैंने बहुत ही खोज की परन्तु मुझे कुछ भी न मालूम हुआ। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ आप सब बातोंके जाननेवाले हैं और संसारकी भूत भविष्य कालकी सम्पूर्ण घटनाओंको जानते हैं, इससे मैं आपसे पूछता हूं, कि मेरे भाई कर्णके रथके चक्रको पृथ्वीने क्यों ग्रास किया था, और किस भांतिसे उन्हें शाप मिला था? मैं इन सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे आप इस विषयके सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन कीजिये।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधि-ष्ठिरने ऐसा वचन कहा तब देवर्षि नारदने कर्णके शापके विषयमें जो कुछ घटना हुई थी, उन सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको कहना आरम्भ किया।

नारद मुनि बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है युद्धभूमिमें अर्ज्जुन और कर्णसे कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं थे, परन्तु मैं तुम्हारे समीप देवताओंसे भी गोपनीय वृत्तान्त वर्णन करता हूं तुम चित्त लगाके सुनो, हे राजन्! किसी समय ब्रह्माने अपने मनमें चिन्ता की, कि ये सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष शस्त्रसे मरकर किस भांति स्वर्गलोकमें गमन करेंगे, ऐसा ही विचार करके कुन्तीकी कन्या अवस्थामें क्षत्रियोंके बीच शत्रुता रूपी अग्नि प्रगट करनेवाला एक गर्भ उत्पन्न किया! उस गर्भसे जो बालक उत्पन्न हुआ था वही समयके अनुसार सूतपुत्र कहके विख्यात हुआ और अङ्गिरा वंशमें मुख्य द्रोणाचार्य्यके निकट धनुष विद्या सीखा था; परन्तु वह भीमसेनके बल, अर्ज्जुनके अस्त्र लाघव, तुम्हारी बुद्धि और नकुल, सहदेवके विनय, विशेष करके बालक अवस्थामें श्रीकृष्णके साथ अर्ज्जुनकी मित्रता और प्रजाका तुम्हारे ऊपर अनुराग देखकर दुःखित हुए थे। अनन्तर कर्णने भी बालक अवस्थामें दुर्य्योधनके साथ मित्रता की, परन्तु दैवी संयोगके कारण वह तुम लोगोंके द्वेषी हुए। तिसके अनन्तर कर्णने अर्ज्जुनको धनुर्वेदमें सबसे श्रेष्ठ देख, गुप्त-रीतिसे द्रोणाचार्य्यके निकट जाकर कहा, हे आचार्य्य! मैं रहस्य, प्रयोग और प्रतिसंहारके सहित ब्रह्मास्त्र सीखनेकी इच्छा करता हूं क्योंकि मेरे मनमें अर्ज्जुनके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषा है! पुत्र और शिष्योंके ऊपर आपकी समान ही प्रीति है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, जिसमें बुद्धिमान क्षत्रियोंमें कोई कोई मुझे अकृतास्त्र न कह सके।

द्रोणाचार्य्यने कर्णके वचनोंको सुनकर उसके दुष्टताके विषयको जान लिया, और अर्ज्जु-नके पक्षपाती होकर यह वचन बोले,—व्रता-चरण करनेवाले ब्राह्मणों और तपस्यामें विद्या-

वान् चत्रियोंको ही ब्रह्मास्त्र जानना उचित है; दूसरी जातिके मनुष्योंको ब्रह्मास्त्र सीखनेका अधिकार नहीं है। जब द्रोणाचार्य्यने ऐसा उत्तर दिया, तब कर्ण उनका सम्मान करते हुए उनकी अनुमतिसे महेन्द्र पर्व्वत पर बास करनेवाले परशुरामजीके निकट गये; कर्णने परशुरामके समीप जाके शिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, कि "मैं भृगुवंशीय ब्राह्मण हूं।" परशुरामने उनका नाम गोत्र और शुभागमनका विषय पूंछ कर आदर पूर्व्वक उन्हें अपने आश्रम पर ठहराया। कर्ण प्रसन्न चित्तसे वहां रहने लगे, वह जब परशुराम जीके निकटमें जाकर महेन्द्र पर्व्वत पर निवास करने लगे, तब धीरे धीरे देवता गन्धर्व, यक्ष और सब राक्षसोंके संग उनसे मिलाप हुआ। वहां पर रहके कर्णने भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ परशुराम जीसे विधिपूर्व्वक सम्पूर्ण रक्षा अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या सीख ली, और देवता, दानव तथा राक्षसोंके अत्यन्त ही प्रीति पात्र हुए। अनन्तर किसी समय सूर्य्यपुत्र कर्ण तलवार और धनुष बाण धारण करके समुद्रके निकटमें ही एक आश्रमके समीप भ्रमण कर रहे थे; उस समय दैवके वशमें होकर बिना जाने उन्होंने एक अग्निहोत्र करनेवाले ब्रह्मवादी ब्राह्मणके यज्ञकी गऊका प्राण नाश किया; कुछ समय बीतने पर जब कर्णने जाना, कि बिना जाने भूलसे मैंने ब्राह्मणकी गऊका बध किया है; तब उस ब्राह्मणके निकट जाके बहुत बिनती और प्रार्थनासे उस तपस्वी ब्राह्मणको प्रसन्न करनेके वास्ते यह बचन बोले,—"हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने बिना जाने आपकी गऊका बध किया है, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।" जब वह बार बार उस ब्राह्मणकी प्रार्थना करके ऐसा ही बचन कहने लगे, तब वह ब्राह्मण बहुत ही क्रुद्ध हुआ और कठोर बचनोंसे कर्णकी निन्दा करके यह बचन बोला, रे दुष्टबुद्धिवाले नीच पुरुष! तेरा बध करना ही उचित है! जो हो, तू अपने किये हुए पाप कर्म्मके फलको भोग कर; तू जिसके ऊपर सदा ही ईर्षा किया करता है, और जिसके वास्ते दृढ़ताके सहित अस्त्र शस्त्रोंका अभ्यास कर रहा है,—रे पापी! उसके सङ्ग जब तेरा द्वैरथ युद्ध उपस्थित होगा, उस समय तेरे रथके चक्रेको पृथ्वी ग्रास करेगी; रथचक्रको जब पृथ्वी ग्रास कर लेगी, और तू उस ही शोक तथा दुःखसे मोहित होजावेगा; उस ही समय तेरा शत्रु दृढ़ पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारा शिर काटेगा; अरे अधम पुरुष! इस समय तूं यहांसे चलाजा। रे मूढ़! जैसे तूंने प्रमत्त होकर मेरे यज्ञकी गऊका प्राणनाश किया है, वैसेही तेरी प्रमत्त अवस्थामें ही तेरा शत्रु तेरे शिरको काटके पृथ्वीमें गिरावेगा।" जब उस ब्राह्मणने कर्णको इस प्रकार शाप दिया, तब कर्ण अनेक गऊ और रत्न आदि वस्तुओंसे उस ब्राह्मणको यत्नपूर्व्वक प्रसन्न करने लगे। तब यह तपस्वी ब्राह्मण बोला, "मेरे मुखसे जो बचन निकला है, उसे सम्पूर्ण लोकके प्राणी इकट्ठे होकर भी मिथ्या करनेमें समर्थ नहीं हैं।"—ऐसा विचार कर चाहे तुम यहांसे प्रस्थान करो, चाहे इसी स्थानमें निवास करो। ब्राह्मणका ऐसा बचन सुनके कर्ण अत्यन्त दीनताके सहित नीचा शिर करके उस ब्राह्मणके आश्रमसे बाहर हुए और विप्रशापसे भय भीत होकर चिन्ता करते हुए उन्होंने परशुराम जीके निकट गमन किया।

२ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ तपस्वी परशुरामजी एकाग्रचित्तसे कर्णके बाहुवीर्य्य, शिक्षानुराग, इन्द्रियसंयम और गुरुशुश्रुषासे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। अनन्तर उन्होंने

स्थिरताके सहित अस्त्रशस्त्रोंके सम्पूर्ण रहस्यको प्रयोग और निवारण करनेके कौशल सहित सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्रका उपदेश किया। तिसके अनन्तर अद्भुत पराक्रमी कर्ण समस्त अस्त्र शस्त्रोंको जानके प्रसन्नतापूर्व्वक परशुरामके आश्रममें रहके धनुर्वेदमें विशेष परिश्रम करने लगे। किसी समय कर्णके सहित परशुरामजी आश्रमके निकट भ्रमण करते करते उपवासके क्लेशसे थक गये। अनन्तर विश्वासपात्र तथा स्नेह भाजन अपने शिष्य कर्णकी जङ्घापर शिर रखके सोगये। जब परशुरामजी निद्रित हुए तब मांस मूत्र रुधिर तथा पुरीष भोजन करनेवाला एक भयङ्कर कीड़ा कर्णके समीप आके रुधिर पीनेकी इच्छासे उनके जङ्घेको छेद कर लोहू पीने लगा; कर्ण गुरुके भयसे न तो उसे दूर फेंक सके और न उसका बध कर सके। हे राजेन्द्र! कर्णने केवल परशुरामकी निद्रा-भङ्ग होनेकी शङ्का करके अपने घावकी पीड़ाकी धीरज धरके सहन किया और तनिक भी विचलित न होकर परशुरामजीके शिरको अपने जङ्घेके ऊपर धारण किया। जब कर्णके जांघके घावसे रुधिर बहके महातेजस्वी परशुरामजीके शरीरमें लगा, तब वह निद्रासे जागके उठे और कर्णसे बोले, कि तुमने यह क्या किया? हाय! मेरा शरीर इस समय अपवित्र होगया! जो हो, अब तुम भय त्यागकर इसका यथार्थ कारण मुझसे वर्णन करो? अनन्तर कर्णने जिस प्रकार वह कीड़ा जङ्घाको छेदकर मांस रुधिरके बीच प्रविष्ट हुआ था, वह बृतान्त परशुरामजीको सुना दिया। इसके अनन्तर परशुरामजीने देखा, आठ पांव और तीक्ष्ण दांतोंसे युक्त सूईके समान, रुवोंसे पूरित कायसे सिकुड़ा हुआ सूकरके समान आकृतिवाला अलर्क नाम एक कीड़ा कर्णके घावके भीतर स्थित है। उसने परशुरामके दृष्टिमात्रसे ही विकल होके उस रुधिरमें ही फंसके प्राण त्याग किया; उस समय उसकी मृत्यु अद्भुत रूपसे दीख पड़ी। उसके अनन्तर आकाशमें मेघमण्डलके बीच काला स्वरूप, लाल गर्दन और भयङ्कर मूर्त्तिवाला एक राक्षस दीख पड़ा। वह सफल मनोरथ होकर हाथ जोड़के परशुरामसे यह बचन बोला, हे भृगुकुल भूषण परशुराम! आपका कल्याण होवे इस समय अब मैं अपने योग्य स्थानपर गमन करूंगा। हे मुनिसत्तम! आपने मुझे इस नरकसे मुक्त करके मेरा बहुत ही प्रियाकार्य्य किया है, मैं आपको प्रणाम करता हूं।"

महाबाहु प्रतापी जमदग्निपुत्र परशुरामने उसका ऐसा बचन सुनके उससे पूछा, कि "तुम कौन हो और किस कारणसे नरकमें पड़े थे"? यह समाचार मेरे समीप वर्णन करो। वह कहने लगा, हे तात! सतयुगमें मैं दंश नामक एक महासुर था; मेरी अवस्था तुम्हारे पूर्व्वपितामह महर्षि भृगुके समान ही थी। अनन्तर मैंने महर्षि भृगुकी प्यारी स्त्रीको बल पूर्व्वक हरण किया, इसीसे महात्मा भृगुके शापसे कीड़ा होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा। हे परशुराम! अनन्तर तुम्हारे पितामह महर्षि भृगु क्रोधित होकर मुझसे यह बचन बोले, अरे पापी! "तू महाघोर नरकमें पड़के सदा मलमूत्र रुधिर और मांसभक्षी होगा।" उनका ऐसा दारुण बचन सुनके मैंने उनसे कहा, हे ब्राह्मण! कितने दिनोंमें मैं तुम्हारे इस शापसे मुक्त होऊंगा? मेरे बचनको सुनके भगवान् भृगु मुनि बोले, कि "मेरे कुलमें राम नामक जो महात्मा पुरुष उत्पन्न होगा, उसके दर्शनसे तूं शापसे छूटेगा।" हे राम! इस ही कारणसे मैं दुष्टात्मा लोगोंकी भांति इस नीच गतिको प्राप्त हुआ था; अब आपके दर्शनसे इस पापयोनिसे मुक्त हुआ हूं। वह राक्षस परशुरामजीके निकट अपना सम्पूर्ण बृतान्त इसी भांति वर्णन कर उन्हें प्रणाम करके अपने स्थानपर

गया। अनन्तर परशुराम जी क्रुद्ध होके कर्णसे बोले, अरे मूढ़! तेरा धीरज देखके मुझे बोध होता है; कि तूं क्षत्रिय हैं, क्योंकि ब्राह्मण जाति कभी भी बहुत कष्ट नहीं सह सक्ती; इससे तूं निर्भय होके अपना सत्य वृतान्त वर्णन कर।

अनन्तर कर्ण शाप भयसे डरके गुरुको प्रसन्न करनेकी अभिलाषासे यह वचन बोले, हे भार्गव! ब्राह्मण और क्षत्रियके मेलसे सूत जाति प्रकट भई है; मुझे भी आप उस ही सूत कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष समझिये; क्योंकि इस ही कारणसे सब कोई मुझे राधापुत्र कर्ण कहके आवाहन करते हैं। हे ब्राह्मण! आप मुझ अस्त्रलोभी पुरुषके ऊपर प्रसन्न होइये। वेद और विद्या देनेवाले, गुरु जो पिता कहके वर्णन किये गये हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; इस ही कारणसे मैंने आपके निकट भार्गव गोत्रीय ब्राह्मण कहके अपना परिचय दिया था। भृगुवंशिय श्रेष्ठ परशुराम जो कर्णके ऐसे वचनको सुनके अन्तःकरणसे क्रोधित हुए परन्तु बाहरी भावसे हंसके उस पृथ्वीमें गिरे, भयसे कांपते, दोनों हाथ जोड़े तथा अत्यन्त दीनभावसे युक्त कर्णसे यह वचन बोले। अरे मूढ़! तूने जब अस्त्रलोभसे मेरे समीप मिथ्या व्यवहार किया है, तब तेरा सीखा हुआ सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे अन्तकालमें भूल जायगा; परन्तु जबतक तूं अपने समान और योद्धाके सङ्ग रणभूमिमें युद्ध करते हुए विपद्ग्रस्त नहीं होगा, उस मृत्युकालके अतिरिक्त ये सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे स्मरण रहेंगे; क्योंकि ब्रह्मास्त्र ब्राह्मणके सिवा अन्य किसी जातिके पुरुषोंकी मृत्युके समय स्मरण नहीं रहता, तौभी इस पृथ्वीके बीच कोई क्षत्रिय तेरे समान शूरवीर योद्धा नहीं होगा। इस समय अब तुम इस स्थानसे गमन करो, क्योंकि मिथ्या व्यवहार करनेवाले पुरुष इस स्थानमें रहने योग्य नहीं हैं। कर्ण परशुरामजीके ऐसे न्याय युक्त वचनको सुनके वहांसे विदा हो दुर्योधनके समीप गमन करके उससे यह वचन बोले, "हे महाराज! अब मैं कृतास्त्र होके आया हूं।

३ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! इसी भांति कर्ण भृगुकुल भूषण परशुराम जीके निकटसे अस्त्र विद्या सीखनेके अनन्तर दुर्योधनके सङ्ग मिलके परम आनन्दसे अपने जीवनका समय व्यतीत करने लगे। किसी समयमें पृथ्वीके सैकड़ों राजा कलिङ्ग देशमें राजा चित्राङ्गदकी राजधानी सौभाग्ययुक्त "राजपुर" नाम नगरीमें स्वयम्बर सभाके बीचमें कन्या प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इकट्ठे हुए थे, राजा दुर्योधन भी स्वयम्बरका वृतान्त सुनके कर्णको सङ्ग लेकर सुवर्णभूषित रथमें बैठ कर राजाओंकी मण्डलीके बीच उपस्थित हुए अनन्तर उस स्वयम्बरके महोत्सवको सुनके महाराज जरासन्ध, शिशुपाल भीष्मक, वक्र, कपोतरोमा नील, दृढ़ पराक्रमी रुक्मी, स्त्रीराज्यके स्वामी महाराज श्रृगाल, शतधन्वा, अशोक, वीरनामा, भोजराज और इसके अतिरिक्त दक्षिण, पूर्व और उत्तर देशीय बहुतेरे स्लेच्छाचारी राजा लोग कन्या प्राप्त होनेकी इच्छासे उस स्वयम्बरके बीच उपस्थित हुए। वे सम्पूर्ण राजा लोग सुवर्णभूषित कवच और तपाये हुए जाम्बुनद सोनेके समान प्रकाशमान शरीरसे युक्त तथा सिंहके समान बलवान् थे, इसी भांति जब सम्पूर्ण राजा राज सभामें बैठ गये, तब राजकन्या सहेली और नपुंसकोंको सङ्ग लेकर रङ्गभूमि तथा स्वयम्बरकी सभामें प्रविष्ट हुई। तिसके अनन्तर राजाओंके नाम, गोत्र तथा वंशका वृतान्त दासियोंके मुखसे

सुनती हुई, वह राजकन्या अन्य राजाओंकी भांति, राजा दुर्य्योधनको भी अतिक्रम करके आगे बढ़ी, कुरुनन्दन दुर्य्योधनसे यह अपमान नहीं सहा गया, अनन्तर उन्होंने सम्पूर्ण राजाओंको असम्मानित करके उस राज-कन्याको आगे बढ़नेसे निषेध किया और भीष्म तथा द्रोणाचार्य्यके आसरे तथा अपने बलके घमण्डसे उस राजकन्याको रथमें बैठा कर वहांसे प्रस्थान किया। अस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी कर्ण कवच और अङ्गुलित्राणसे युक्त हो तलवार आदि अस्त्रशस्त्रोंको धारण करके रथ पर चढ़ कर दुर्य्योधनके पीछे पीछे गमन करने लगे, उसे देखकर राजाओंकी मण्डलीके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा। अनन्तर वे सम्पूर्ण राजा लोग कवच पहरके तथा अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण कर रथ पर चढ़के कर्ण और दुर्य्योधनके ऊपर, इस भांति अपने वाणोंकी वर्षा करते हुए उनकी ओर दौड़े जैसे बादल दो पर्व्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं। जब इस भांतिसे सम्पूर्ण राजा लोग सम्मुख उप-स्थित हुए, तब पराक्रमी कर्णने एक एक वाणसे उन सम्पूर्ण राजाओंके धनुष बाणको काट काट पृथ्वीमें गिरा दियां। उस समय कोई कोई धनुष चढ़ाके तथा कोई कोई राजा गदा आदि अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके कर्णके सम्मुख उपस्थित हुए परन्तु योद्धाओंमें मुख्य कर्णने अपने हस्त लाघवसे बाण चला कर समस्त राजाओंको व्याकुल कर दिया, तथा कितनोंको धनुष रहित और कितनोंके सार-थीका प्राण नाश करके उन सम्पूर्ण राजा-ओंको पराजित किया, उस समय सम्पूर्ण राजाओंका मनोरथ निष्फल होगया और वे लोग पराजित होकर स्वयं अपने रथके घोड़ोंको हांकते तथा कितने ही राजा अपने सारथियोंको "चलो! पीछे लौटो!" ऐसा बचन कहते हुए रणभूमि छोड़कर भागने लगे।

नारद मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर! उस समय राजा दुर्य्योधन इसी भांति कर्णके भुजबलसे रक्षित होकर कन्या ग्रहण करके हर्षयुक्त तथा आनन्दित चित्तसे हस्तिनापुरमें आ बिराजे।

४ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, मगधदेशके राजा परा-क्रमी जरासन्धने कर्णके बल-पराक्रमका वृतान्त सुनके उन्हें द्वैरथ युद्धके वास्ते आह्वान किया। अनन्तर परम अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले वे दोनों बीर नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए महाघोर युद्ध करने लगे। धीरे धीरे जब उन दोनों बीरोंके धनुष कट गये और तूणीर वाणोंसे रहित हुए तथा तलवार आदिक अस्त्र टूट गये, तब वे दोनों बीर रथसे उतरके आप-समें मल्लयुद्ध करने लगे। अनन्तर पराक्रमी कर्णने बाहुयुद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए जरासन्धके जरा राक्षसीके जोड़े हुए सन्धिस्थलको छितरा दिया, तब जरासन्ध अपने शरीरका विकृत भाव देखकर शत्रुता त्यागके कर्णसे यह बचन बोले, "हे कर्ण! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं।" अनन्तर उस ही प्रसन्नताके कारण जरासन्धने कर्णको मालिनी नाम्नी नगरी दान किया। हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! शत्रुनाशन कर्ण पहिले केवल अङ्गदेशहीके राजा थे, तिसके अनन्तर जरासन्धकी दी हुई चम्पा अर्थात् मालिनी नग-रीको भी दुर्य्योधनकी अनुमतिसे पालन करने लगे, वह सब वृत्तान्त तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है। महा बेलवान् तेजस्वी कर्ण केवल इसी भांति अस्त्र बलके प्रभावसे पृथ्वीके बीच विख्यात हुए थे, शेषमें देवराज इन्द्रने तुम्हारे हितकी अभिलाषासे कर्णके निकट जाके उनके शरीरसे ही उत्पन्न हुए अभेद कवच और कुण्ड-लका दान मांगा; उस समय कर्णने देवी माया

से मोहित होकर अपने शरीरसे उत्पन्न हुए उस अभेद कवच कुण्डलको देवराज इन्द्रको दे दिया था। महाराज! वह गर्भसे ही उत्पन्न हुए अपने शरीरके अभेद्‌कवच और कुण्डलको दान करके ठगे गये थे; इसही कारण युद्धभूमि में श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनके हाथसे मारे गये। तौभी देखिये कि महात्मा परशुराम और होमकी गजके प्राण नाश होनेसे ब्राम्हणके शाप, कुन्तीके वरदान, इन्द्रकी मायाकौशल, सभाके बीच भीष्मके अर्द्धरथी कहके पुकारे जानेका अपमान, शल्यके कठोर वचनोंसे तेज-हानि, और श्रीकृष्णचन्द्रके नीतिबल वा उपायके एकत्र मिलित होनेसे तथा गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनने रुद्र, देवराज इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, महात्मा द्रोणाचार्य्यके निकटसे सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रशस्त्रोंको प्राप्त किया था; इस ही कारण सूर्य्यके समान तेजस्वी सूर्य्य पुत्र कर्ण मारे गये हैं। महाराज! तुम्हारे भ्राता पुरुषसिंह कर्ण इसी प्रकारमहात्माओंके शापसे युक्त और वञ्चित हुए थे; तौ भी सम्मुख संग्राममें मारे गये; इससे उसके वास्ते अब आप शोक न कीजिये।

५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनमुनि बोले, देवऋषि नारद इतनी कथा सुनाके चुप होगये। अनन्तर राज-ऋषि युधिष्ठिर अत्यन्तही शोक और चिन्तासे मोहित होकर दुःखित चित्तसे बार बार सर्पकी भांति लम्बो स्वांस छोड़ते हुए आंखोंसे आंसू बहाने लगे। राजा युधिष्ठिरकी ऐसी दशादेखके शोक और दुःखसे विह्वल होकर कुन्ती देवी उस समयके अनुसार यह अर्थयुक्त वचन बोली, हेतात युधिष्ठिर! तुम महा बुद्धिमान और वीर पुरुष हो; इससे तुम्हें इस भांतिसे शोकित होना उचित नहीं है; तुम शोक त्यागके मेरा वचन चित्त लगाके सुनो। तुम कर्णके भ्राता हो,—यह वृत्तान्त कर्णको विदित करानेके वास्ते पहिले कर्णके पिता भगवान सूर्य्यदेव और मैंने बहुत ही यत्न किया, अधिक क्या कहूं, तुम्हारे सङ्ग मेल करानेके वास्ते हम दोनोंने कर्णसे अत्यन्त ही बिनती करी थी; विशेष करके भगवान सूर्य्यने कर्णके हितकी अभिलाष करके जो कुछ वचन कहना उचित था, वह स्वप्नमें तथा मेरे सम्मुखमें कहे थे; परन्तु प्रीति प्रेम तथा नाना कारण दिखाके भी हम दोनों किसी भांति कृतकार्य्य न होसके। वह कालके वशमें होकर सदा तुम लोगोंके सङ्ग शत्रुता चरण करनेमें प्रवृत्त था, इससे मैंने भी उसके पराक्रमको देखनेको इच्छासे उसके विषयका वृत्तान्त तुम्हारे समीप नहीं वर्णन किया। राजा युधिष्ठिर कुन्तीके वचनको सुनकर आंखोंमें आंसू भरके यह वचन बोले,—हे माता! तुमने जो इस विषयको छिपा रक्खा, इसी निमित्त इस समय मुझे इतना दुख तथा शोक हुआ है। ऐसा वचन कहते कहते महा तेजस्वी राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त ही दुःखित होकर यह वचन कहके सम्पूर्ण स्त्रियोंको शाप दिया, कि, "आजसे कोई स्त्री भी गूढ़ विचारको छिपानेमें समर्थ न होंगी।" अनन्तर बुद्धिमान राजा युधिष्ठिर पुत्र, पौत्र, सम्बन्धी तथा इष्ट मित्रोंकी मृत्युको स्मरण करके अत्यन्त ही व्याकुल हुए; वह धीरे धीरे शोक तथा दुःखसे अत्यन्त ही विकल होके धूएंसे व्याप्त अग्निकी भांति मन मलिन चित्त होकर बहुत चिन्ता करने लगे।

६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर महारथी कर्णको स्मरण करके शोक तथा दुःखसे व्याकुल होकर अत्यन्त ही चिन्ता

करने लगी। वह बार बार दुख और शोकसे पीड़ित होकर लम्बी सांस छोड़ती हुए अर्जुनको सम्मुख देखकर यह वचन बोली,—हे अर्जुन! यदि हम लोग इसके पहिले वृष्णि और अन्धक प्रदेशमें जाके भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके अपनी जीविकाका निर्व्वाह करते तो जातिके पुरुषोंका नाश न होता; और न हम लोगोंकी ऐसी दुर्गति ही होती। हम लोगोंके शत्रु कौरव लोग ही इस समय अधिक ऐश्वर्य्य-वान हुए हैं, क्योंकि वे लोग क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार सम्मुख संग्राममें मरके स्वर्ग लोकमें गये हैं; और जातिके लोगोंका वध करनेसे हम लोगोंका बल पुरुषार्थ घटगया है; क्योंकि जो पुरुष स्वयं अपना नाश करते हैं, उन्हें धर्म्म-लाभकी कौनसी सम्भावना है? इससे क्षत्रियोंके आचार, बल और पुरुषार्थको धिक्कार है! और क्रोधको भी धिक्कार है, जिसके कारणसे हम लोगोंको इस भांति विपदग्रस्त होना पड़ा। इस समय मुझे यह खूबही निश्चय हुआ है, कि क्षमा इन्द्रियसंयम, पवित्रता, वैराग्य, स्तेय, अहिंसा और सत्य वचन आदि वनवासी ऋषि मुनियोंके व्यवहार ही उत्तम हैं; हम लोग केवल लोभ और मोहके वशमें होकर राज्य लोभकी लालसा तथा दम्भ और अभिमानके वशमें होकर ही ऐसी दशाको प्राप्त भये हैं। पृथ्वीके विजयकी अभिलाष करनेवाले बन्धुबान्धवोंको मरे हुए देखकर हम लोगोंका चित्त जैसा दुःखित हुआ है, उससे ऐसा बोध होता है, कि कोई तीनो लोकोंका राज्य देकर भी हम लोगोंका सन्तुष्ट नहीं कर सकता है। हम लोग राज्यके वास्ते पृथ्वीको तरह न त्यागने योग्य अवध्य स्वजनोंको मारकर भी इस समय जीवित हैं, मांसके लोभसे आपसमें लड़नेवाले कुत्तोंके समूहकी भांति राज्य लोभसे स्वजनोंका नाश करके हमको इस प्रकार अमङ्गल प्राप्त हुआ है; इससे अब इस समय इस राज्यरूपी मांसको ग्रहण करनेमें हमारी अभिलाषा नहीं होती है; सो इसको त्यागनाही उत्तम है; क्योंकि इस युद्धमें जो लोग मारे गये हैं, वे लोग सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य, सुवर्णके ढेर अथवा गज, घोड़े आदि समस्त वस्तुओंके वास्ते भी वध करनेके योग्य नहीं थे। परन्तु वे सब लोग कामना दुःख क्रोध तथा हर्षसे आत्माको युक्तकर मृत्युरूपी विमान पर चढ़के यमलोकको गये हैं। पिता सत्य, तितिक्षा और ब्रह्मचर्य्य आदि तपस्याओंके अनुष्ठानसे कल्याण भाजन पुत्रकी इच्छा करता है; इसी भांति माता भी उपवास, यज्ञ और व्रतादि नाना भांतिके माङ्गलिक कार्य्योंके अनुष्ठानसे गर्भिणी होकर दश महीने तक उस गर्भको धारण करती है। अनन्तर "क्या यह सन्तान कुशलसे जन्मेगी? क्या यह उत्पन्न होके जीवित रहेगी? क्या यह बलयुक्त और सर्व्वत्र सम्मानित होकर हमारे सुखका विधान करेगी?" मातायें इस जन्म और दूसरे जन्मके निमित्त (पुत्रके विषयमें) इसी भांति फल पानेकी आशा करती हुई सदा कातर रहती हैं। हाय! हम लोगोंके मरे हुए स्वजन तथा बान्धवोंकी माताओंके ये सम्पूर्ण मनोरथ अब निष्फल होगये; क्योंकि उन लोगोंके सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित युवा पुत्र राज्यादि बिना भोगेही युद्धभूमिमें मरकर यमलोकको चलेगये! इन सम्पूर्ण राजाओंके पिता माताओंने जिस समय उनके बल वीर्य्य और प्रभावके फल देखनेकी आशा की थी, उसही समय वे मारे गये। परन्तु वे सब सदा सर्व्वदा अनेक भांतिकी वासना तथा मनुष्योंसे युक्त और बहुत क्रोध तथा हर्षके वशमें रहनेके कारण किसी समयमें भी कदाचित मनुष्य जन्मके शुभ फलोंको न भोग सकेंगे; इससे मेरे विचारमें कौरव और पाञ्चालोंमेंसे जो लोग युद्धमें मारे गये हैं, उनके नाम सदाके वास्ते सम्पूर्ण रूपसे नष्ट होगये है;

क्योंकि वैसे क्रोध और दाहके वशवर्ती पुरुष भी यदि शुभ लोकोंमें गमन करें, तो क्रोध मन्युसे युक्त आत्मावाला वधिक भी अपने जीवका नाश आदि कार्य्य करके शुभ लोकमें गमन कर सकते हैं! जो हो हम ही इन सम्पूर्ण प्राणियोंके नाशके मूल हैं; अथवा धृतराष्ट्र पुत्रोंके ऊपर यह समस्त दोष आरोपित किया जा सकता है।

दुर्य्योधन सदासे कपट-बुद्धि, द्वेषी और मायाजीवी था; हमारे निरपराध रहनेपर भी वह सदा हमसे असत् व्यवहार करता था, परन्तु क्या दुर्य्योधन और क्या हम कोई भी अपने पूर्ण मनोरथको सिद्ध नहीं कर सके। इससे इस युद्धमें दोनो ओरकी पराजयका होना ही स्वीकार करना पड़ेगा। दुर्य्योधन पहिले हम लोगोंके विशाल-ऐश्वर्य्यको देखकर पृथ्वीके राज्य, स्त्री, गीत-वाद्यका आनन्द सुख तथा अनगिनत रत्न, सम्पत्ति और अनेक भांतिके वस्तुओंसे सञ्चित कोष—इन सम्पूर्ण भोग्य वस्तुओंमेंसे कुछ भी उपभोग करनेमें समर्थ नहीं हुआ। उस समय उसने दीर्घदर्शी मन्त्री और सुहृद-पुरुष आदि किसीके वचनको भी नहीं सुना; हमसे सदा द्वेष रखनेके कारण चित्तमें जलते रहकर क्रोधके कारण प्रीति तथा सुख आदिको एकबारगी त्याग किया था। इसी भांति राजा धृतराष्ट्र भी सुबलपुत्र शकुनीके मुखसे हम लोगोंकी सम्पत्तिका समस्त वृत्तान्त सुनकर दुःखसे पीले तथा दुबले होगये थे, वह पुत्र-स्नेहके कारण महाबुद्धिमान पितामह भीष्म और विदुरके वचनका अनादर करके "दुर्य्योधन न्याय युक्त कार्य्यही कर रहा है,—" ऐसाही समझते थे और उस लोभी अशुचि और कामके वशवर्त्ती अपने पुत्रको नियममें स्थित न करके ही मेरी भांति क्षयकी दशाको प्राप्त हुए हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। परन्तु सदा पाप बुद्धिवाला दुर्य्योधन हमसे द्वेष रखनेके कारण चित्तमें जलकर युद्ध उपस्थित करके रणभूमिके बीच शत्रुके हाथसे अपने सहोदर भाइयोंका नाश कराके अपने बूढ़े माता पिताको शोकाग्निमें डालकर यश रहित हुआ है। दुर्य्योधनने युद्धकी इच्छाकर श्रीकृष्णके समीप हम लोगोंके विषयमें जैसे वचनोंका प्रयोग किया था, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा स्वजन होकर कौन पुरुष अपने कुटुम्ब तथा बन्धुबान्धवोंके विषयमें वैसे नीच वचनोंको कहेगा? सूर्य्य जैसे अपने प्रभावसे समस्त दिशाओंको जला देते हैं, वैसे ही हम भी युद्धमें स्वजन और बन्धुओंको नष्ट करके अपने दोषके कारणसेही सदाके वास्ते सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हुए। वह शत्रु नीचबुद्धि दुर्य्योधन हम लोगोंके निमित्त पूरा ग्रहरूप बना था, उसहीके वास्ते हमारे समस्त कुलका नाश हुआ! परन्तु हम लोग अवध्य पुरुषोंका बध करके इस समय साधारण पुरुषोंके बीच निन्दनीय हुए हैं। राजा धृतराष्ट्रने उस नीचबुद्धि पापी कुलनाशी दुर्य्योधनको राज्यका स्वामी बनाया था, इस ही कारण इस समय उनको शोक करना पड़ता है। हाय! इस युद्धमें सम्पूर्ण शूरवीर पुरुष मारे गये, धन भी चुक गया और हम लोग भी पापभागी हुए हैं। शत्रुओंको मारके हम लोगोंका क्रोध शान्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु शोक केवल मुझे ही मोहित कर रहा है। हे अर्जुन! शास्त्रमें ऐसा वर्णित है, कि मनुष्यके दुष्कर्म्म मनुष्य समाजमें प्रकाश करनेसे अनुताप, दान, तपस्या, नाना भांतिके मांगलिक कर्म्मोंके अनुष्ठानसे अथवा वैभवको त्यागके तीर्थयात्री श्रुति-स्मृतिआदिके पाठ और जपसे घट सकते हैं; उनमेंसे सम्पूर्ण भाग्यमान पुरुष फिर पापमें लिप्त नहीं होते यह श्रुति-सम्मत वचन है। वेदमें ऐसा वर्णित है, सन्यासी जन्म मरणसे रहित होकर ज्ञानरूपी दीपकके सहारे यथार्थ मार्ग पाकर ब्रह्म

लोकको जाते हैं ; इससे हे शत्रुको तपानेवाले अर्ज्जुन ! मैं तुम सब लोगोंकी सम्मति लेकर सुखदुःखको त्याग और मौनावलम्बन करके ज्ञानपथको आश्रय करके बनवासी बनूंगा। यह स्पष्टरूपसे वेदमें कहा है कि दान लेनेवाले पुरुष कदाचित सार धर्म्मको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होसकते, और मैंने भी उसे खूब निश्चय करके प्रत्यक्ष देख लिया है। इससे आसक्ति युक्त पुरुष वेदमें कहे हुए जन्म मरणके कारणरूपी जिस प्रकार पापाचार करते हैं; मैंने भी राज्य भोगकी अभिलाषासे युक्त होकर वैसा ही पापाचरण किया है ; इससे इस समय मैं समस्त परिग्रह और राज्यभोग परित्याग करके ममताशून्य, शोकरहित और संगादिसे मुक्त होकर किसी बनके बीच गमन करूंगा। हे कुरुसत्तम, शत्रुसूदन अर्ज्जुन ! इस समय तुम ही इस निष्कण्टक और कल्याणयुक्त समस्त भूमण्डल तथा पृथ्वीका राज्य करो ; मुझे अब धन, राज्य तथा भोग आदि किसी भी वस्तुका प्रयोजन नहीं है। धर्म्मराज युधिष्ठिरके इतना वचन कहके चुप होने पर छोटे भाई अर्ज्जुनने इस प्रकार उत्तर दिया।

७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! जैसे कोई पुरुष किसीसे अपमानित होके सहनेको समर्थ नहीं होता, वैसे ही महापराक्रमी बोलनेवालोंमें मुख्य महातेजस्वी अर्ज्जुन युधिष्ठिरका वचन सुनके न सह सके, और अपना उग्रभाव दिखाके ओठ काटते हुए गर्व्वपूर्व्वक इस प्रकारसे नीतियुक्त वचन कहने लगे। ओहो कैसा दुःख, कैसा कष्ट और क्या ही अद्भुत कातरता है, कि आप अमानुषी कार्य्य पूर्ण और अतुल-ऐश्वर्य्य प्राप्त करके भी उसे परित्याग करनेमें प्रवृत्त होरहे हैं। धर्म्मराज ! आप सम्पूर्ण शत्रुओंको नाश करके क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार पृथ्वी हस्तगत करके भी इस समय क्यों बुद्धि-लाघवके कारण यह सब त्यागनेकी इच्छा करते हैं ? इस संसारके बीच क्लीव वा दीर्घसूत्री किसी समयमें भी राज्य भोग नहीं कर सक्ता। परन्तु यदि आपकी इसी भांति त्याग धर्म्मकी इच्छा थी, तो क्यों क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण राजाओंको मारा ? जो पुरुष भिक्षावृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करनेकी इच्छा करता है, वह कदापि पुत्र, कलत्र और पशु आदि सामग्रीको पाने तथा लोकसमाजमें विख्यात होनेमें समर्थ नहीं होता ; क्यों कि अकल्याणके पात्र दरिद्र मनुष्य किसी कर्म्मसे भी ऐश्वर्य्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होते। महाराज ! आप यदि इस समृद्ध राज्यको त्यागके पापयुक्त कापालिक-वृत्तिको अवलम्बन करके जीवन धारण करेंगे, तो लोकसमाज आपको क्या कहैगा ! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी होकर यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य त्यागके कल्याण रहित दरिद्र और साधारण पुरुषकी भांति क्यों भिक्षावृत्ति अवलम्बन करनेकी इच्छा करते हैं ? आप राजकुलमें जन्म लेकर बाहुबलसे समस्त पृथ्वीको पराजित करके भी केवल मूर्खताके कारण धर्म्म और अर्थ त्यागकर बनमें गमन करनेके वास्ते तय्यार हुए हैं ! और आप यथार्थ अधिकारी होकर भी राज्य त्यागके बनमें चले जावेंगे, तब दुष्ट लोग राजा रहित पृथ्वीको सूनी पाकर हव्य कव्य आदि सुकृतकर्म्मोंको लोप करेंगे, उससे आपको ही पापभागी होना पड़ेगा। राजा नहुषने निर्द्धनावस्थामें स्वयं नीचताके कार्य्योंको करके निर्द्धनताको धिक्कार देकर मुनियोंके कर्त्तव्य कर्म्मको तुच्छ कहके वर्णन किया है ! और अगाड़ीके वास्ते कुछ भी वस्तु सञ्चय करके न रखना, यह ऋषियोंका धर्म्म है, वह आपको भी विदित है। इससे पण्डितोंने जिसे राजधर्म्म कहके

वर्णन किया है, और वह धनसे ही सिद्ध होता है।

हे महाराज! इस संसारके बीच जो पुरुष किसीके धनको हरण करता है, वह उसके धर्मको भी हर लेता है; इससे जो धन इस प्रकार धर्मको सिद्ध करनेवाला है, उसे यदि कोई हरण करे, तो क्या हम लोग क्षमा-कर सक्ते हैं?-इस लोकके बीच दरिद्रता अत्यन्त ही पाप जनक है, दरिद्र पुरुष समीप रहनेपर मनुष्य उसे मिथ्या अपवादोंसे दूषित करते रहते हैं; इससे आपको इस प्रकार दरिद्रताकी प्रशंसा करनी उचित नहीं है। इस पृथ्वीपर पतित और निर्द्धन दोनोंको ही शोक करना पड़ता है; इससे नीच और निर्द्धन पुरुषोंमें कुछ विशेषता नहीं बोध होती। जैसे सम्पूर्ण नदियां पहाड़ोंसे निकल कर धीरे धीरे विस्तृत होती हैं, वैसे ही बहुतसे धन सब कर्म्म क्रमसे सिद्ध होते हैं। महाराज! धनके विना इस पृथ्वीके बीच मनुष्योंको धर्म्म, अर्थ, काम वा स्वर्ग-गमन और प्राण-यात्राका भी निर्व्वाह नहीं हो सक्ता।' जैसे ग्रीष्मकालमें छोटी छोटी नदियां सूख जाती हैं, वैसे ही इस लोकमें धनसे हीन अल्प बुद्धि मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य्य नष्ट होजाते हैं। इस जगत्के बीच जिसके धन है, उसीके मित्र और बान्धव हैं, जिसके धन है, वही पण्डित है, जिसके धन है, वही पुरुष है। निर्द्धन मनुष्य यदि किसी विषयकी अभिलाषा करके उसके सिद्ध करनेका उपाय करे तो कदापि वह सिद्ध नहीं होते। परन्तु जैसा महा बलवान हाथीसे अन्य हाथियोंको पकड़ लेते हैं, वैसे ही धनसे समस्त प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं।

महाराज! धर्म्म, बहुदर्शिता, धृति, हर्ष कामना, क्रोध ममता ये सब ही धनसे सिद्ध होसकते हैं। धनसे ही लोगोंके कुल गौरव और धर्म्मकी वृद्धि होती है। निर्द्धन पुरुषकी यह लोक और परलोक कोई भी सुखदायक नहीं होता। जैसे पहाड़से नदी प्रकट होती हैं, वैसे ही धनसे धर्म्म उत्पन्न होता है। हे राजन्! मनुष्यका शरीर कृश होनेसे ही उसे दुर्बल नहीं कहा जा सकता; जिसके घोड़े गज पशु तथा सेवकोंकी अल्पता होती है, और जिसके गृहमें अतिथि नहीं उपस्थित होते, उसे ही कृश कहा जा सकता है। महाराज आप न्यायपूर्व्वक देवासुर संग्रामका विषय विचार करके देखिये देवता लोग ज्ञातिवधके अतिरिक्त सम्पत्ति प्राप्त करनेकी कौनसी अभिलाषा करते हैं? और यदि दूसरेका धन लेना, यह धर्म्म आपके विचारमें उत्तम नहीं हैं; तो भला कहिये तो सही, राजा लोग किस प्रकारसे धर्म्मका अनुष्ठान कर सकेंगे? क्योंकि पर-धनके अतिरिक्त अपना धन राजाओंके पास कुछ भी नहीं हैं; और वेदमें भी पण्डितोंने "प्रति दिन साम आदि तीनों वेदोंके अध्ययन, ज्ञान उपार्ज्जन और यत्न पूर्व्वक धन प्राप्त करके यज्ञ करना उचित है," ऐसीही विधि निश्चयकी है। जब कि देवता लोग भी ज्ञातिविद्रोहकी अभिलाषा करते हैं, तब ज्ञाति विरोधके बिना कौनसी वस्तु प्राप्त हो सकती है? और देवताओंने विद्रोहितासे ही स्वर्गलोक प्राप्त किये हैं, इससे देवता लोग भी इसी भांति व्यवहार करते हैं और वेदमें भी कहा हुआ है, कि राजा लोग अन्य पुरुषोंके निकटसे जो धन प्राप्त करते हैं, उस ही धनसे उनका कल्याण होता है; क्योंकि पढ़ना, पढ़ाना, दान लेना, और देना ये सम्पूर्ण कर्म्म धनसे ही सिद्ध होसक्ते हैं; इसमें यदि दोष समझा जावे, तो कहीं भी ऐसा कोई अर्थ नहीं दीख पड़ता जो दूसरे पुरुषोंके अनिष्टके बिना ही संग्रह किया जा सकता होवे। जैसे पुत्र पिताके धनको अपना समझता है, वैसे ही वे लोग भी युद्ध जीतके जो धन पाते हैं, उसे अपना ही

समझते हैं; और स्वर्गीय राजर्षियोंने राजधर्म्मके विषयमें ऐसा ही वर्णन किया है।

जैसे समुद्रसे बहुतसा जल सूर्य्यतेजसे आकाशमें जाकर दशों दिशामें व्याप्त होता है, वैसे ही सम्पूर्ण धन राजकुलसे निकलकर पृथ्वीका पालन कार्य्य सिद्ध करता है। देखिये यह पृथ्वी पहिले दिलीप, नृग, नहुष अम्बरीष और मान्धाता आदि राजाओंके अधिकारमें थी, इस समय आपके हस्तगत हुई है। इससे आप अनेक सामग्री और सर्व्वस्वदक्षिणासे पूरित यज्ञोंको अपने मुट्ठीमें प्राप्त समझिये। यदि अब आप यह समस्त सामग्री पाके यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करेंगे, तो अवश्य ही आपको राज्यके पापका भार उठाना पड़ेगा। राजा जो प्रजाके धनको लेकर दक्षिणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करता है, वह सम्पन्न होनेसे उसकी सम्पूर्ण प्रजा अवभृत स्नानसे पवित्र होती है। दूसरेकी बात दूर रहे, विश्वमूर्त्ति महादेवने भी स्वयं सर्व्वमेध यज्ञमें समस्त प्राणियोंको और सबके अन्तमें अपने शरीरको भी आहुतिमें प्रदान किया था। हे राजन्! जिस यज्ञमें यजमान पत्नीके सहित स्वयं दीक्षित हो और एक पशु, तीन वेद, चार ऋत्विक,—ये देश स्थित रहें, वह दाशरथ नाम महत् यज्ञका पथ ही नित्य है; उसका फल अविनाशी है, ऐसा ही सुना गया है; इससे आप ऐसे मार्गको त्यागके कुपथमें न जाइये।

८ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे अर्ज्जुन! तुम क्षण भर मन और आत्माको स्थिर कर एकाग्र भावको धारण करो, ऐसा होनेसे मेरे वचनको सुननेके अनन्तर उसमें तुम्हारी रुचि होगी। इस समय मैं ग्राम्यसुख त्यागके साधुओंके गमन करने योग्य मार्गसे गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, इससे अब तुम्हारे अनुरोधसे विषय मार्गमें नहीं गमन करूंगा। परन्तु एक बारगी गमन करनेमें प्रवृत्त होनेसे इस समय मुझे कौनसा मार्ग कल्याणदायक है? यदि तुम मुझसे ऐसा प्रश्न करो, अथवा तुम्हारी पूछनेकी इच्छा न रहनेसे भी मैं स्वयं कहता हूं सुनो। मैं ग्राम्य-व्यवहारके सम्पूर्ण सुखको परित्याग करके अरण्यवासी और फल मूलाहारी होकर महत् तपस्याका अनुष्ठान करते हुए मृगोंके वनमें भ्रमण करूंगा। मैं वहां निवास करके यथा-समय अग्निमें आहुति, प्रात और सन्ध्याके समय स्नान, मृगछालाका वस्त्र, जटाधारण और परिमित भोजन करके शरीरको कृशित करूंगा; सर्दी, गर्मी, क्षुधा, और प्यास आदि क्लेशोंको सहनेका अभ्यास करते हुए विधिपूर्व्वक तपस्यासे धीरे धीरे अपने शरीरको सुखा दूंगा; वनवासी मृग और पक्षियोंके मनोहर शब्दको सुनूंगा, सुगन्धित फूलोंका घ्राण लूंगा और स्वाध्यायमें रत वाणप्रस्थ आदि नाना वेषधारी सुन्दर मूर्तिवाले वनवासियोंको दर्शन करते हुए निवास करूंगा। मैं अब किसीके अनिष्टाचरणमें नहीं प्रवृत्त होऊंगा; इससे ग्रामवासी मनुष्योंके सङ्ग मेरा अब कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा, उस विषयमें कहनाही क्या है? मैं वहां एकान्त स्थलमें शिलो वृत्ति अवलम्बन करके वनके वृक्षोंके पके तथा बे पके फल, झरनोंके पानी और स्तोत्र आदिसे देवता तथा पितरोंको तृप्त करते हुए समय व्यतीत करूंगा; इसी भांति शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार आरण्यके कठोर व्रतका अनुष्ठान करके शरीर छूटनेके समयकी प्रतीक्षा करूंगा अथवा सिर मुड़ाके प्रति दिन एक एक वृक्षके नीचे फल मांगके शरीरयात्रा निर्व्वाह करूंगा। और निराश्रय होकर भस्मपूरित शरीरसे चारों ओर पर्य्यटन करूंगा; अथवा सम्पूर्ण प्रिय और

अप्रिय वस्तुओंको परित्याग करके किसी वृक्षके नीचे बनके बीच निवास करूंगा और सम्पूर्ण परिग्रह शून्य और सुखदुःखसे रहित होकर ममता तथा विषय वासनाको त्याग दूंगा, मैं कदापि शोक और हर्षके वशमें न होऊंगा, स्तुति और निन्दाको समान समझूंगा। मैं अब कदापि किसीके सङ्ग वार्तालाप न करके बाहरसे भावसे अन्धे जड़ वा बधिर पुरुषोंकी भांति स्थित होके आत्म-उपसनामें रत रहूंगा। मैं अब जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंके बीच किसीकी भी हिंसा न करके धार्म्मिक और इन्द्रियपरायण पुरुषोंको समदृष्टिसे अव-लोकन करूंगा। किसीको अवज्ञा वा किसीकी ओर टेढ़ी दृष्टिसे नहीं देखूंगा; सदा सर्व्वदा प्रसन्न चित्तसे स्थित होके इन्द्रियोंको संयम करनेमें यत्नवान होऊंगा। मार्गमें गमन कर-नेके समय किसी दिशा, कोई देश तथा पीछेकी ओर दृष्टि न करके स्थूल और सूक्ष्म शरीरका अभिमान त्यागकर निरपेक्ष होके स्थिर और सरलचित्तसे इच्छापूर्व्वक गमन करूंगा। स्वभाव सम्पूर्ण जीवोंके आगे आगे गमन करता है, इससे आहार आदि स्वाभाविक कार्य्य संस्कार वश ही निर्व्वाहित होंगे; परन्तु मैं ज्ञानके विरोधी उन सुखदुःखोंको कुछ भी चिन्ता न करूंगा। पवित्र भोजन यदि प्रथम गृहमें कुछ भी न मिलेगा, तो दूसरे घर जाऊंगा; वहां भी यदि न मिलेगा तो क्रमसे सात घर घूमकर उदर-पूर्त्ति करूंगा। जिस समय ग्रामवासी समस्त पुरुषोंके ओखली मूसल आदि सबका कार्य्य समाप्त और अग्नि बूझके रसोईका घर धूएंसे रहित होगा और सब गृहस्थ पुरुष भोजन करके निवृत्त होंगे, अधिक क्या कहूं, जिस समय अतिथि और भिक्षुकोंका भी गमनागमन नहीं रहेगा, मैं उसही समयमें जाकर दो तीन वा पांच घरमें भिक्षा मांगूंगा, और सम्पूर्ण आशापाससे मुक्त होकर इस पृथ्वी पर भ्रमण करूंगा हानि और लाभको समान हो समझके वृहत् तप स्यामें रत होऊंगा। जीवितार्थी वा मुमुर्षु इन दोनोंमेंसे किसीकी भांति व्यवहार नहीं करूंगा मैं जीने और मरनेको समान समझूंगा, किसी विषयमें हर्ष वा विषाद नहीं करूंगा। यदि कोई पुरुष कुठार ग्रहण करके मेरी एक भुजा काट डाले और दूसरा पुरुष दूसरी भुजामें चन्दन लगावे,-तो मैं उन दोनोंके बीच किसीके भी कल्याण और अमङ्गलकी इच्छा नहीं करूंगा। मनुष्य लोग अपनी उन्नतिके वास्ते जिन सम्पूर्ण कार्य्योंका अनुष्ठान करते हैं, मैं उन समस्त कार्य्योंको त्यागके केवल एक शरीर निर्वाहके योग्य कर्म्म करके समय व्यतीत करूंगा। सर्व्वदा सम्पूर्ण कर्म्मोंमें आसक्ति रहित होकर इन्द्रियोंको वशमें करनेके वास्ते यत्नवान होऊंगा, और सब भांति सङ्कल्प-रहित होकर अपने मनको मलीनताको दूर करूंगा। संसारके बन्धनोंको तोड़के आशा ममतासे हीन होके वायुकी भांति स्वतन्त्र रूपसे पृथ्वीपर भ्रमण करूंगा मैंने अज्ञानसे विषय-वासनामें फंस कर बहुत ही पाप किया है, इससे ऐसी विषय-वासनासे आसक्ति रहित होकर ही असीम आनन्द प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। कोई कोई मूढ़ पुरुष अनेक भांतिके शुभाशुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करके कई कार्य्य कारणोंसे सम्बन्धीय स्त्री, पुत्र आदिका पालन करते हैं; अन्तमें इस जड़ शरीरको परित्याग करनेके अनन्तर पर-लोकमें उस पापके फलका भागी होना पड़ता है, क्यों कि कर्त्ताको ही सम्पूर्ण कर्म्मोंका फल भोगना होता है। इसी भांति समस्त प्राणी कर्म्मरूपी सूत्रमें बन्धके घूमते हुए रथचक्रकी भांति सदा इस संसारके बीच आवागमन करते रहते हैं। जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और व्याधि आदि अनेक भांतिकी आपदासे युक्त इस असार संसारको जो पुरुष त्याग सकते हैं, उनको ही

नित्य सुख प्राप्त होता है। जब कि देवता लोग स्वर्गसे और महर्षि लोग अपने अपने स्थानोंसे भी भ्रष्ट होते हैं, तब इन सम्पूर्ण कारणोंको जानकर भी कौन पुरुष इस अनित्य स्वर्ग आदि ऐश्वर्य्यकी इच्छा करेगा? और भी देखो, कि समयके अनुसार सामान्य राजा भी कपटता आदि विविध उपाय अवलम्बन करके किसी कारणसे महाराजको भी मार सकता है। जो हो, बहुत समयके अनन्तर मेरे लिये यह ज्ञानरूपी अमृत उत्पन्न हुआ है; इसको ही अवलम्बन करके मैं इस समय उस अक्षय, अव्यय और नित्य स्थानको प्राप्त करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं। ऐसी ही बुद्धि सदा हृदयमें धारण करके निर्भय मार्गमें आरूढ़ होके जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और व्याधि आदि अनेक भांतिके क्लेशोंसे युक्त इस शरीरको त्याग करूंगा।

९ अध्याय समाप्त।

भीमसेन बोले, हे महाराज! जैसे मन्दबुद्धि अर्थज्ञानरहित वेदपाठी ब्राह्मणकी बुद्धि वेदपाठ करते करते स्तम्भित होजाती है, वैसे ही आपकी भी बुद्धि कलुषित होनेसे तत्त्वदर्शिनी नहीं होती है। राजधर्म्ममें दोषारोपण करके यदि वृथा शान्ति तथा आलस-भावको अवलम्बन करना हो अभिप्राय था, तब धृतराष्ट्र पुत्रोंको नाश करके तुम्हें कौनसा फल मिला? क्षमा, दया, करुणा और अनृशंसता आदि सम्पूर्ण गुण क्या तुम्हारे अतिरिक्त क्षत्रिय धर्म्मावलम्बी दूसरे राजाओंमें वर्त्तमान नहीं हैं, यदि मैं आपके ऐसे अभिप्रायको पहिले जान सक्ता, तो कदापि शस्त्र ग्रहण करके किसीका बध न करता। जीवनके समय पर्य्यन्त अवश्य ही भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके दिन बिताता,— ऐसा होनेसे राजाओंके बीच कदापि इस प्रकार भयङ्कर युद्ध उपस्थित न होता।

हे राजन्! ज्ञानी पुरुष "स्थावर जङ्गमसे युक्त इस पृथ्वीको बलवान पुरुषोंके द्वारा ही भोग्या और पालनीया" कहके वर्णन करते हैं; और क्षत्रिय धर्म्मके जाननेवाले पण्डितोंका ऐसा ही मत है, कि बलवान पुरुषको राज्य ग्रहण करनेके समय यदि कोई शत्रुताचरण करे, तो उस ही समय उसका बध करना उचित है। महाराज! हमारे शत्रु कौरव लोग भी उस ही दोषसे दूषित होकर हम लोगोंके हाथसे मारे गये हैं; इससे आप इस समय शत्रु-रहित होके धर्म्मपूर्व्वक यह पृथ्वी-भोग कीजिये। जैसे कोई पुरुष कुआं खोदके उसमें जल न पाकर केवल कीचड़ लिपटे हुए शरीरसे निवृत्त होता है; जैसे कोई बड़े वृक्ष पर चढ़के मधु ग्रहण करके भी उसका स्वाद न पाकर ही मृत्युको प्राप्त होता है; जैसे कोई आशा पाससे बन्धके महा घोर पथसे गमन करते हुए फिर निराश होके निवृत्त होता है; जैसे कोई शूरबीर पुरुष समस्त शत्रुओंका नाश करके पीछे आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होता है; अथवा जैसे भूखे मनुष्यका अन्न पाकर भी भोजन न करना और कामी पुरुषके इच्छानुरूप स्त्री पाके भी उसे भोग न करनेकी भांति आपके बन गमनमें उद्यत होनेसे हम लोगोंके शत्रुनाश आदि सम्पूर्ण कार्य्य निरर्थक होरहे हैं। हे राजन्! आप निर्बुद्धि होरहे हैं, तौभी हम लोग आपको ज्येष्ठ समझके मान्य करते हुए आपके अनुगामी होते हैं, तब हम लोगही इस विषयमें निन्दनीय हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हम लोग सब कोई बाहुबलसे युक्त कृतविद्य और सब विषयोंके निश्चय करनेवाले हैं, परन्तु असमर्थकी भांति आपकी निरर्थक आज्ञामें स्थित हैं। हे राजन्! मेरा बचन युक्ति सङ्गत है वा नहीं, इसे विचारके देखिये, हम लोग अनाथोंके रक्षक होकर भी यदि अर्थसे भ्रष्ट

होंगे, तो प्रयोजन-सिद्धिके विषयमें सब कोई हम लोगोंको क्या अकर्म्मण्य न समझेंगे? क्योंकि ऐसी विधि है, कि राजा लोग वृद्धावस्था और शत्रुसे पराजित होनेपर अर्थात् आपद-कालमें ही सन्यास धर्म्म ग्रहण कर सकते हैं; अतएव सूक्ष्म तत्वदर्शी पण्डितोंने दूसरे समयमें क्षत्रियोंको सन्न्यासधर्म्मकी विधि नहीं दी है, वरन उससे धर्म्मकी हानि होती है, ऐसा ही सूक्ष्मदर्शी पण्डितोंने वर्णन किया है। जो पुरुष क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होके उसहीमें निष्ठावान तथा हिंसा धर्म्मसे ही जीविका निर्व्वाह करते हैं, वे किस प्रकारसे दैव निर्दिष्ट धर्म्मकी निन्दा कर सकते हैं? ऐसा करनेसे उस विषयमें विधाताकी ही निन्दा करनी होती है, इससे दैव निर्दिष्ट धर्म्म दूषित होने पर भी निन्दित नहीं है। क्षत्रियोंको भी जो वेदमें सन्यास ग्रहण करनेके अधिकार कहा गया है; वह यथार्थमें न होने पर भी ऋक् यजु, और साम इन तीनों वेदों तथा विधि विषयमें अनभिज्ञ, निर्द्धन और नास्तिक पुरुषोंने ही वेदोक्त सन्यास धर्म्मके प्रसंसा-रहित. वचनको सत्यकी भांति समझके अपना मत प्रकाशित किया है। क्षत्रियोंको सिर मुड़ाकर कपट सन्यास धर्म्म अवलम्बन करके शरीरको चेष्टा-रहितकी भांति रहित करनेसे वह नाशके वास्ते ही समझा जाता है, जीवन रक्षाके निमित्त नहीं! तब केवल देवता, ऋषि, अतिथि, पितर, पुत्र और पौत्र आदिके पालन पोषणमें असमर्थ पुरुष ही जङ्गलके बीच अकेले ही निवास करके सुखी हो सकते है। जैसे मृग सूवर और पक्षी वनवासी होके भी स्वर्गके अधिकारी नहीं हैं, वैसेही सकर्म्मोंके अनुष्ठानसे विमुख होनेवाले शक्तिमान क्षत्रिय पुरुष भी आरण्यक धर्म्मसे किसी प्रकार स्वर्गके अधिकारी नहीं हो सकते। हे राजेन्द्र! यदि सन्यास धर्म्मसे ही सिद्धि प्राप्त होती, तो ऐसा होनेसे पहाड़ और वृक्षोंके समूह शीघ्र ही सिद्धिलाभ करते। जगत्के बीच ये ही प्रकृत सन्यासी और ब्रह्मचारीकी भांति दीख पड़ते हैं, क्योंकि इन्हें परिग्रह वा किसी उपद्रवकी कुछ भी बाधा नहीं है। महाराज! पुरुष अपनी प्रारब्धके अतिरिक्त पराये भाग्यसे कदापि फल भागी नहीं होसकता; इससे अवश्य ही कर्म्म करना उचित है, कर्म्म हीन मनुष्य कभी सिद्धि-लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते! और अपना उदर भरनेसे ही यदि सिद्धि प्राप्त होसकती, तो जिसे उदर भरनेके अतिरिक्त और कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता, वे मछरी आदि जलजन्तु भी सन्न्यासरूपी मुक्ति फल प्राप्त करनेमें समर्थ होते।

अधिक और क्या कहूं, आप विशेष रीतिसे विचारके देखिये, इस जगत्के सम्पूर्ण प्राणी अपने अपने कर्म्ममें प्रवृत्त होरहे हैं, इससे अवश्य ही कर्म्म करना चाहिये; कर्म्महीन पुरुषको दूसरे किसी विषयसे भी सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती।

१० अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, महाराज! इस विषयमें तपस्वियोंके सङ्ग देवराज इन्द्रके बर्त्तालापका एक पुराना इतिहास वर्णित है, मैं कहता हूं, आप सुनिये।

किसी समयमें उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए बहुतसे अजातश्मश्रु ब्राह्मणोंका निर्बोध बालकोंने परिव्राजक धर्म्म ग्रहण करके घर त्यागके वनमें गमन किया। वे सब महाधनवान होके भी सन्न्यासको ही यथार्थ धर्म्म समझके पिता भ्राता आदि बन्धुबान्धवोंको परित्याग कर ब्रह्मचर्य्य व्रत अवलम्बन करके चारों ओर पर्य्यटन करने लगे, देवराज इन्द्रने उन बालकोंके ऊपर कृपा करी। भगवान इन्द्रने सुवर्णमय

पक्षीका रूप धरके उन बालकोंसे कहा,—इस संसारके बीच जो लोग यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करते हैं, वे साधारण मनुष्योंसे न होने योग्य अत्यन्त कठिन कर्म्म करते हैं, और वही पवित्र कर्म्म है ; इससे ऐसे ही कर्म्म करनेवाले पुरुषोंका जीवन धन्य है और वेही धर्म्म परायण पुरुष सिद्ध मनोरथ होकर परम गति लाभ करते हैं।

तपस्वियोंने कहा, ओहो ! यह पक्षी यज्ञसे बचे हुए अन्न भोजन करनेवाले मनुष्योंकी प्रशंसा करता है ! हमलोग भी यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन किया करते हैं ; इससे अवश्य ही यह पक्षी हमलोगोंको यह विषय विज्ञापित करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

पक्षी बोला, हे तपस्वी पुरुषो ! मैं तुम लोगोंकी प्रशंसा नहीं करता हूं ; तुम लोग यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेवाले नहीं हो ; तुम लोग जूठे अन्नको भोजन करनेवाले मन्दबुद्धि अल्प पराक्रमी और पापी हो।

तपस्वियोंने कहा, हे विहङ्गम ! हम लोग इसे ही परम श्रेष्ठ कल्याणदायक मार्ग समझकर इसही को उपासना करते हैं ; इस समय जो हम लोगोंके निमित्त उत्तम हो, तुम उसहीका उपदेश करो ; तुम्हारे वचनोंमें हमलोगोंकी अत्यन्त ही श्रद्धा उत्पन्न होरही है।

पक्षी बोला, कि वक्ता और श्रोताका अन्तःकरण भिन्न भिन्न अंशोंमें बंटा रहता है, इससे यदि मेरे वचनोंमें तुम लोग कोई शङ्का न करो तो मैं तुम लोगोंके निमित्त यथार्थ हितकर वचनोंका उपदेश करूंगा।

तपस्वियोंने कहा, हे धर्म्मात्मन् ! आर्य्य ! हमलोग तुम्हारे वचनको सुनेंगे ; इस जगत्के सम्पूर्ण मार्ग तुम्हें विदित है ; इससे हम लोग तुम्हारी आज्ञाके अनुसार इस स्थानमें स्थित हैं; अब तुम हमलोगोंको यथार्थ पथका उपदेश प्रदान करो।

पक्षी बोला, सम्पूर्ण चौपाये पशुओंमें गऊ श्रेष्ठ हैं, धातुओंमें सुवर्ण, शब्दोंमें मन्त्र, और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। वेद मन्त्र ही ब्राह्मणोंके जन्मसे लेकर जीवन कालके समय पर्य्यन्त गर्भ क्रिया आदि सम्पूर्ण संस्कारोंका विधि पूर्व्वक विधान करता है! और यह वैदिककर्म्म ही सब किसीका उत्तम यज्ञ और स्वर्ग प्राप्त होनेका पथ स्वरूप है! और यदि इसे न स्वीकार करो तो इस कर्म्मसे किस भांति सैकड़ों कर्म्म-निष्ट स्वर्गार्थी पूर्व्व पुरुषोंके मनोरथ तथा कार्य्य सिद्ध हुए हैं ? इस विषयमें मैंने बहुत कुछ प्रत्यक्ष मालूम किया है। इससे लोकके बीच जो पुरुष दृढ़ विश्वासके सहित इस आत्माको जिस देव रूपसे भजता है, वह उसही भावसे सिद्धि प्राप्त करता है।

इस जगत्के बीच जीवोंको तीन प्रकारसे सिद्धि प्राप्त होती है ; प्रथम माघ महीनेसे लेकर असाढ़ पर्य्यन्त छः महीने उत्तरायण कालमें मृत्यु होनेसे शुक्ल अर्थात् प्रकाशमय मार्गसे आदित्य लोक प्राप्त होता है; इस लोकमें इसे क्रम-मुक्ति कहते हैं। दूसरा श्रावण महीनेसे लेकर पौषमास छः महीने तक दक्षिणायण समयमें कृष्ण अर्थात् अन्धकारमय मार्गसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है, इसी भांति मुक्त जीवोंका पुनरावृत्ति होती है। तीसरे अविमुक्त उपासकोंके अन्तिम समयमें भगवान रुद्रदेव स्वयं आगमन करके तारकब्रह्म मन्त्र उपदेश करते हैं, उससे वे लोग ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं ; इसको अनावृत्ति मुक्ति कहते हैं। परन्तु इन तीनों प्रकारकी सिद्धियोंको सब प्राणी कर्म्मसे ही प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। यह गृहस्थाश्रम ही अत्यन्त पवित्र सिद्ध क्षेत्र और बड़ा है। जो मनुष्य कर्म्मकी निन्दा करके कुमार्गमें गमन अर्थात् सन्यास-धर्म्म ग्रहण करते हैं, वे सम्पूर्ण मूढ़ पुरुष अर्थ-भ्रष्ट होकर पापमें लिप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग

पितर लोक और ब्रह्मप्राप्ति रूपी यह नित्य भांतिकी नित्य सिद्धियोंको परित्याग करके मूढ़की भांति इस लोकमें जीवित रहके शीघ्रही कीट आदि हीन योनिको प्राप्त होते हैं। देखिये मन्त्रमें ऐसी विधि है, कि "हे यजमान्! द्रव्यदान आदि यज्ञ करो, मैं तुम्हें पुत्र पशु और स्वर्गादि सुख प्रदान करूंगा," इससे जिस प्रकारकी बिधि है, उसही बिधिके अनुसार चलनेसे तपस्विनीको परम तपस्या कही गई है। इससे इसही भांतिका यज्ञ और दानरूपी तपस्या तुम लोगोंको अवश्य कर्त्तव्य है। यथा नियमसे देवतोंकी पूजा, वेदाध्ययन, पितृ तर्पण और गुरुसेवाको ही पण्डितोंने कठिन तपस्या कहके वर्णन किया है; देवता लोग इसी भांति कठोर तपस्या करके परम ऐश्वर्य्यको प्राप्त भये हैं। इसही निमित्त मैं तुम लोगोंको अत्यन्त कठिन गृहस्थ धर्म्मके भारको ग्रहण करनेका उपदेश करताहूं। यह वेदोक्त कर्म्म ही जो मुख्य तपस्या और प्रजाकी उत्पत्तिका मूल है, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, क्योंकि वेदमें गार्हस्थाश्रम विधिके स्थानमें "गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंका मूल कहके वर्णित हुआ है। काम क्रोधसे रहित ब्राह्मणोंने इसी भांति धर्म्मानुष्ठानको परम तपस्या कहके स्वीकार किया है, और ब्रह्मचर्य्यादि व्रतोंको मध्यम तपस्या कहके वर्णित किया है। जो लोग दिन और रात्रिमें कुटुम्बको विधि पूर्वक अन्नप्रदान करके भोजन करते हैं, वे विघ्नाशी पुरुष दूसरेको न प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते हैं। हे तपस्वी लोगो! देवता पितर, अतिथि कुटुम्ब और अपने आश्रित लोगोंको यथारीतिसे अन्नप्रदान करके भोजन कराते हैं, वे विघ्नाशी पुरुष दूसरेके न-प्राप्त होने योग्य स्थानमें गमन करते हैं। इससे जो लोग इस लोकमें सत्यवादी और उत्तम व्रताचरणमें रत होके अपने धर्म्मके आसरेसे स्वयं संशय रहित होके यह विषय दूसरेको उपदेश करते हैं, वह निर्म्मत्सरी कठिन कर्म्म करनेवाले पुरुष शरीर त्यागनेके अनन्तर इन्द्र लोकको प्राप्त करके बहुत समय तक स्वर्गमें बास करते हैं।

अर्ज्जुन बोले, हे महाराज! तिसके अनन्तर उन तपस्वी लोगोंने पक्षी रूपी देवराज इन्द्रके धर्म्मार्थ युक्त हितकर वचन सुनकर सन्यास धर्म्मको निष्फल समझ उसे त्यागके गृहस्थ धर्म्म अवलम्बन किया। हे धर्म्मज्ञ! आप भी इस समय उस चिरभ्यस्त धीरज धारण करके निष्कण्टक यह पृथ्वी शासन कीजिये।

११ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! धर्म्मात्मा बोलनेवालोंमें मुख्य दुःखसे कुपित, चौड़ी छातीवाले महाभुज बुद्धिमान शत्रुनाशन नकुल अर्ज्जुनके बचन समाप्त होनेपर निज भाई धर्म्मराज युधिष्ठिरकी ओर देखकर उनके चित्तको परिवर्त्तित करनेकी अभिलाषासे यह बचन बोले, हे महाराज! विशाख यूप नाम किसी क्षेत्र विशेषमें अग्नि स्थापित करनेके वास्ते देवतावोंने एक अग्नि कुण्ड बनाया था, वह अबतक भी दीख पड़ता है; इससे देवललाभ भी आप कर्म्मफलसे ही समझिये! और जो लोग जलवृष्टि आदिसे नास्तिकोंको भी प्राणदान करते रहते हैं; वे पितर लोग भी विधिपूर्व्वक कर्म्म किया करते हैं। जो लोग वेदोक्त धर्म्मका परित्याग करनेवाले हैं; उन्हें अवश्य ही नास्तिक समझिये; क्योंकि ब्राह्मण लोग कभी किसी कर्म्ममें वेदोक्त विधिको परित्याग करके किसी प्रकारसे स्थित नहीं रह सकते। वेद जाननेवाले पण्डितोंने ऐसा कहा है, कि गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है; उस गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले मनुष्योंको देवार्चनासे ब्रह्मलोक

प्राप्त होता है। हे महाराज! निश्चय कीजिये कि जो पुरुष श्रेष्ठ यज्ञको करते हुए वेदज्ञ ब्राह्मणोंको धर्मसे उपार्ज्जित धन प्रदान करते, और अहङ्कार तथा ममता आदि त्यागके इन्द्रियसंयममें रत रहते हैं, उन्हें ही पण्डित लोग सात्विक त्यागी कहते हैं। जो पुरुष सुखभोग्य गृहस्थाश्रमको त्यागके जंगलमें गमन करता है अथवा अनशन आदिसे शरीर त्याग करता है, उसे तामसत्यागी समझिये। जो गृहत्यागके मौनावलम्बन पूर्व्वक वृक्ष आदिके नीचे सर्व्वदा-स्थित होके योगाभ्यासमें रत रहते हैं और कोई अभिलाषा न करके केवल शरीर निर्व्वाहके वास्ते भिक्षा मांगनेके वास्ते भ्रमण करते हैं, वे भिक्षुक सन्न्यासी कहके प्रसिद्ध हैं; और जो ब्राह्मण क्रोध, हर्ष और चुगलीको त्यागके वेदाध्ययनमें रत रहते हैं, उन्हें भी भिक्षुक सन्न्यासी कहा जाता है। पण्डित लोग कहते हैं, कि सब आश्रमोंकी बराबरी करनेमें एक ओर तीनों आश्रम और एक ओर गृहस्थाश्रम; क्योंकि गृहस्थाश्रम ही ब्रह्मचर्य्यादि तीनों आश्रमोंका आश्रयस्वरूप है। लोकोंके तत्वको जाननेवाले महर्षियोंने सब आश्रमोंके तारतम्यकी समालोचना करके जब समझा कि, गृहस्थाश्रममें स्वर्ग और काम दोनों ही प्राप्त होते हैं, तब यही उन लोगोंकी गति और अवलम्बस्वरूप हुआ। हे भरत-श्रेष्ठ! जैसे मूढ़ लोग गृहत्यागके बनवासी बनते हैं, वैसा न करके फलासक्तिसे रहित होकर गृहस्थाश्रममें ही कर्त्तव्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेवाले पुरुष उन बनवासियोंसे श्रेष्ठ और प्रकृत सन्यासी हैं; और जो पुरुष सन्न्यास वेष धरके मनमें सम्पूर्ण कामनाओंसे युक्त वस्तुओंका ध्यान करता है, उसको गर्द्दनमें यमराज अपना फांस डालके उसे बांध लेता है। हे राजन्! जो कर्म्म अहङ्कार वश किये जाते हैं, वे फलदायक अर्थात् मुक्ति देनेवाले नहीं होते। और जो कर्म्म आसक्ति रहित होकर किया जाता है, वह महा फलदायक होता है, क्यों कि वह मुक्तिका कारण समझा जाता है। शम, दम, धैर्य्य, पवित्रता, सरलता, स्तुति, यज्ञ और धर्म्म ये सब नियमित आचार ऋषि-प्रणीत विधि कहके वर्णित हैं। गृहस्थाश्रममें देवता, पितर और अतिथिके उद्देश्यसे यज्ञ आदि कर्म्म करना योग्य है ऐसा करनेसे ही त्रिवर्ग योग साधन होता है। इससे आसक्तिरहित होकर गृहस्थाश्रममें स्थित सन्न्यासी पुरुषके वास्ते यह लोक और परलोक कुछ भी नष्ट नहीं होता।

महाराज! पापरहित प्रजापतिने "नाना भांतिकी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञ करके ये लोग मेरी पूजा अर्चा करेंगे," इसी अभिप्रायसे प्रजाओंको उत्पन्न किया है। देखिये वृक्ष, लता, औषधि पशु और मेष आदि सम्पूर्ण सामग्री यज्ञके निमित्त ही उत्पन्न हुई हैं; और पवित्र घृत भी यज्ञमें प्रयोजनीय है। यज्ञकर्म्म गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले पुरुषोंके ज्ञानको बढ़ानेवाला है; इससे इस दुर्लभ गृहस्थाश्रम धर्म्मके कर्म्मोंका अनुष्ठान करना अत्यन्त कठिन कार्य्य है। उस अति दुर्लभ गृहस्थाश्रममें निवास करके तथा पशु और धनधान्य आदि सामग्रियोंसे युक्त होकर भी जो गृहस्थ पुरुष यज्ञादि कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं करते, वह बहुत दिनोंतक पापभोग करते हैं। महाराज! ऋषियोंके बीच कोई वेदाध्ययन, कोई ज्ञानकी समालोचना और कोई मनहोमन शास्त्र आलोचनारूपी महायज्ञका अनुष्ठान करते रहते हैं। ऐसी भांति स्थिर चित्तवाले ब्रह्मस्वरूप ब्राह्मणोंके संसर्गमें रहनेके वास्ते देवता लोग भी अभिलाष करते हैं। हे राजन्! शत्रुओंको जीतकर आपने जो बहुतसे रत्न संग्रह किये हैं, उसे यज्ञमें बिना व्यय किये ही, जो अब इस समय आरण्यक धर्म्म ग्रहण करनेका

प्रसङ्ग करते हैं; उससे केवल आपकी नास्तिकता प्रकाशित होती है। गृहस्थाश्रममें स्थित राजाओंकी सर्व्वमेध, अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञोंमें धन त्यागके अतिरिक्त दूसरी भांतिका त्याग अर्थात् सन्न्यास ग्रहण करते नहीं देखा है। हे राजेन्द्र! इससे जैसे देवराज इन्द्रने बहुतसे यज्ञ किये थे, वैसेही अश्वमेध, राजसूय प्रभृत यज्ञ जिनकी ब्राह्मण लोग प्रशंसा करते हैं, उन्हीका अनुष्ठान कीजिये। देखिये राजाकी असावधानीसे यदि डाकू लोग प्रजाके धनको हर लेवें; और राजा यदि प्रजाकी रक्षा न करे, तो वह राजा साक्षात् कलियुगका स्वरूप ही कहा जाता है।

हमलोग राजपुत्र होकर भी यदि सज्जित हाथी, घोड़े, गऊ और सब भांतिसे अलंकृत दासी, सेवक, गांव, भूमि और गृह आदि सामग्री ब्राह्मणोंको दान न कर सके, तो अपने दोषसे ही हम लोग मत्सरी होकर कलिस्वरूप कहे जावेंगे। जो लोग दान आदि कर्म्मसे प्रजाकी रक्षा नहीं करते, वे पापी राजा लोग परलोकमें सदा दुःख भोग करते हैं; वे कदापि सुख नहीं पा सकते। हे धर्म्मराज! जो पवित्र तीर्थोंमें स्नान पितरलोकके वास्ते श्राद्धादि और देवताओंके वास्ते यज्ञ आदि कर्म्मोंका अनुष्ठान न करके बनके बीच गमन करेंगे, तो आप दोनों लोकसे अन्तमें इस प्रकार नष्ट होंगे, जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे बादल छिन्नभिन्न हो जाते हैं। जो भीतरसे अभिमान और बाहरी सम्पूर्ण वस्तुओंमें मनकी आसक्ति त्याग सकते हैं, वे ही प्रकृत सन्न्यासी हैं; नहीं तो गृहस्थाश्रम त्यागके बनमें चले जानेसे कोई सन्न्यासी नहीं हो सक्ता। महाराज! अप्रतिषिद्ध और वेधकार्य्यमें स्थित ब्राह्मणोंके विषयमें यह लोक और परलोक नहीं बिगड़ता। पहिले समयमें साधु पुरुषोंने जैसा आचरण किया है, तथा अपने धर्म्ममें रत होके जैसे देवराज इन्द्रने दैत्योंका बध किया था, वैसे ही युद्धभूमिमें पराक्रमी शत्रु कौरवोंका बध करके आप जिस प्रकार शोक कर रहे हैं, वैसा कौन पुरुष शोक करता है? हे राजेन्द्र! अब शोक न कीजिये; आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार पराक्रमके प्रभावसे पृथ्वी जय की है; इससे अब यज्ञ करके मन्त्रपाठ करनेवाले ब्राह्मणोंको बहुत सा धनादि दान कीजिये; ऐसा करनेसे आप अनायाससे ही शीघ्र स्वर्ग लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

१२ अध्याय समाप्त।

सहदेव बोले, महाराज! केवल बाह्यवस्तु सम्पूर्ण परित्याग करनेसे ही सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती, वरन आन्तरिक आसक्ति त्याग सके तो सिद्धि प्राप्त होना सम्भव है। अन्तरमें विषयासक्त और बाहरी वस्तुओंके त्याग करनेवाले पुरुषको जिस प्रकार धर्म्म और सुखलाभकी सम्भावना रहती है, वह हम लोगोंके शत्रुवोंको प्राप्त होवे; और आन्तरिक अभिमान आदि त्यागके यथानियमसे पृथ्वी शासन करनेवाले राजाको जैसा धर्म्म और सुख प्राप्त होना सम्भव है, वह हम लोगोंके इष्ट मित्रोंको प्राप्त होवे। "मम" ये दो अक्षर ही मृत्यु हैं; और "न मम" ये तीन अक्षर अर्थात् निर्म्मम होके नित्य ब्रह्म जानना चाहिये। महाराज! ज्ञान और अज्ञान, ये दोनों अवश्य ही प्राणियोंके शरीरमें अलक्षित रूपसे स्थित होकर आपसमें प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। यदि यह निश्चित है कि जीव अमर है, तो शरीर नष्ट करनेसे कैसे प्राणियोंकी हिंसा हो सकती है? और यदि शरीरका जन्मना मरना देखकर उस जीवकी उत्पत्ति और मृत्यु माने तो वेदमें कही हुई समस्त क्रिया मिथ्या होजावेंगी; इससे जीवकी उत्पत्ति और नाशके विषयमें सन्देह त्यागके पूर्व्व समयके साधु पुरुषोंके आचरित मार्गको अवलम्बन

करना बुद्धिमान पुरुषको उचित है। इस स्थावर जङ्गमसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त करके भी जो पुरुष राज्यसुख नहीं भोग करते, उनका जीना ही निष्फल है। जो लोग वनवासी होकर जीवन धारण करते हैं, परन्तु और विषय वासनाकी ममता उनके चित्तसे नहीं छूटती; वे शीघ्र ही मृत्युके कराल ग्रासमें पतित होते हैं। हे महाराज! आप इस आत्माको प्राणियोंके भीतर बाहर प्रत्यगात्म रूपसे स्थित समझिये; जो लोग आत्माको ऐसा जान सकते हैं, वे महाभयसे मुक्त होते हैं। आप हम लोगोंके पिता, माता भ्राता और गुरु हैं; इससे मैंने दुःखसे आर्त्त होकर जो कुछ प्रलापयुक्त वचन कहा है, उस अपराधको क्षमा कीजिये; क्यों कि मैंने जो कुछ कहा है, चाहे वह न्याययुक्त हो अथवा अन्याय पूरित ही होवे, केवल आपमें भक्ति रहनेके कारणसे ही मैंने कहा है।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! भीमसेन आदि भाइयोंने वेदविहित वचनोंको कहके इस प्रकार धर्म्मराज युधिष्ठिरको प्रबोधित किया; तौभी जब उन्होंने कुछ उत्तर न दिया। तब महत् अभिजन-सम्पन्न आयतनैनी स्त्रियोंमें अग्रगण्य श्रीमती द्रौपदी देवीने कुछ कहनेकी अभिलाष की। वह धर्म्म जाननेवाली, धर्म्मदर्शनी, विपुलश्रोणी पाञ्चाली स्वाभाविक ही मानिनी थी उसपर भी राजा युधिष्ठिर उसका सदा सम्मान किया करते थे; इस ही कारण वह उनके समीप बहुत कुछ अभिमान युक्त वचनोंको प्रकाशित कर सकती थी। वह हाथियोंके बीचमें स्थित यूथपतिकी भांति सिंह और शार्दूलके समान पराक्रमी भाइयोंके बीचमें बैठे हुए राज शिरोमणि निज स्वामी युधिष्ठिरकी ओर कटाक्ष करके मनोहर शान्त वचनसे उन्हें सम्बोधन करके बोली, महाराज! तुम्हारे भ्राता सूखे कण्ठसे युक्त चातककी भांति चिल्ला रहे हैं, तौभी तुम उन लोगोंको अभिनन्दन नहीं करते हो? बहुत दिनोंसे दुःख भोग करनेवाले महामतवाले हाथीके समान पराक्रमी इन भाइयोंको आप यथा उचित वचनोंसे आनन्दित कीजिये।

हे राजेन्द्र! पहिले द्वैतवनमें जब तुम्हारे ये सब भाई सर्दी, वायु और गर्म्मीसे अत्यन्त क्लेशित हुए थे; तब उस समय आपने कहा था,—"हे शत्रुओंको नाश करनेवाले युद्धविजयी भ्राता लोगो! हम सब कोई मिलके युद्धभूमिमें दुर्य्योधनको मारकर सब अभिलाष सिद्ध करनेवाली पृथ्वीको भोग करेंगे; और जब तुम लोग शत्रु सेनाके रथियोंको रथ रहित और हाथियोंको मारकर उन सब रथों और चतुरङ्गिनी सेनाके मृत शरीरोंसे पृथ्वीको परिपूरित करके अनेक दक्षिणासे युक्त अनेक भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करोगे, उस समय तुम लोगोंका यह सब दुःख सुखमें परिणत होगा।" हे धर्म्मात्माओंमें मुख्य महाराज! आप उस समय इस प्रकार धीरजयुक्त वचन कहके इस समय किस कारणसे हम लोगोंका मन उत्साहरहित कर रहे हैं? देखिये कादर पुरुष कदापि पृथ्वी वा ऐश्वर्य्य भोगनेका अधिकारी नहीं होसकता। और जैसे कीचड़में मछली नहीं रह सकती, वैसे ही नपुंसकके घरमें पुत्र कलत्र नहीं रहते। राजा दण्ड रहित होनेसे प्रभावयुक्त पृथ्वीको भोगनेमें समर्थ नहीं हो सकता और उसकी प्रजा भी कदापि सुख नहीं पासकती। महाराज! सब प्राणियोंके ऊपर मित्रभाव, दान, अध्ययन और तपस्या ये सब ब्राह्मणके धर्म्म हैं; क्षत्रियके नहीं। दुष्टोंका नाश, साधु पुरुषोंका पालन, और युद्धमें पीछे न हटना यही राजाओंके परम

धर्म्म हैं। जिसमें चमा, दान, क्रोध, भय; अभय, निग्रह और अनुग्रह वर्त्तमान है, उसी को धर्म्मज्ञ कहा जा सकता है। महाराज! आपने ,दान, अध्ययन सान्त्ववाक्य, यज्ञ, वा याचना करके पृथ्वी नहीं प्राप्त किया है; द्रोणाचार्य्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य्य आदि महावीरोंसे रक्षित युद्धमें उद्यत शत्रुके हाथी, घोड़े, रथ और पदाति वीरोंसे युक्त चतुरङ्गिनी सेनाका नाश करके इस पृथ्वीको प्राप्त किया है, इससे अब इसे भोग कीजिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! पहिले राजसूय यज्ञके समयमें आपने अनेक भांतिके प्राणियोंसे युक्त यह जम्बूद्वीप, महामेरु पर्व्वतके पश्चिम जम्बूद्वीपके समान क्रौञ्च द्वीप और महागिरिके पूर्व्व क्रौञ्च द्वीप सदृश शाकद्वीप और इस महापर्व्वतके उत्तर दिशामें स्थित भद्रश्व द्वीप, इसके अतिरिक्त समुद्र पर्य्यन्त नाना प्राणियोंसे युक्त सम्पूर्ण अन्तर्द्वीपोंको भी शासित किया था। हे महाराज! आप इस भांति असीम कार्य्योंको करके ब्राह्मणोंसे सम्मानित होकर भी क्यों नहीं प्रसन्न चित्त होते हैं? क्या ही आश्चर्य्य है! आप मतवाले हाथी और वृषभके समान पराक्रमी अपने भाइयोंको ओर देखकर इन्हें आनन्दित करिये। देखिये आप सब कोई देवतोंके समान शत्रुओंका नाश करने और उनके पराक्रमको सहनेमें समर्थ हैं; अधिक क्या कहूं, मेरे विचारमें हम लोगोंके बीच एक ही पुरुषके स्वामी होनेसे परम सुखका निमित्त होसक्ता है। जब शरीरको धारण करनेवाली पांचों इन्द्रियोंको भांति आप पांचों भाई मेरे स्वामी हैं; तब जो मेरा कितना सौभाग्य है; उसे कहां तक वर्णन करूं? महाराज! मेरी सास सर्व्वज्ञानसे युक्त,दीर्घदर्शिनी कुन्तीदेवीने कुछ भी मिथ्या वचन नहीं कहा था, उन्होंने मुझसे कहा था, "हे द्रौपदी! महापराक्रमी युधिष्ठिर युद्धभूमिमें सहस्रों राजाओंको मारके तुम्हारे सुखका विधान करेंगे," परन्तु आपको सहसा इस प्रकारसे मोहयुक्त देखकर अब बोध होता है, उनके वे सब वचन मिथ्या हुए। जिसका जेठा भाई उन्मत्त होता है छोटे भाई सब उसके ही अनुगामी होते हैं। देखिये आपका चित्त उन्मत्तता युक्त होरहा है, तोभी आपके भाई आपके अनुगामी होरहे हैं। हे राजेन्द्र! यदि ये लोग उन्मत्त न हुए होते तो नास्तिकोंके सहित आपको बांधके स्वयं ही पृथ्वीका शासन करते। जो पुरुष मूढ़ होकर आपकी भांति आचरण करता है, उसका कदापि कल्याण नहीं हो सकता। जो पुरुष इस भांति उन्मादमार्गी होता है, धूप अञ्जन नाश और रचा बन्धनसे उसकी चिकित्सा करनी उचित है। परन्तु हे भरतसत्तम महाराज! स्त्रियोंके बीच में ही अत्यन्त अधम हूं, क्यों कि मैं वैसे पुत्रोंसे रहित होकर भी अभी जीवित रहनेकी अभिलाषा करती हूं। आपके ये सब भाई लोग और मैं,-हम सब कोई यत्न कर रहे हैं; इससे हमारे वचनोंको निष्फल करना आपके उचित नहीं है। देखिये आप सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको त्यागके वनमें गमन करनेके वास्ते उद्यत होकर स्वयं ही विपदको आवाहन कर रहे हैं। महाराज! पहिले जैसे समस्त राजाओंमें माननीय मान्धाता और अम्बरीष थे, इस समय आप भी उस ही भांति विराजमान हैं। इससे धर्म्मके सहित प्रजाको पालन करते हुए वन पर्व्वत और अनेक द्वीपोंसे युक्त इस पृथ्वीका शासन, विविध यज्ञोंका अनुष्ठान, और शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करते हुए ब्राह्मणोंको धन वस्त्र आदि अनेक भांतिकी भोगप्रद वस्तु प्रदान कीजिये; और विरत न होइये।

१४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजयं! अर्ज्जुन द्रौपदीके वचनको सुनकर जेठे भाई, अच्युत महाबल युधिष्ठिरका सम्मान करते हुए फिर कहने लगे।

अर्ज्जुन बोले, हे महाराज! दण्ड ही समस्त प्रजाको शासन और पालन करता रहता है; और सम्पूर्ण प्राणियोंको निद्रावस्थामें भी दण्ड जागता रहता है; इस हीकारण पण्डित लोग दण्डको ही धर्म्म कहके वर्णन करते हैं। दण्डही धर्म्म अर्थ और कामका रक्षक है; इसहीसे दण्ड त्रिवर्ग नामसे वर्णित हुआ है। अधिक क्या कहूं, प्रजाओंकी धनधान्य आदि जो कुछ वस्तु है, वह सब दण्डसे ही रक्षित होती है। हे राजेन्द्र! इससे आप भी ऐसाही निश्चय करके लोक-रक्षा स्वरूप दण्डको ग्रहण करके लौकिक भावोंपर दृष्टि कीजिये। देखिये इस पृथ्वीपर कितने ही पापी पुरुष केवल राज दण्डके भयसे ही पाप कर्म्मोंमें प्रवृत्त नहीं होते; कोई कोई यम-दण्ड और परलोकके भयसे और कोई कोई जातिय भयसे पापाचरण करनेमें प्रवृत्त नहीं होते। हे राजन्! इसी भांति लौकिक व्यवहारोंकी सिद्धि होती है; परन्तु सब प्राणी केवल दण्ड-भयसे ही अपने अपने कार्य्योंमें यथा रीति तत्पर हैं। इस पृथ्वीपर बहुतेरे प्राणी ऐसे भी हैं, जो केवल दण्डभयसे आपसमें एक दूसरेको भक्षण नहीं करते। अधिक मैं अब क्या कहूं, यदि दण्ड प्रजाकी रक्षा न करता; तो समस्त प्राणी महाघोर अन्धकार रूपी नरकमें पतित होते। दुष्टोंका दमन और साधारण पुरुषोंको शासित करता है, इसीसे पण्डितोंने उसका नाम दण्ड रक्खा है। यदि ब्राह्मणजाति कुछ अपराध करे, तो केवल वचनसे उसे दण्डित करना कर्त्तव्य कर्म्म है। अपराधी क्षत्रियको केवल भोजन मात्र प्रदान करना चाहिये, उसे वेतन देना उचित नहीं है, वैश्यको धन (जुर्म्माना) रूपी दण्ड करे और शूद्र जातिको दूसरा कुछ दण्ड न करके उससे केवल सेवा कर्म्म करानेकी ही विधि है। प्रजाके धन प्राणकी रक्षा और सावधानताके वास्ते जगत्‌के बीच दण्डका नियम स्थापित हुआ है। जहां दण्ड चलानेवाला राजा पूर्णरीतिसे विचारवान होता है, और श्याममूर्त्ति तथा लाल नेत्रवाला दण्ड यथार्थ रीतिसे उद्यत रहता है; वहांपर प्रजा कदापि मोहित नहीं होती। ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक सब आश्रमवाले केवल दण्डभयसे नियमित पथमें स्थित हैं। महाराज! यदि दण्डभय न रहता तो कोई पुरुष यज्ञानुष्ठान और दान कर्म्म करनेकी इच्छा न करते, अधिक क्या कहूं, भय रहित होनेसे कोई पुरुष भी नियममें रहनेकी इच्छा न करते। जैसे मछुए बिना मछलियोंकी हिंसा किये जीविका निर्व्वाह नहीं कर सकते, वैसे ही राजा लोग भी शत्रुओंको बिना नष्ट किये कदापि राजश्रीको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते। राजा लोग यदि अपने शत्रुओंका नाश न करें, तो उनका धन, कीर्त्ति और प्रजा कुछ भी स्थायी नहीं रह सकती। देखिये इन्द्रने वृत्रासुरका बध करके महेन्द्र नाम प्राप्त किया है देवताओंके बीच जो लोग शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, उनको सब कोई भक्ति पूर्व्वक पूजा अर्चा किया करते हैं। रुद्र इन्द्र, वरुण, अग्नि, स्वामकार्त्तिक, यम, काल, मृत्यु वायु, कुवेर, सूर्य्य, वसु, मरुत, विश्वदेव और साध्य आदिक देवता ये सब कोई शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। परन्तु मनुष्य लोग उन देवतोंके प्रतापको जानके विनीत भावसे उन्हें प्रणाम किया करते हैं; ब्रह्मा, धाता वा पूषाको कदापि प्रणाम नहीं करते। केवल कोई कोई मनुष्य सब कर्म्मोंमें सम्पूर्ण प्राणियोंको सम दृष्टिसे देखते हैं और साधु तथा परिश्रमी देवताओंकी पूजा अर्चा किया करते हैं। इस संसारके बीच में ऐसे किसी प्राणीको भी नहीं

देखता, जो बिना हिंसा किये ही जीविका निर्व्वाह कर सके, क्योंकि निर्व्वल प्राणियोंसे बलवान जीवोंका जीविका निर्व्वाह होता है; सर्व्वत्र ऐसाही नियम दीख पड़ता है। देखिये नकुल चूहेको, बिल्ली नकुल, कुत्ते बिल्लीको और चीता कुत्तेको भक्षण करते हैं। इसके अतिरिक्त काल-पुरुष समयके अनुसार उपस्थित होकर उन सबकोही भक्षण करता है। अधिक क्या कहूं, इस स्थावर और जङ्गममय जगत्‌के बीच जो कुछ पदार्थ हैं; उन्हें प्राणके भक्ष्य करके विधाताने उत्पन्न किया है; इसही कारण विद्वान पुरुष उस विषयमें मोहित नहीं होते।

हे राजेन्द्र! आपने जिस कुलमें जन्म ग्रहण किया है, उस कुलमें आचरित कर्म्मोंमें तुम्हें प्रवृत्त होना ही उचित है, मूढ़बुद्धि क्षत्रिय ही क्रोध हर्षको त्यागके वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करते हैं; परन्तु हिंसाके बिना तपस्वी लोगोंके शरीरका भी निर्व्वाह नहीं होसकता। पृथ्वीपर जलमें और थलमें बहुतेरे छोटे छोटे जीव घुमे हुए हैं; तपस्वी लोग प्राण धारण करनेके निमित्त फल और जल आदिके सङ्ग उन छोटे छोटे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं। इस पृथ्वीपर बहुतसे ऐसे छोटे जीव हैं, कि अनुमानके अतिरिक्त उनका अस्तित्व स्थिर नहीं होसकता; वे जीव इतने सूक्ष्म हैं, कि नेत्रकी पलकके आघातसे भी शीघ्र नष्ट होसकते हैं। कोई कोई मनुष्य क्रोध और मत्सरता त्यागके मुनिधर्म्म अवलम्बन करके गांवसे निकलकर वनमें गमन करते हैं; परन्तु वहांपर भी उन मूढ़ पुरुषोंको गृहस्थाश्रमी होते देखा जाता है; और बहुतेरे पुरुष गृहस्थाश्रममें ही निवास करके भूमि खनन, औषधि छेदन और उद्भिज अण्डज आदि चारों भांतिके प्राणियोंकी हिंसा करके यज्ञकार्य्योंसे अनायास ही स्वर्गलोकमें गमन कर सकते हैं। इससे मुझे इस प्रकार निश्चय मालूम है, कि यथारीति दण्ड प्रयोग करनेसे ही प्राणी मात्रके कार्य्य सिद्ध होसकते हैं। इस जगत्‌के बीच दण्ड न रहता, तो समस्त प्रजा नष्ट होजाती; अधिक बलवान प्राणी अपनेसे निर्व्वल प्राणियोंको जलमें स्थित मछलियोंकी भांति विचार कर भक्षण कर डालते हैं। पहिले ब्रह्माने भी यह सत्य वचन वर्णन किया था कि अच्छी भांतिसे विचार पूर्व्वक दण्ड प्रयोग होनेसे ही प्रजाकी रक्षा होती है। देखिये शान्त अग्नि भी दण्डके भयसे फफकार देने मात्रसेही फिर प्रज्वलित होजाती है। साधु और दुष्ट पुरुषोंको विभाग करनेवाला दण्ड यदि इस संसारके बीच न रहता, तो सब प्राणी अन्धकार रूपी नरकमें पड़े रहते; कुछ भी विदित न होसकता। अधिक क्या कहा जावे, जो लोग नियम उल्लङ्घन करनेवाले, वेदनिन्दक और नास्तिक हैं,—वे भी दण्डसे पीड़ित होकर शीघ्र ही नियमके वशीभूत होजाते हैं। महाराज! समस्त प्राणी दण्ड भयसे नियमको उलङ्घन नहीं कर सकते क्योंकि इस जगत्‌के बीच पापरहित मनुष्य बहुत ही दुर्लभ हैं, इससे प्रायः सब कोई दण्ड भयसे भीत होकर नियमित मार्गमें गमन करते हैं। चारों वर्णकी प्रजाके सुख, धर्म्म, अर्थ रक्षा और उन लोगोंको नीतिमार्ग अवलम्बन करानेके ही वास्ते विधाताने दण्डको उत्पन्न किया है। यदि दण्डका भय न रहता, तो दुष्ट पक्षी आदि विपत्कारी जन्तु सदा यज्ञकी हवि, पशु और मनुष्योंको भक्षण करते, दण्ड प्रजाकी रक्षा न करे, तो वेदाध्ययन, दूध देनेवाली गऊका दुहना, और कन्याओंके विवाह आदि सब कार्य्य कभी न हों। यदि लोक-रक्षा करनेवाला दण्ड न रहता, तो समस्त क्रिया और नियम शिथिल होकर नष्ट होजाते तथा प्रजा किसी वस्तुको भी अपनी न समझ सकती अर्थात् बलवान निर्व्वलोंके धनको अनायासही बलपूर्व्वक हर लेते। यदि दण्ड

लोक-रक्षा न करता, तो कोई पुरुष भी निर्भयचित्त होकर विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त साम्वत्सरिक यज्ञोंके अनुष्ठान न कर सकते। और ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ आदि आश्रमवाले कोई पुरुष भी विधिपूर्व्वक अपने अपने आश्रमके कर्म्मोंका अनुष्ठान न करते और कोई पुरुष विद्या प्राप्त करनेमें भी समर्थ न होते। दण्डका भय न रहता, तो ऊंट, बलवान बैल, घोड़े, खच्चर और गर्द्दभ आदि पशु सवारियोंमें जुतकर कदापि उसे वाहन न करते। हे महाराज! समस्त प्राणी दण्डभयसे यथानियम स्थित हैं; इसी ही कारणसे पण्डित लोग दण्डको सब धर्म्मोंका मूल समझते हैं; दण्ड ही मनुष्योंको स्वर्गलोकमें ले जानेका मूलका कारण है, अधिक क्या कहूं, यह सम्पूर्ण जगत् केवल दण्डप्रभावसे ही प्रतिष्ठित है। जिस स्थानपर शत्रुओंका नाश करनेवाला दण्ड विधिपूर्व्वक प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमें किसी प्रकारके अनिष्ट कपटता, ठगहारी नहीं रह सकती, यदि दण्ड उद्यत होकर प्रजाकी रक्षा न करता, कौवे पुरोडाश भोजन और कुत्ते यज्ञके घृतको चाटनेमें प्रवृत्त होते। हे राजन्! धर्म्म हो, वा अधर्म्म ही होवे; इस समय यह राज्य हम लोगोंको प्राप्त हुआ है, आप शोक त्यागके उसे भोग करिये और यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये। श्रीमान् पुरुष अपने प्रियपुत्र कलत्रके सङ्ग वास कर सुन्दर वस्त्र पहरते और उत्तम भोजन करते हुए सुखपूर्व्वक धर्म्माचरण करते रहते हैं। इस संसारके बीच जो कुछ कार्य्य हैं, वे सब धनके वशमें हैं, और वह धनदण्डके अधिकारमें है। इस समय विचार करके देखिये, कि दण्डका कितना बड़ा गौरव है। आप समझ रखिये लोकयात्रा निर्व्वाहके वास्ते ही धर्म्म स्थित हुआ है। कोई निर्व्वल पुरुष बलवान पुरुषसे पीड़ित होनेपर उस निर्व्वल पुरुषके परित्राणके वास्ते बलवानका नाश करनेसे उस सदात्मक हिंसाके द्वारा अहिंसासे भी बढ़के धर्म्मोपार्ज्जन होता है। हे राजन्! इस संसारके बीच कोई कार्य्य भी एकबारगी दोष पूर्ण और दोषसे रहित नहीं है, सम्पूर्ण कार्य्योंमें कुछ दोष और कुछ गुण दीख पड़ते हैं। देखिये कितने ही पुरुष पशुओंसे भार आदिक कार्य्य करा लेते हैं, फिर भी उन्हें दुःखित करते, सींगोंको काटते, उन्हें बांधते और उनके शरीरपर प्रहार करते हैं। यह अनित्य लोक व्यवहार इसी भांति पर्य्याकुलित अर्थात् दण्डके प्रभावसे समस्त कार्य्य निर्व्वाहित होते हैं; इससे आप भी ऐसे ही व्यवहारोंसे प्राचीन धर्म्माचरण कीजिये। यज्ञका अनुष्ठान, दान, प्रजापालन, शत्रुओंका नाश और मित्रोंको पालन करते हुए पूर्णरीतिसे धर्म्मोपार्ज्जन करिये। हे राजन्! शत्रु नाशके समय आपके चित्तमें कुछ भी दीनता उपस्थित न होवे; क्योंकि विधिपूर्व्वक शत्रुओंका नाश करनेसे उसे बध करनेवालेको पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता। अधिक क्या कहें, यदि ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण मारनेकी इच्छासे उपस्थित होवे, तो शस्त्र ग्रहण करके उसका बध करनेसे ब्रह्महत्याके पापमें भी नहीं लिप्त होना पड़ता; क्योंकि उस सन्मुख उपस्थित होनेवाले आततायी पुरुषका क्रोध ही मारनेवालेके क्रोध उत्पन्न करानेका मूल है। विशेष करके जो सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं, उनका कोई नाश नहीं कर सकता, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यदि आत्मा अबध्य है, तो कौन किसका बध करनेवाला होसकता है? जैसे मनुष्य बार बार घरमेंसे घरके भीतर प्रवेश करते हैं; वैसेही जीव भी बार बार एक शरीर त्यागके दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। देहधारीके प्राचीन शरीर त्याग और नवीन शरीर धारण करनेका ही तत्वदर्शी पण्डित लोग मृत्यु कहके वर्णन करते हैं।

१५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनका वचन समाप्त होनेपर महा तेजस्वी क्रोधी भीमसेन धीरज धर जेठे भाई राजा युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! आप किसी विषयमें अज्ञान नहीं हैं सम्पूर्ण धर्म्म आपको विदित है; हम लोग सदा आपके चरित्रके अनुसरण करनेकी इच्छा करते हैं। परन्तु किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकते। आपको कुछ भी न कहूं, ऐसे ही मनमें इच्छा रहती है; परन्तु दुःखके वेगको न सहनेके कारण इस समय मैं कुछ कहता हूं, आप सुनिये। आपके मोहयुक्त होनेसे सब निष्फल होरहा है, और हम भी कातर तथा निर्व्वल होरहे हैं! आप सब शास्त्रोंके जानने-वाले राजा होकर भी किस कारण दीन-भावसे युक्त कायर पुरुषकी भांति मोहित होरहे हैं? हे राजन्! प्राणियोंकी सुगति और अगति आपको विदित है; और भविष्यत तथा वर्त-मान कालकी गति भी आपसे छिपी नहीं है। इस राज्यके विषयमें मैं आपसे कुछ कारण दिखाके वचन कहता हूं, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस जीव-लोकमें शारीरिक और मानसिक ये हो दो भांतिकी पीड़ा उत्पन्न होती हैं; परन्तु उनमेंसे एकके उत्पन्न होनेसे ही दूसरे की उत्पत्ति होती है। शारीरिकके विना मानसिक और मानसिकके विना शारी-रिक पीड़ा नहीं उत्पन्न होसकती। शरीरके अस्वास्थ्यसे मानसिक पीड़ा प्रगट होती है और मानसिक पीड़ा उत्पन्न होनेसे ही शरीर शिथिल होता है; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। जो पुरुष बीते हुए शारीरिक और मानसिक क्लेशोंको स्मरण करके शोकित होता है, वह एक सङ्ग दूसरे क्लेशको आकर्षित करके दो अनर्थोंमें फंसता है। कफ, पित्त और वायु शरीरके येही तीन गुण हैं, इन तीनों गुणोंकी जो साम्या वस्था है, उसे ही स्वस्थ शरीरके लक्षण कहते हैं; और उनको घटती बढ़ती होनेसे ही प्रति-कार करनेके वास्ते उपदेश है; उष्ण वस्तुसे कफ और ठण्ढी वस्तुओंसे पित्त निवारित किया जाता है। शरीरकी भांति मनके भी सत, रज और तम, ये तीन गुण हैं, इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाको ही मानसिक स्वास्थ्यका लक्षण कहते हैं और उनमेंसे एकके उत्तेजित होनेसे प्रतिकारको आवश्यकता होती है; हर्षसे शोक और शोकसे हर्ष निवृत्त होता है। कोई कोई पुरुष सुखमें स्थित होकर दुःखको और कोई दुःखमें पड़के सुखको स्मरण किया करते हैं, परन्तु आप तो कभी सुख और दुःखमें आसक्त नहीं होते, इससे दुःखके समयमें सुख और सुख उपस्थितके समय दुःखको स्मरण करना आपको उचित नहीं है; देखिये, प्रारब्ध ही बलवान है। अथवा जिससे आप क्लेशित होरहे हैं, आपका स्वभाव यदि ऐसा ही होवे, तो पहिले जो शत्रु लोग हमारे सम्मुख ही एक वस्त्र धारण करनेवाली रज-स्वला द्रौपदीको सभाके बीच ले आये थे, उस विषयको आप क्यों नहीं स्मरण करते हैं? हमने जो नगरसे बाहर होके मृगछाला पहरके महाबनमें वास किया और वहांपर जटासुर तथा चित्रसेन गन्धर्व्वके सङ्ग युद्ध हुआ, सिन्धु-राज जयद्रथने द्रौपदीको हरण किया, अज्ञात-वास और राजपुत्री द्रौपदीके ऊपर कीचकके चरणप्रहार आदि बहुतसे उपद्रवोंसे अनेक भांतिके दुःख प्राप्त हुए थे; आप किस कारणसे उन सब दुःखोंको भूले जाते हैं? हे राजन्! पहिले जैसे भीष्म द्रोणके सङ्ग आपका युद्ध हुआ था, वैसे ही इस समय केवल एक मनके सङ्ग आपके युद्ध करनेका समय उपस्थित हुआ है, इस युद्धमें शस्त्रों और बन्धु-बान्धवोंका प्रयोजन नहीं होता इसमें एक मात्र बुद्धिकी सहायतासे ही युद्ध करना होगा यदि आप मनको बिना पराजित किये ही प्राण परित्याग करेंगे, तो आपको दूसरा शरीर ग्रहण करनेपर भी

शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करना होगा, अर्थात् दूसरे जन्ममें भी आप युद्ध कार्य्यको अनिवार्य्य समझिये। हे राजेन्द्र! इससे वन-गमन रूपी उत्पन्न हुआ भाव परित्याग कर आज ही आप समालोचना रूपी कर्म्मसे अव्यक्त रूप मानस युद्धसे पार होनेके वास्ते यत्नवान होइये, अर्थात् चित्त स्थिर करनेके वास्ते कोशिश करिये मनको बिना पराजित किये वाणप्रस्थ आदि किसी आश्रममें भी आपको सुख नहीं मिल सकेगा, और मनको जीतनेसे आप कृतार्थ हो सकेंगे। आप प्राणियोंकी गतिको इसी भांति बिचारके पितृ पितामह आदिके व्यवहारोंके अनुसार यथारीति राज्य शासन करनेमें प्रवृत्त होइये। महाराज! प्रारब्धसे ही पापी दुर्य्योधन अपने अनुयायी और सेवकोंके सहित युद्धमें मारा गया; प्रारब्धसे ही आप द्रौपदीके केशकी भांति फिर स्वकृयपद पर प्रतिष्ठित हुए हैं। हे राजेन्द्र! पराक्रमी कृष्ण और हम सब कोई आपकी आज्ञाके वशवर्त्ती हैं; आप इस समय दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये।

१६ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भीमसेन! असन्तोष, प्रमाद, विषयानुराग, अशान्ति, बल, मोह अभिमान और उद्वेग आदि पापोंमें रत होकर ही तुम राज्यकी अभिलाषा करते हो इससे विषय वासना त्याग कर सुख दुःखसे मुक्त और शान्त होकर सुखी हो। देखो, जो एकछत्र राजा होकर भी इस समस्त पृथ्वीको शासन करते हैं, उनके भी एकके सिवाय दो उदर नहीं हैं, तब तुम किस कारणसे इस राज्यकी प्रशंसा कर रहे हो? यह पूर्ण न होनेवाली आशा एक दिन वा कई एक महीनोंमें पूरी होनेकी बात तो दूर है, जीवनके अन्त समय तक भी यत्न करके कोई उसे पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। जैसे अग्नि काष्ठ प्राप्त होनेसे ही प्रज्वलित और काष्ठके अभावसे ही शान्त होती है, वैसे ही तुम भी थोड़े भोजनसे उद्दीप्त जठराग्निको शान्त करो। इस पृथ्वीपर मूर्ख पुरुष ही केवल अपने उदरके वास्ते बहुतसी भोजन करने योग्य वस्तुओंको संग्रह करते हैं, इससे तुम पहिले इस उदरको ही वशमें करो, ऐसा करनेसे ही मानो तुम सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लोगे; अनन्तर यथार्थ कल्याण प्राप्त करनेमें समर्थ होगे। तुम मनुष्योंके इच्छानुयायी ऐश्वर्य्य और भोगोंकी प्रशंसा करते हो; परन्तु भोगवासना त्यागके जो लोग तपस्यासे अपने शरीरको कृशित करते हैं, वे ही श्रेष्ठ लोकोंमें गमन कर सकते हैं। हे तात! धर्म्म और अधर्म्मात्मक राज्यलाभ और राज्यकी रक्षा, ये दोनों ही तुम्हारे हृदयमें परिपूरित हैं; तुम इस महाभारसे मुक्त होकर त्याग अर्थात् सन्त्यास धर्म्मका आश्रय करो। जैसे व्याघ्र एक ही उदरके वास्ते बहुतसा भोजन संग्रह करता है, और दूसरे बहुतेरे दुष्ट पशु उसके संग्रह किये हुए भोजनसे अपने शरीरका पोषण करते हैं; वैसे ही राजा लोग भी अपने एक मात्र उदरके ही वास्ते बहुत सा धन सञ्चय करते हैं, और धूर्त्त लोग उसके ही अवलम्बनसे अपनी अपनी जीविका निर्व्वाह करते हैं। तुम जो राजाओंके विषयमें विषयसक्ति त्यागरूपी अनन्तर-सन्न्यासको बिधि कहते हो, उससे राजा लोग कदापि सन्तोष प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते; तुम विषय-दूषित बुद्धि त्यागके स्वयं ही इस विषयको बिचारके देखो। जो लोग पत्राहारी और जो पत्थर दांत तथा ओखलीसे अन्नकी भूसी पृथक करके जीविका निर्व्वाह करते हैं, और जो लोग जल तथा वायुसे शरीरको रक्षा करते हैं; वे सम्पूर्ण तपस्वी लोग ही यथार्थ रूपसे नरक-यन्त्रणासे मुक्त हो सकते हैं।

इस पृथ्वी पर सुवर्ण और पत्थरके टुकड़ोंमें जिसको समबुद्धि है, वैसे निर्लोभी पुरुष और सम्पूर्ण पृथ्वीको शासन करनेवाले राजा, इन दोनोंमेंसे विषयानुरागसे रहित पुरुषको ही मुक्त समझना चाहिये ; राजाको नहीं ! इससे जो इस लोक और परलोकमें अव्यय तथा अशोककी निवास-भूमि स्वरूप हैं ; तुम उनका ही आसरा करके सम्पूर्ण कार्य्योंके सङ्कल्प, आशा और ममतासे रहित होजाओ। जो सब विषयोंके त्याग करनेवाले हैं, वे किसी वस्तुके वास्ते शोक नहीं करते ! तुम विषयासक्त हो, इस ही कारण विषयके वास्ते शोक करते हो। समस्त विषय वासनाको परित्याग करो ; ऐसा होनेसे मिथ्यापवाद अर्थात् बाहरी विषय भोग और भीतरी जो विषय त्यागरूपी सन्नासका अभिमान है उससे मुक्त हो सकोगे। इस जगत्में जीवोंको परलोक गमन करनेके विषयमें "देवयान और पितृयान" नामक दो मार्ग हैं ; तिसमें यज्ञ करनेवाले पितृयान और मोक्षार्थी लोग देवयान मार्गसे गमन करते हैं ! महर्षि लोग स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य्य आदि तपस्याके अनुष्ठानमें रत होकर शीघ्र ही शरीर त्यागके मृत्युके अधिकारसे पार होजाते हैं। इस संसारमें भोग्य विषय ही बन्धन स्वरूप हैं, और ये भोग्य-विषय ही कर्म्म कहके वर्णित हुए हैं ; जो लोग इस पापात्मक भोग्य विषय रूप कर्म्मसे मुक्त हो सकते हैं ; वेही इस परमपदको प्राप्त करते हैं।

पहिले शोक मोहसे रहित तत्वदर्शी जनकने जैसा कहा था, और आज पर्य्यन्त भी जो गाया, लोकसमाजमें वर्णनकी जाती हैं ; मैं उसे कहता हूं, सुनो। उन्होंने कहा था,—"ओहो ! मैं अनन्त ऐश्वर्य्यका स्वामी हूं, तौभी मेरा कुछ नहीं है ; इस मिथिला नगरीके भस्म होनेसे मेरा कुछ भी न जलेगा।" हे भीम ! इससे जैसे पर्व्वतपर चढ़नेवाला पुरुष नीचे रहनेवालोंको भली भांति देखनेमें समर्थ होता है, वैसे ही जो पुरुष ज्ञानरूपी प्रासाद पर चढ़े हैं, वे मूढ़ लोगोंको अविषयीभूत विषयोंके वास्ते महाशोक करते हुए देखते हैं ; परन्तु मन्दबुद्धिवाले मनुष्य उन्हें देखनेमें समर्थ नहीं होते। जिससे दृष्ट विषयोंका बोध अर्थात् निश्चय होता है, उसीको बुद्धि कहते हैं ; उस बोध रूपी नेत्रसे जो लोग अज्ञात विषयोंको जानते और देखकर ही उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्यको निश्चयकर सकते हैं ; उन्हें ही बुद्धिमान् और नेत्रवान् कहा जाता है। जो स्थिर चित्तसे ब्रह्मज्ञानसे युक्त विद्वान पुरुषोंके वचनको हृदयमें धारण कर सकते हैं, सर्व्वत्र अधिक सम्मान-लाभके अधिकारको प्राप्त करनेमें समर्थ हैं। जिस समय पृथक् रूपसे बोध होनेवाले आकाश आदि भूत एक आत्मामें ही स्थित हुए दीख पड़ते हैं ; तब ही समझना चाहिये, कि सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्मसे साक्षात्कार हुआ है ; तत्वज्ञ पुरुष ही वैसी परम गतिको प्राप्त कर सकते हैं ; अल्पज्ञ, तपस्या और ज्ञान हीन पुरुष कदापि परमगति प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, क्यों कि ज्ञानको ही सबका मूल जानना चाहिये।

१७ अध्याय समाप्त।

धर्म्मराज युधिष्ठिर ऐसा ही वचन कहके चुप हुए। अर्जुन उनके वचन रूपी शलाकासे पीड़ित और शोक दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर फिर बोले। महराज विदेहराज जनकका अपनी भार्य्याके संग जो कुछ वादानुवाद हुआ था, आज तक लोग उस विषयको वर्णन किया करते हैं ; मैं उस सम्वादको अर्थात् राजा जनकने जब सन्नास ग्रहण करनेमें सङ्कल्प किया, तब उनकी राज-पत्नीने उनसे जो कुछ वचन कहे थे, उसे वर्णन करता हूं, सुनिये

विदेहराज जनकने अनेक भांतिके रत्न, पुत्र, कलत्र स्वर्गपथस्वरूप यज्ञकर्म्मोंके अनुष्ठानको त्यागके, सर्व्वत्र निर्भय, निर्म्मत्सर, निरीह और निराकांक्षी होके एक मुट्ठी भृष्टयवसे ही जीविका निर्व्वाहके निमित्त सिर मुड़ाकर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते देखकर उनकी मनस्विनी प्यारी स्त्री क्रुद्ध होकर निर्ज्जन स्थानमें उनके समीप गमन करके इस प्रकार हेतुयुक्त वचन कहने लगी। हे महाराज! आप धन-धान्यसे युक्त निज राज्य परित्याग करके किस कारणसे कापालिक वृत्ति अवलम्बन करते हैं? भृष्ट-यवकी मुट्ठीसे जीविका निर्व्वाह करना आपके वास्ते कदापि यह उत्तम नहीं है। आपने इस बृहत् राज्यको परित्याग करके मुट्ठी भर भृष्ट यवचूर्णकी आशा करके "सब त्याग किया है"—यह आपकी प्रतिज्ञा और चेष्टा विपरीत हो रही है। और देखिये एक मुट्ठी मात्र भृष्ट यवसे आप कदापि देवता, पितर और अतिथियोंको तृप्त करनेमें समर्थ न होसकेंगे; इससे आपका सम्पूर्ण परिश्रम निष्फल होगा। आप देवता पितर, अतिथि और सबसे परित्यक्त तथा क्रियारहित होकर इस सन्न्यास धर्म्मको ग्रहण करते हैं! यह कैसा आश्चर्य है! ओहो! पहिले आप तीनों वेदोंके जानने वाले सहस्रों ब्राह्मणों और सब लोगोंके पालन करनेवाले होकर इस समय उन ही लोगोंके आसरेसे अपना उदर भरनेकी इच्छा करते हैं! आप प्रदीप्त राजश्री परित्याग करके इस समय कुत्तेकी भांति पराये अन्नकी आशा करके इधर उधर देख रहे हैं। कैसा आश्चर्य है! आपके इस प्रकार नष्ट होनेसे आपकी माता पुत्रहीन और आपकी भार्य्या कौशल राजपुत्री आज विधवाकी भांति बोध हो रही हैं; और ये दरिद्र क्षत्रिय लोग कर्म्म तथा फलार्थी होकर आपकी उपासना कर रहे हैं; जब कि मोक्ष पद अत्यन्त ही संशयसे युक्त है, और देहधारी पुरुष सब भांतिसे कर्म्म करनेमें परतन्त्र हैं; तब आप इन अनुयायी पुरुषोंकी आशा निष्फल करके कौनसे लोकमें गमन करनेमें समर्थ हो सकेंगे? जब आप धर्म्मपत्नी परित्याग करके जीवन धारणकी इच्छा करते हैं, तब आप भी अत्यन्त ही पापी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। आपको न इस लोक न परलोकमें कहीं भी मङ्गल न हो सकेगा। महाराज! आप किस कारणसे दिव्यसुगन्धयुक्त वस्तु, माला, अनेक भांतिके वस्त्र और अलङ्कारोंको त्यागके क्रियारहित होकर परिव्राजक धर्म्म ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं? सम्पूर्ण प्राणियोंको जल तथा वृक्षकी भांति आश्रयस्वरूप होकर इस समय आप दूसरेकी उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए हैं; क्या ही आश्चर्य है। महाराज! आपको बात दूर रहे, पुरुषार्थरहित होके निश्चेष्ट-भावसे स्थित होनेसे हाथीको भी कीड़े और मांसभक्षी जन्तु भक्षण करनेमें समर्थ होसकते हैं। जिस आश्रममें प्रविष्ट होनेसे सम्पूर्ण वस्तुवोंको परित्याग करके त्रिदण्ड, कमण्डलु और कौपीन ग्रहण करना पड़ता है, जिसमें प्रविष्ट होनेसे सब त्यागके केवल भृष्ट-यवकी एक मुट्ठीमें ही आसक्त होना पड़ता है, उसमें आपकी किस कारणसे प्रवृत्ति हुई है? यदि कहिये कि एक मुट्ठी अन्न और राज्य आदिमें मेरी सम दृष्टि है, तब आप किस कारणसे राज्य आदि त्याग करके केवल एक मुट्ठी भृष्टयवमें आसक्त हो रहे हैं? और यदि आपको ऐसा ही प्रयोजन है, तो "सर्व्वत्यागी हुआ हूं"-कहके आपने जो प्रतिज्ञा की है, वह व्यर्थ हो रही है। यदि आप केवल एक मात्र चिदानन्दमें अपने मनको स्थिर समझते हैं; तो ऐसा होनेसे "मैं तुम्हारा कौन हूं? और तुम्ही मेरे कौन हो" अर्थात् शुद्ध चिदाभासके परस्परका सम्बन्ध किस प्रकार रह सक्ता है? इससे कोई वस्तु तथा व्यक्ति विशेषमें आसक्त वा

विरक्त होना आपको किसी प्रकार भी उचित नहीं है। यदि अनुग्रह करना ही आपका कर्त्तव्य कर्म होवे, तो आप कृपाकरके इस पृथ्वी-कोही शासन कीजिये। जो लोग सुखार्थी पर निर्द्धन, तथा अत्यन्त दरिद्र हैं और समस्त बन्धु बान्धवोंसे परित्यक्त होकर दण्ड कमण्डलु आदि चिन्होंको धारण करके संन्यास ग्रहण करते हैं; उनके चिन्हको देखकर जो पुरुष उस भांति व्यवहार करनेमें प्रवृत्त होते हैं, अर्थात् मन्दिर, उत्तम शय्या, सवारी, उत्तम वस्त्र और अलङ्कार आदि त्यागके दण्ड कमण्डलु ग्रहण करते हैं उनका वह त्याग केवल विडम्बना मात्र है। हे महाराज! जो पुरुष सदा दान ग्रहण करता और जो पुरुष सदा दान देता है, उन दोनोंके बीच कौन श्रेष्ठ है? उन दोनोंका आपसमे कितनो दूरका अन्तर है; उसे विचार करके देखिये तो सही, ऐसा होनेसे अवश्य जान सकेंगे। परन्तु दम्भी और सदा मांगनेवालेको धन दान करनेसे जलती हुई अग्निमें आहुति डालनेकी भांति वह दान निष्फल होता है। जैसे अग्नि बिना किसी वस्तुको जलाये शान्त नहीं होती, वैसे ही भीख मांगनेवाले ब्राह्मण बिना कुछ प्राप्त हुए निवृत्त नहीं होते। दाताका अन्न ही साधु संन्यासियोंका जीवन-स्वरूप है, क्यों कि उन लोगोंका स्वयं बनाके भोजन करनेकी विधि नहीं है। इससे यदि राजा दाता न होवे, तो कैसे मोक्षार्थी पुरुषोंका जीवन धारण हो सकेगा? इस पृथ्वीपर जिसके घरमें अन्न है, वेही गृहस्थ कहे जाते हैं, भिक्षुक लोग उन्हीं सम्पूर्ण गृहस्थोंके आसरे शरीरयात्रा निर्व्वाह करते हैं; समस्त प्राणी अन्नसे ही जीवन धारण करनेमें समर्थ होते हैं इससे अन्नदाता प्राणदाता स्वरूप है। गृहस्था-श्रमसे निकलकर जितेन्द्रिय सन्यासी लोग गृहस्थ पुरुषोंके अवलम्बसे ही शरीरयात्रा निर्व्वाह करके हुए प्रतिष्ठा और शीग प्रभावको प्राप्त कर सकते हैं। महाराज! समस्त वस्तु-ओंके परित्याग करने, सिर मुड़ाने और भीख मांगनेसे कोई संन्यासी नहीं हो सकता; जो लोग सरलभावसे सम्पूर्ण विषय युक्त सुखोंको परित्याग करनेमें समर्थ होसकते हैं, उन्हेंही सन्न्यासी कहना चाहिये। जो भीतरसे समस्त वस्तुओंमें आसक्तिरहित होकर बाहरसे आस-क्तिकी भांति व्यवहार करते तथा मित्र शत्रुको समान जानते हैं, वे सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त हो सकते हैं, और वैसे सङ्गरहित पुरुषको ही मुक्त कहा जा सकता है। मूर्ख लोग बहुतसे आशापाशमें बंधकर शिष्य और मठ आदि विषय प्राप्त होनेकी अभिलाषासे कषाय वस्त्र धारण और सिर मुड़ाके संन्यासधर्म्म ग्रहण करते हैं, परन्तु जो लोग त्रिविद्या, वार्त्ताशास्त्र और पुत्रकलत्रको त्यागके त्रिदण्ड भक्ष तथा कषाय आदि वस्त्रोंको धारण करते हैं; वे अत्यन्त ही मूर्ख हैं। महाराज! संन्यासधर्म्म पवित्र होनेपर भी उसे ग्रहण करके सिर मुड़ाना गेरुये वस्त्रोंको धारण करना केवल जीविका निर्व्वाहके ही वास्ते जानना चाहिये, मेरे विचारमें जीविका निर्व्वाह मात्र ही उन लोगोंका पुरुषार्थ है, इससे आप इन्द्रियोंको अपने वशमें करके गेरुए वस्त्र, मृगछाला और कौपीन धारण करनेवाले, तथा नङ्गे, सिर मुड़े और जटाधारी आदि साधु संन्यासियोंका प्रति-पालन करते हुए इस लोक और परलोकको जय करनेमें प्रवृत्त होइये। जो मोक्ष प्राप्त होनेके वास्ते आत्महोत्र, पशु और दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान तथा प्रतिदिन दान करते हैं, उनसे बढ़कर अधिक धर्म्मात्मा कौन है? विदे-हराजकी आज्ञा इतनी कथा कहके चुप होगई।

अर्ज्जुन बोले, हे धर्म्मराज! देखिये, विदेह-राज जनक इस पृथ्वीपर तत्वज्ञ कहके विख्यात हुए थे, परन्तु वह भी कर्त्तव्य कर्म्मोंसे निर्व्वाक्य मोक्षको प्राप्त हुए थे; इससे आप मोह परि-

त्याग कीजिये। यदि हम काम, क्रोध और कृपणता परित्याग करके दान, प्रजा पालन, गुरु और वृद्धोंकी सेवामें रत रहें ; तो अवश्य ही अभिलषित लोकमें गमन करनेमें समर्थ हो सकेंगे ; और इसीसे दान करने वाले गृहस्थ पुरुष इसही भांति धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं ; और देवता अतिथि तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको यथा रीतिसे तृप्त करके ब्रह्मनिष्ठ और सत्यवादी होनेसे अवश्य ही अभिलषित लोकोंमें गमन कर सकेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

१८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे तात अर्ज्जुन! लौकिक धर्म्मशास्त्र और ब्रह्म प्रतिपादक ज्ञानशास्त्र दोनों ही मुझे विदित हैं। वेदमें कर्म्मका अनुष्ठान और कर्म्म त्याग दोनों विषयोंकी विधि है ; इससे सब शास्त्र अत्यन्त ही जटिल हैं, परन्तु युक्तिसे आलोचित होनेसे उसका जो कुछ सार निश्चित हुआ है ; मैं उसे विधिपूर्व्वक जानता हूं। तुम केवल वीर व्रताचारी और अस्त्र शस्त्रोंकी विद्यामें निपुण हो ; शास्त्रोंके अर्थको विचारनेमें तुम्हारी कुछ भी सामर्थ नहीं है। यदि तुम धर्म्मकी विशेष आलोचना करते और शास्त्रार्थमें सूक्ष्म-दर्शी तथा तत्व-निश्चयमें निपुण होते ; तो कदापि मेरे विषयमें ऐसे वचनोंको प्रयोग न करते ; परन्तु भ्रातृ भावसे युक्त होके तुमने मुझे जो कुछ वचन कहे हैं, और मैं भी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूं। युद्धधर्म्म अथवा कार्य्योंकी निपुणतामें तीनों लोकके बीच भी कोई पुरुष तुम्हारे समान नहीं है ; इससे उस ही विषयमें दूसरेको दुःखसे जानने योग्य अत्यन्त सूक्ष्म वचन कहना तुम्हें उचित है ; परन्तु मोक्ष-धर्म्म विषयमें मेरी बुद्धि पर शङ्का करना तुम्हें योग्य नहीं है, तुमने कभी ज्ञान-वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है, और तुमने केवल अत्यन्त युद्ध-विद्याका ही अभ्यास किया है ; जिन्होंने संक्षेप और विस्तार रूपसे तत्त्व निर्णय किये हैं, उनके निश्चित किये हुए मीमांसाकोभी तुम नहीं जानते हो। तत्वज्ञ पण्डितोंने ऐसा ही निर्णय किया है, कि तपस्या, सन्न्यास और ब्रह्मज्ञान ये तीनों ही एक दूसरेसे श्रेष्ठ हैं। अर्थात् तपस्यासे सन्न्यास और सन्न्याससे ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठ है। हे अर्ज्जुन! तुम जो "धनसे बढ़के और कोई वस्तु भी उत्तम नहीं है," ऐसा समझते हो ; वह तुम्हारी भ्रान्ति मात्र है। जो हो ; इस समय जिसमें धन फिर तुमको सबसे श्रेष्ठ न बोध होवे, मैं तुम्हारी वैसी भ्रान्तिको दूर करदूंगा। देखो तप और स्वाध्यायमें रत ऋषि लोग ही इस लोकमें धर्म्मात्मा रूपसे दीख पड़ते हैं, और वे लोग उस तपके प्रभावसे सनातन लोकमें गमन करते हैं ; और भी और स्वभावसे युक्त शत्रु रहित कितने ही वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करनेवाले पुरुष तपस्या और स्वाध्यायके प्रभावसे स्वर्ग लोकमें गये हैं। साधुपुरुष विषय-वासनासे विरक्त होकर अज्ञानरूपी अन्ध-कारको त्यागके उत्तर-पथ अर्थात् प्रकाशमय मार्गसे सन्न्यासी पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य ब्रह्म-लोकमें गमन करते हैं। जो लोग बार बार जन्म मरण रूपी क्लेशोंको भोगते रहते हैं, वे कर्म्ममें रत रहनेवाले पुरुष दक्षिण अर्थात् अन्धकारमय मार्गसे चन्द्रलोक रूपसे विख्यात पितृ-लोकमें गमन करते हैं। मोक्षकी अभि-लाषा करनेवाले पुरुष जिस गतिको प्राप्त करते हैं ; उसका निर्देश करना असाध्य है, इससे उसे प्राप्त करनेके वास्ते योग ही एक मात्र मुख्य उपाय है ; परन्तु अधिकार न रहनेके कारण उसे बोध करना तुम्हारे विषयमें सहज कार्य्य नहीं है। बहुतेरे पण्डित सार असार विषयोंके निर्णय करनेके वास्ते शास्त्रोंमें रत होके "इसमें

सार विषय है? वा इसमें असार है?" इसी भांति तर्क करते हुए समय बिताते हैं; परन्तु जैसे केलेके वृक्षको काटनेसे उसमें कुछ भी सारवस्तु नहीं दीख पड़ती वैसे ही वे लोग वेद और आरण्यक प्रभृति अनेक शास्त्रोंको मथके भी किञ्चित मात्र सार विषय देखनेमें समर्थ नहीं होसकते जो नेत्रसे अगोचर वचनसे अनिर्दिष्ट, अतिसूक्ष्म, और सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है, परन्तु अविद्याके कारण नहीं मालूम हो सकता; इस पाञ्च भौतिक शरीरमें रहनेवाले द्वैत-भाव वर्ज्जित सच्चिदानन्द स्वरूप उस आत्माको मूढ़ पुरुष इच्छा द्वेषसे युक्त समझते हैं। जो लोग अविद्यापूरित सम्पूर्ण कर्म-जाल त्यागके विषय-तृष्णासे निवृत्त होते हैं, वेही अपने मनको उस अविनाशी परमात्मामें लगा कर सुखी हो सकते हैं। हे अर्ज्जुन! साधुओंसे सेवित सत्पथ और ज्ञान प्राप्त होनेवाले मोक्ष-पथके विद्यमान रहते तुम क्यों अनर्थसे युक्त अर्थ की प्रशंसा करते हो? ज्ञानियोंकी बात तो दूर है; दान और यज्ञ आदि कर्म्मोंमें रत, कर्मकाण्डके जाननेवाले पण्डित लोग भी अर्थकी प्रशंसा नहीं करते। परन्तु कितने ही मूढ़ पुरुष हेतु अर्थात् तर्क आदि शास्त्रोंके पण्डित होके भी पूर्व जन्मके दृढ़ संस्कारोंके वशमें होकर "आत्मा नहीं है," कहके साधु पुरुषोंसे विवाद करते हैं; इससे मोक्ष विषयक सार सिद्धान्तको उनके हृदयङ्गम कराना असाध्य कर्म जानना चाहिये। दुष्ट मनुष्य बहुतसे शास्त्रोंको पढ़के भी वाचालताके कारण जनसमाजमें मोक्ष धर्म्म की निन्दा करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। हे अर्ज्जुन! जिसका अर्थ मेरे समान पुरुष नहीं जान सकते; उसे दूसरे मूर्ख लोग किस भांति समझेंगे? परन्तु ये मूर्ख लोग जैसे शास्त्रोंके सूक्ष्म-तत्वको जाननेमें समर्थ नहीं होते, वैसे ही शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले महात्मा बुद्धिमान सज्जनोंको भी नहीं जान सकते। हे वीर, तुम यह विषय जान रक्खो, कि तत्ववित् पण्डित लोग तपस्या और महा ज्ञानसे महत्व, और ज्ञानसे नित्यसुख प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं।

१९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! राजा युधिष्ठिरके वचन समाप्त होनेपर बोलने वालोंमें मुख्य महातपस्वी देवस्थान ऋषि धर्म्मराजसे इस प्रकार युक्ति युक्त वचन बोले, हे धर्म्मराज! अर्ज्जुनने जो "धनसे बढ़के कुछ भी उत्तम नहीं है," ऐसा वचन कहा है,—मैं उसको विवृति करके कहता हूं, आप एकाग्र चित्त होकर सुनिये। आपने धर्म्म पूर्व्वक पृथ्वीको जय किया है; इससे इस समय हस्तगत हुए इस राज्यको निष्प्रयोजन ही त्यागना उचित नहीं है वेदमें चार आश्रम वर्णित हुए हैं, क्रमसे उन आश्रमोंमेंसे एकको त्यागके दूसरे आश्रमको ग्रहण करनेकी विधि है। इससे आप अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये। देखिये ऋषियोंके बीच भी कोई स्वाध्यायरूपी यज्ञ और कोई ज्ञानरूपी यज्ञका अनुष्ठान करते हैं; इससे तपस्वी पुरुषोंको भी आप कर्म्मनिष्ठ ही समझिये, तब वैखानस ऋषि लोग कहते हैं, "धनसे साध्य यज्ञ कर्मोंके वास्ते धनके निमित्त कोशिश करनेकी अपेक्षा यज्ञका न करना ही उत्तम है," परन्तु मेरे विचारमें उन लोगोंका वह धर्म्म ग्रहण करनेसे भूयिष्ट दोष उत्पन्न होता है, क्यों कि विधि रहनेसे ही अर्थ आदि वस्तुएं सञ्चय करनी पड़ती हैं। बुद्धिभ्रष्ट होनेसे ही लोग ऐसे काल-प्रिय अर्थको उपयुक्त कार्य्योंमें खर्च न कर अयोग्य कर्मोंमें व्यय करके अपनेको काल हत्या रूपी पापसे दूषित करते हैं; परन्तु योग्य और अयोग्य कर्म्मकी परीक्षा करके

पापरहित धनको उपार्ज्जन करना भी अश्रेष्ठ कार्य्य नहीं है। विधाताने यज्ञ करने ही के वास्ते धनको उत्पन्न किया, और पुरुषको भी उस धनकी रक्षा तथा यज्ञ आदिक कर्म्मोंके अनुष्ठानके वास्ते ही उत्पन्न किया है, इससे सम्पूर्ण धन यज्ञ आदिक शुभ कर्म्मोंमें समर्पण करनेसे ही समस्त कामना सिद्ध होसकती हैं; इसमें सन्देह नहीं है। महातेजस्वी भगवान इन्द्र अनेक मूल्यवान वस्तुओंसे यज्ञका अनुष्ठान करनेसे सम्पूर्ण देवतोंको अतिक्रम कर इन्द्रत्व प्राप्त करके स्वर्गलोकके राज्यपदपर प्रतिष्ठित हैं; इससे सम्पूर्ण धन यज्ञमें समर्पण करना ही उचित है। इसके अतिरिक्त महातेजस्वी कृत्तिवासा महादेव सर्व्वमेध यज्ञमें अपने शरीरको ही अग्निमें आहुति देकर समस्त देवताओंके ऊपर आधिपत्य और सबसे अधिक प्रभाव प्राप्त करके जगतके बीच विराजमान हैं। देखिये अविच्छित-पुत्र मरुत्तराजने समृद्धियुक्त यज्ञके प्रभावसे देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था; उस यज्ञमें सब पात्र सुवर्णमय थे; अधिक क्या कहा जावे, उनके यज्ञमें लक्ष्मी स्वयं मूर्त्तिमयी होकर स्थित हुई थीं। आपने सुना होगा, राजेन्द्र हरिश्चन्द्र यज्ञानुष्ठान करके ही पुण्य भागी और शोकरहित हुए; वह मनुष्य होकर भी ऐश्वर्य्यमें देवराज इन्द्रसे भी अधिक हुए थे; इससे समस्त धन यज्ञानुष्ठानमें व्यय करनेसे ही सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होसकते हैं।

२० अध्याय समाप्त।

देवस्थान मुनि बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें इन्द्र-वृहस्पति सम्वाद नामक एक सम्वाद वर्णित है, उसे सुनिये। किसी समय इन्द्रके पूछे जानेपर बृहस्पतिने कहा था, कि सन्तोष ही उत्तम स्वर्गलोक और सन्तोष ही परम सुख है, सन्तोषसे बढ़के कोई वस्तु भी श्रेष्ठ नहीं है। जैसे कछुवा अपना सुख समेटके शरीरके भीतर कर लेता है, वैसे ही जिसकी सम्पूर्ण वासना भीतर ही लीन होजाती है, तब ही जानना चाहिये, कि शीघ्र ही उसके अन्तःकरणमें आत्मज्योति प्रकाशित होगी। जिस समय साधक पुरुष वासना और द्वेष आदिको पराजित करते हैं, किसी प्राणीसे भी भयभीत नहीं होते और न उनसे ही कोई प्राणी भय करते हैं, तब ही आत्मदर्शन होता है। जब पुरुष काया और मनसासे किसी प्राणीसे शत्रुताचरण वा किसीके निकट कुछ वस्तुको जांचनेमें प्रवृत्त नहीं होता, तब ही जानना चाहिये, कि उसे ब्रह्म-प्राप्ति हुई है। महाराज! इस भांति जो पुरुष जिस प्रकार धर्म्मका आचरण करता है, वह उसके अनुसार फलको भोग करता है। इससे आप इन सम्पूर्ण विषयोंको विचारके कर्त्तव्य कार्य्योंके करनेमें प्रवृत्त होइये।

इस पृथ्वीपर अपनी अपनी रुचिके अनुसार ही कोई प्रीति, कोई यत्न, कोई दोनो विषयोंको, कोई यज्ञ, कोई सन्न्यास, कोई दान, कोई प्रतिग्रहकी प्रशंसा करते रहते हैं। कितने ही पुरुष समस्त वस्तुओंको त्यागके मौन होकर ध्यानावलम्बन करके स्थित होते हैं, कोई शत्रुओंको छिन्नभिन्न करके राज्य ग्रहण और प्रजा पालनकी ही प्रशंसा करते हैं, कोई निर्ज्जन स्थानमें निवास करनेहीको श्रेष्ठ समझते हैं; परन्तु इन सब विषयोंकी समालोचना करके पण्डितोंने यह निश्चय किया है, कि प्राणी मात्रका जिसमें कुछ भी अनिष्ट न होवे; वही धर्म्म साधु-सम्मत है। स्वायम्भुव मनु भी अहिंसा, सत्य, दया, इन्द्रियसंयम निज स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न करना, कोमलता, लज्जा और धीरजको ही उत्तम धर्म्म कहके वर्णन करते हैं। हे धर्म्मराज! इससे आप भी यत्नपूर्व्वक इसी भांति धर्म्मके कार्य्योंको पालन कीजिये।

जो राजनीतिज्ञ जितेन्द्रिय राजा धर्म्मशास्त्रके तात्पर्यको विशेष रूपसे ग्रहण करके राज्य करते हुए प्रिय और अप्रिय वस्तुओंको समान समझते, यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन, दुष्ट पुरुषोंको दण्ड, साधुओंके ऊपर कृपा करते तथा प्रजाको धर्म्म मार्गमें स्थापित करते हुए स्वयं निज धर्म्ममें तत्पर रहते हैं, और अन्तमें पुत्रको राज्यभार समर्पण करके वनवासी होकर वेदमें कही हुई विधिके अनुसार आसक्ति त्यागके कर्म्मोंके अनुष्ठानमें रत रहते हैं, उन्हें इस लोक और परलोक दोनोंमें शुभ फल प्राप्त होता है। आप जो निर्व्वाणमुक्तिके विषयको वर्णन करते थे, मेरे विचारमें वह अत्यन्त ही दुष्प्राप्य और अनेक विघ्नोंसे परिपूरित है। हे धर्म्मराज! मैंने राजधर्म्मके विषयका वर्णन किया है; सत्य और दानपरायण अनेक राजा लोगोंने ऊपर कहे हुए धर्म्मके आसरे काम क्रोध, नृशंसता त्यागके गो ब्राह्मणकी रक्षाके वास्ते शस्त्र धारण करके प्रजा पालन करते तथा निज उत्तम धर्म्मको उपार्ज्जन करते हुए शीघ्र ही परम गतिको प्राप्त हैं। इसी भांति रुद्र, वसु, आदित्य, साध्य और राजर्षि लोग सावधान होकर राजधर्म्मके सहारे अपने पुण्य कर्म्मोंसे स्वर्गलोकमें गये हैं।

२१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवस्थान ऋषिके वचन समाप्त होनेपर अर्ज्जुन फिर शोकित चित्तसे युक्त अपने जेठे भाई अच्युत युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार शत्रुओंको पराजित करके इस दुर्लभ राज्यको प्राप्त किया है; तौभी किस कारणसे इतना दुःखित होरहे हैं। अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी बढ़के युद्धभूमिमें क्षत्रिय पुरुषोंकी मृत्यु श्रेष्ठ है, यह क्षत्रियोंका धर्म्म कहके वर्णित है। ब्राह्मणोंको तपस्या तथा सन्न्यास और क्षत्रियोंको युद्धमें मृत्यु होनी यही पारलौकिक धर्म्म है, काल प्राप्त होनेपर क्षत्रियोंको युद्धभूमिमें गमन करके शस्त्रसे मरना ही धर्म्म है; क्योंकि क्षत्रियधर्म्म शस्त्रमूलक और अत्यन्त ही कठिन है। क्षत्रियकुल ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, इससे यदि ब्राह्मण भी क्षत्रियधर्म्म अवलम्बन करें, तो उनका जीवन धन्य है, महाराज! क्षत्रियोंके वास्ते सन्न्यास, समाधि, तपस्या और दूसरेके समीप भीख मांगके जीविका निर्व्वाह करनेकी विधि नहीं है। आप भी राजा, मनीषी, सब कार्य्योंको जाननेवाले, धर्म्मात्मा और सम्पूर्ण धर्म्मोंके जाननेवाले हैं, आपको पर और अपर दोनों ही विषय विदित हैं, विशेष करके क्षत्रियोंका हृदय वज्रके समान कठोर होता है, इससे आप दुःख जनित शोक त्यागके कर्म्मोंके अनुष्ठानमें कटिबद्ध होइये। आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार शत्रुओंका नाश करके यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है, इस समय इन्द्रियोंको वशमें करके दान और यज्ञ आदिक कर्म्मोंके करनेमें प्रवृत्त होइये। मैंने सुना है, कि देवराज इन्द्र ब्राह्मण होकर भी केवल कार्य्यके वशमें होकर क्षत्रिय धर्म्मावलम्बी हुए हैं; उन्होंने आततायी पापी पुरुषोंको युद्धमें आठ सौ दश बार पराजित किया था, उनका वह कर्म्म जगतमें पूजनीय और प्रशंसनीय करके गिना गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है; और उस क्षत्रिय धर्म्मके प्रभावसे ही उन्होंने देवताओंके बीच इन्द्रत्व पद पाया है। जैसे देवराज इन्द्रने निष्कण्टक होके यज्ञानुष्ठान किया था, वैसे ही आप भी इस निष्कण्टक राज्यका शासन करते हुए अनेक दक्षिणावाले युक्त यज्ञ कार्य्योंमें प्रवृत्त होइये, महाराज! आप बीते हुए विषयोंके निमित्त तनिक भी शोक न कीजिये, कौरव लोग क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार शरीर त्यागके

तथा शस्त्रसे मरकर परम गतिको प्राप्त हुए हैं. हे राजन्! जो होनहार होता है, वह अवश्य होता है। प्रारब्धको अतिक्रम करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होसकता।

२२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! जितेन्द्रिय अर्ज्जुनसे इस प्रकार प्रबोधित होनेपर भी कुरु-नन्दन युधिष्ठिरने कुछ भी उत्तर न दिया। तब महर्षि वेदव्यास मुनि बोले, हे सौम्य युधिष्ठिर! अर्ज्जुनने यथार्थ वचन कहे है; शास्त्रमें गृहस्थ धर्म्म ही उत्तम कहके वर्णित है। हे धर्म्म जाननेवाले युधिष्ठिर! इससे गृहस्थाश्रम त्यागके तुम्हें वनमें गमन करना उचित नहीं है; शास्त्रकी विधिके अनुसार अपने धर्म्म अर्थात् गृहस्थाश्रममें प्रवृत्त होजाओ। देखो देवता, पितर, अतिथि और सेवक लोग सब कोई गृहस्थके ही आसरे जीविका निर्व्वाह करते हैं, इससे उन लोगोंको पालन करना उचित है। पशु पक्षी आदि समस्त प्राणी गृहस्थोंके अवलम्बसे प्राण धारण करते हैं, इससे गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है। महाराज! गृहस्थ धर्म्मका अनुष्ठान अत्यन्तही कठिन है, इससे अब तुम अजितात्मा पुरुषोंसे न सिद्ध होने योग्य गृहस्थाश्रमके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होजाओ। सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंमें तुम्हारी विलक्षण अभिज्ञता है, और तुमने बहुत कुछ तपका भी अनुष्ठान किया है; इस समय धुरन्धर पुरुषोंके योग्य पिता पितामहकी भांति राज्यभारको ग्रहण करना ही तुम्हें उचित है। शास्त्रके अनुसार तपस्या, यज्ञ, क्षमा, अनासक्ति, भिक्षावृत्ति, इन्द्रियसंयम, ध्यान, अत्यन्त नम्रता और ब्रह्मज्ञानके साधन आदि कार्य्य ब्राह्मणोंको ही सिद्धिकारक हैं। क्षत्रियोंके जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म हैं, उसे वर्णन करता हूं, उस विषयमें तुम भी अजान नहीं हो; विद्या प्राप्त करना, उत्साह प्रकाश, यज्ञानुष्ठान, जो सम्पत्ति प्राप्त होवे उसमें असन्तोष, राजदण्डको धारण करना कठोरता, प्रजापालन वेदज्ञान, तपस्याका अनुष्ठान, सच्चरित्रता, धन उपार्जन और उसे योग्यपात्रको दान करना,—ये सब क्षत्रिय पुरुषोंके कर्त्तव्य-कर्म्म शास्त्रमें कहे गये हैं, जो लोग इन सम्पूर्ण कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे इस लोक और परलोकमें सिद्धि लाभ करते हैं। परन्तु इन सब कर्म्मोंके बीच क्षत्रियोंको दण्ड धारण करना ही मुख्य कर्म्म कहके वर्णित हुआ है, दण्डभी बलके आसरेसे धारण किया जाता है, इससे क्षत्रियोंमें बल होना परम आवश्यक है। हे राजेन्द्र! ये सम्पूर्ण कर्म्म क्षत्रियोंको सिद्धि प्राप्त करानेवाले हैं। इस विषयमें वृहस्पतिने भी इस प्रकार कहा है कि सांप जैसे चूहेको भक्षण करता है, वैसे ही समर-पराङ्मुख राजा और संसारमें आसक्त ब्राह्मणको पृथ्वी शीघ्र ही ग्रास करती है इस प्रकार जनश्रुति है, कि राजर्षि सुद्युम्नने प्रचेता-पुत्र दक्षकी भांति एकमात्र दण्ड धारण करनेके प्रभावसे ही परम सिद्धि प्राप्त की थी।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भगवन्! पृथ्वीपति सुद्युम्न किस कर्म फलसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे? मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे धर्म्मराज युधिष्ठिर! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है, उसे मैं वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाके सुनो। शङ्ख और लिखित नामक अत्यन्त कठोर व्रत करनेवाले दो भाई थे। बाहुदा नदीके किनारे फल पुष्प लता और सुन्दर वृक्षोंसे शोभित अत्यन्त रमणीय अलग अलग उनके दो आश्रम थे। किसी समय लिखित ऋषि इच्छानुसार अपने जेठे भाई शङ्ख ऋषिके आश्रमपर उपस्थित हुए, उस समय

महर्षि शङ्ख अपने आश्रमसे किसी दूसरे स्थानपर गये थे; अनन्तर ऋषि लिखित शङ्खके आश्रममें पहुंचके पके हुए फलोंको तोड़ने लगे और उन फलोंको ग्रहण करके प्रसन्नचित्तसे भोजन करनेमें प्रवृत्त हुए। इतने ही समयमें शङ्ख ऋषि अपने आश्रममें आके उपस्थित हुए और लिखित ऋषिको फल खाते देखकर उनसे पूछा कि, तुम किस कारणसे फल खा रहे हो! इन फलोंको तुमने कहां पाया? तब छोटे भाई लिखित अपने बड़े भाई शङ्खके समीप आकर उन्हें प्रणाम करके हंसते हुए यह वचन बोले कि, हे महात्मन्! मैंने आपके इस आश्रमसे ही फल ग्रहण किया है। उनसे ऐसे वचनको सुनके महर्षि शङ्ख अत्यन्त कुपित होके बोले, हे भाई! मेरे न रहनेपर तथा बिना मेरी आज्ञाके इन फलोंको ग्रहण करनेसे तुम्हें चोरीका पाप लगा है; इससे दण्डित होनेके वास्ते अब तुम राजाके समीप गमन करो; और वहां जाकर अदत्त ग्रहण रूपी अपने पाप कर्म्मको सुना कर कहना कि, हे महाराज! आप मुझे चोर करके निश्चित कीजिये और राजधर्म्मको पालन करते हुए शीघ्र ही मुझे चोरोंके अनुसार दण्ड दीजिये। अनन्तर व्रत करनेवाले महात्मा लिखितने अपने जेठे भाईकी ऐसी आज्ञा सुनकर राजासुद्युम्नके समीप गमन किया। राजा सुद्युम्न द्वारपालके मुखसे धर्म्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रगण्य लिखित ऋषिके आगमनका वृत्तान्त सुनकर अपने अनुयायी पुरुषोंके सहित पैदल ही द्वारपर आके बोले, हे भगवन्! किस अभिप्रायसे यहां आपका आगमन हुआ है? आपकी क्या आज्ञा है? राजा सुद्युम्नके वचनको सुनके महर्षि लिखित बोले, महाराज! पहिले "जो कार्य्यकी आज्ञा होगी, उसे मैं करूंगा" आप ऐसी प्रतिज्ञा कीजिये, तब पीछे मेरे मुखसे सुनकर उसे पालन करिये, मैंने अपने भाईकी अनुमतिके बिना उनके आश्रममें जाके फल ग्रहण करके भक्षण किया है, शीघ्र ही मेरे ऊपर दण्ड प्रयोग कीजिये। महाराज सुद्युम्न बोले, हे भगवन्! "राजाके दण्डप्रयोग करनेसे ही पापकी शान्ति होती है" यदि आपको ऐसा स्थिर ज्ञान होवे, तो राजाके क्षमा करने पर भी उस पापकी शान्ति होती है,—ऐसा ही समझिये। आप महाव्रत करनेवाले ब्राह्मण हैं; मैंने आपके अपराधको क्षमा किया, उससे आप पापरहित हुए। इस समय आपकी दूसरी और कौनसी अभिलाषा है, उसे वर्णन कीजिये। मैं आपकी समस्त कामना पूर्ण करूंगा।

वेदव्यास मुनि बोले, हे धर्म्मराज! महात्मा पृथ्वीनाथ सुद्युम्नने इस भांति अपराध क्षमा करके लिखित ऋषिको सम्मानित किया; तो भी महर्षि लिखित उनके निकट दण्डके अतिरिक्त और किसी विषयकी भी अभिलाषा नहीं की, तब राजा सुद्युम्नने दण्ड धारण करके महात्मा लिखितके दोनों हाथ काट दिये। अनन्तर लिखित ऋषि भुजा कटनेसे बिकल होके अपने जेठे भाई महर्षि शङ्खके समीप गमन करके यह वचन बोले। हे महात्मन्! मैंने राजाके निकट जाके उचित दण्ड पाया है, अब आप मेरे अपराधको क्षमा कीजिये, छोटे भाईके वचनको सुनकर महर्षि शङ्ख बोले, हे भ्राता! तुमने मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं किया था, और मैं भी तुम्हारे ऊपरकुपित नहीं हुआ था; तुम धर्म्मसे भ्रष्ट हुए थे, इस ही कारण मैंने तुम्हें उस पापसे मुक्त किया है। इस समय शीघ्र ही बाहुदा नदीमें जाके देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करो, अब कदापि ऐसी बुद्धि न करना। अनन्तर महर्षि लिखितने अपने बड़े भाई शङ्खके वचनको सुनके बाहुदा नदीमें जाकर स्नानकरके ज्योंही तर्पण करनेकी इच्छा किया, त्योंही सहसा अङ्गुलियोंसे युक्त उनके दोनों हाथ प्रकट होगये, उससे लिखित अत्यन्त

विज्जित होकर अपने बड़ेभाई शङ्खके समीप आके नवीन उत्पन्न हुए अपने दोनों हाथोंको दिखाया। महर्षि शङ्ख उनके दोनों हाथोंको देखकर बोले, हे भ्राता! मेरे तपके प्रभावसे तुम्हारे दोनों हाथ फिर उत्पन्न हुए हैं; यह कुछ भी आश्चर्य्यका विषय नहीं है, क्योंकि दैव ही इस विषयके विधोंको करनेवाला है। अनन्तर लिखित ऋषि बोले, हे तेजस्विन्! जब कि आपका ऐसा तप प्रभाव है, तब आपने पहिले ही क्यों नहीं मुझे इस पापसे मुक्त किया? ऐसा होनेसे राजाके समीप मुझे न जाना पड़ता। शङ्ख बोले, हे भ्राता! उस विषयमें यदि मुझे अधिकार होता, तो मैं अवश्य ही तुम्हें यहां ही उस पापसे मुक्त कर देता; परन्तु मैं तो तुम्हारा राजा नहीं हूं, जो दण्ड प्रयोग करके तुम्हें चोरीके पापसे मुक्त कर देता; इस कारणसे मैंने तुम्हें राजाके समीप भेजा था। तुम्हारे ऊपर विधिपूर्व्वक दण्ड प्रयोग करके राजा सुद्युम्न और तुम, अर्थात् तुम दोनों ही पितरोंके सहित मुक्त हुए।

वेदव्यास मुनि बोले, हे पाण्डवश्रेष्ठ! मैंने जो कुछ तुम्हारे समीप वर्णन किया; उस भांति कर्म्मके प्रभावसे राजा सुद्युम्नने दैव प्रजापतिकी भांति इस लोकमें प्रतिष्ठा और परलोकमें परम सिद्धि प्राप्त की थी। प्रजाको पालन करना ही क्षत्रियोंका धर्म्म है, इसके अतिरिक्त तुम दूसरे को कुपथ समझो। तुम धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य हो, इससे अपने भाई अर्ज्जुनके वचनकी रक्षा करो। अब शोक मत करो, प्रजाको पालन करनेके निमित्त राजदण्ड धारण करना ही क्षत्रिय धर्म्म है; सिर मुड़ाना राज धर्म्म नहीं है।

२३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महर्षि वेदव्यास अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको उपदेश करनेमें फिर प्रवृत्त होकर यह वचन बोले, हे पुत्र! हे युधिष्ठिर! वनमें वास करनेके समयमें तुम्हारे भाइयोंकी जो कुछ अभिलाषा है उसे सफल करना इस समय कर्त्तव्य है; इससे तुम नहुष-पुत्र राजा ययातिकी भांति पृथ्वीको पालन करनेमें प्रवृत्त होजाओ। पहिले तुम लोगोंने तपस्यामें रत होके जङ्गलमें वास करते हुए केवल महादुःख भोग किये थे, इस समय वह महादुःख बीत गया; इससे कुछ दिनतक सुख अनुभव करो। हे भारत! तुम अपने भाइयोंके सङ्ग मिलकर कुछ दिनोंतक धर्म्म, अर्थ और कामका सेवन करो; अनन्तर फिर उनको प्रस्थान करना। आगे देवता, पितर और प्रार्थी लोगोंके ऋणको चुकाओ; पीछे वाणप्रस्थ आदिक धर्म्मोंमें क्रमसे प्रवृत्त होना। हे महाराज! तुम अश्वमेध और सर्व्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करो, ऐसा होनेसे पीछे परम गतिको प्राप्त होगे, और तुम अपने भाइयोंको अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञोंमें दीक्षित करो, ऐसा होनेसे इस लोकमें भी असीम कीर्त्ति प्राप्त कर सकोगे। हे राजन्! जिस कार्य्यको करनेसे तुम किसी प्रकार फिर धर्म्मसे भ्रष्ट न होसकोगे; उस विषयमें मैं विशेष उपदेश वचन कहता हूं, चित्त स्थिर करके सुनो। जो परधन हरनेवाले डाकू समान मनुष्य हैं, वेही राजाओंको युद्ध आदि कार्य्योंमें नियुक्त होनेकी व्यवस्था देते हैं।

जो राजा शास्त्रजनित बुद्धि अवलम्बन करके देशकालकी प्रतीक्षा करके डाकुओंके विषयमें भी क्षमा करते हैं, उन्हें कदापि पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता; और जो राजा राज्यका छठवां भाग ग्रहण करके भी यथा रीतिसे राज्यकी रक्षा नहीं करते, वे प्रजाके पापका चौथा भाग ग्रहण करते हैं हे युधिष्ठिर! राजा लोग शास्त्रकी आज्ञाको उल्लङ्घन करनेसेही धर्म्मसे भ्रष्ट होते हैं; और शास्त्रके अनुकूल कार्य्य कर-

जैसे निर्भय होकर समय व्यतीत कर सकते हैं। जो शास्त्रमें कही हुई रीतिको अवलम्बन कर काम, क्रोध त्यागके निरपेक्ष होकर पिताकी भांति प्रजा पालनमें तत्पर होते हैं, वे कदापि पापयुक्त कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होते। यदि राजा उपस्थित कार्य्यमें दैवी-संयोगसे किसी कर्मको करनेमें असमर्थ होजावे, तो ऐसा होनेसे उसे कार्य अतिक्रमकारी नहीं कहा जा सकता। बल बुद्धि वा कौशलसे शत्रुको पराजित करना उचित है; राज्यके बीच जिससे पाप कर्म न बढ़ने पावे और सदा पुण्य-कर्म्मोंका होना बढ़ता रहे; उस विषयमें यत्नशील होना उचित है। वीर पुरुष, पुण्यकर्म्म करनेवाले साधु, विद्वान, वैदिक कर्म्मोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और धनी वैश्योंको विशेष यत्नके सहित पालन करना उचित है। व्यवहार और धर्म्म कार्य्योंमें बहुदर्शी पुरुषोंको नियुक्त करना उचित है, परन्तु अनेक गुणोंसे युक्त होनेपर भी एकही पुरुषका सम्पूर्णरूपसे विश्वास करके कार्य्य करना उचित नहीं। जो राजा आशाके वशमें गर्व्वित, अभिमानी और विजयरहित होकर प्रजाका पालन नहीं करते, वे महाघोर पापमें फंसके लोकसमाजमें अधर्म्मी कहके विख्यात होते हैं। जहां प्रजा यथा रीतिसे रक्षित नहीं होती, दैवकी प्रति कूलता अर्थात् राज्यमें अना-वृष्टि आदि अनेक उपद्रवोंसे दुःखित तथा चोर डाकुओंसे पीड़ित होती है; उस स्थलमें सम्पूर्ण अनिष्टजनित पाप राजाको ही स्पर्श करता है। हे युधिष्ठिर! उत्तम मन्त्रणा और श्रेष्ठनीति अवलम्बन करके भली भांति विचार-कर पुरुषार्थके सहित कार्य्य करनेसे कदापि अधर्मका सञ्चार नहीं होता। अनुष्ठित कर्म्म सिद्ध भी हो सकते हैं और दैवको प्रति कूलतासे वे सब निष्फल भी हो सकते हैं; परन्तु यत्नमें त्रुटि न होनेसे राजाका पाप ग्रस्त नहीं होना पड़ता। महाराज! जैसे अतिही कठिन कर्म्मोंके करनेवाले राजर्षि हयग्रीवने संग्रामभूमिमें अन-गिनत शत्रुओंका वध करके अन्तमें सहाय-रहित होकर प्राण त्याग किया था, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो! राजा हयग्रीव बहुतसे सत्कार्य्योंको करके अन्तमें युद्ध-भूमिमें प्राण त्याग कर उत्तम कीर्त्ति प्राप्तकर स्वर्गलोकमें सदा सुखभोग कर रहे हैं; अधिक क्या कहें, जिसके किये हुए सम्पूर्ण कर्म्मोंको जाननेसे ही प्रजा पालन और शत्रुओंके परा-जित करनेके उत्तम उपाय मालूम हो सकते हैं? पुण्यकर्म्मोंके प्रभावसे सिद्ध मनोरथ महात्मा हयग्रीव काल क्रमसे डाकुओंके चढ़ आनेसे शस्त्र ग्रहणकर महाघोर युद्ध करके उनके शस्त्रोंकी चोटसे क्षत विक्षत होकर शरीर त्यागके स्वर्गवासके सुखको भोग रहे हैं; राजसिंह तपस्वी हयग्रीव उस युद्धरूपी यज्ञकी अग्निमें अनगिनती शत्रुओंकी आहुति देके पापरहित होकर अन्तमें अपना प्राण होमकर यज्ञ समाप्त करके देवलोकमें सुख भोग रहे हैं; उस यज्ञमें धनुषही यूप, रोदा यूपवेष्टन, बाण-स्रुक, तलवार स्रुवा, देहसे भरता हुआ रुधिर ही घृत स्वरूप, रथही वेदी, युद्धमूलक क्रोध ही अग्नि और रथके चारों घोड़ेही चातु-र्होत्रस्वरूप थे। उस महात्मा यज्ञ करनेवाले राजाने उत्तम नीति और बुद्धिकौशलसे राज्यको पालनकर सम्पूर्ण लोकोंमें कीर्त्ति स्थापित करके अन्तमें प्राणत्याग किया था। उन्होंने विष-यासक्तिको त्याग और योगप्रभावसे दैवी और मानुषी सिद्धि प्राप्त करके दण्डनीति अवल-म्बन करके पृथ्वी पालन किया था; और यथा-रीतिसे सब वेद शास्त्रोंको पढ़के चारों वर्णकी प्रजाको यथा योग्य धर्म्मके कार्य्योंमें स्थापित किया था; वह श्रद्धा और कृतज्ञताके सहित कर्म्मोंका अनुष्ठान करके ध्यानके प्रभावसे मेधावी तत्वज्ञ पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ लोकमें गमन करके सुख भोग रहे हैं। राज्य

करनेके समयमें उन्होंने अनेक बार संग्राममें जय प्राप्त किया था, यज्ञमें सोमरस पान, उत्तम ब्राह्मणोंको तृप्ति और युक्तिबलसे दण्ड धारण करके प्रजाको पालन किया था। विद्वान् पुरुष आजतक जिनके प्रशंसनीय चरित्रोंकी अत्यन्त प्रशंसा किया करते हैं, वह महात्मा राजा निज कीर्त्ति तथा पुण्यके प्रभावसे सिद्धि प्राप्त और स्वर्गलोकमें गमन करके वहां पर वीरपुरुषोंके प्राप्त होने योग्य सुख भोग कर रहे हैं।

२४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराज युधिष्ठिर अर्ज्जुनको कुपित देखके तथा व्यासदेव मुनिके वचनको सुनकर महर्षि द्वैपायन मुनिसे बोले, हे महर्षि! मेरा चित्त इस समय शोकसे अत्यन्त ही दुःखित हो रहा है, इससे इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य और अनेक भांतिके भोग्य वस्तुओंको प्राप्त करनेसे भी मुझे किसी भांति तृप्ति नहीं होती है। और पति और पुत्रोंसे रहित स्त्रियोंके विलापको सुनकर मेरे चित्तमें किसी प्रकारसे भी शान्ति प्राप्त नहीं होती है।

राजा युधिष्ठिरके ऐसे वचनको सुनकर योगियोंमें अग्रगण्य, धर्म्म ज्ञानसे युक्त सम्पूर्ण वेदोंके जानने वाले महा बुद्धिमान वेदव्यास मुनि उनसे बोले, महाराज! कोई पुरुष कर्म्म वा यज्ञ कार्य्योंसे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सक्ते और न कोई पुरुष किसीको दान कर सक्ता है; विधाता ही समयके अनुसार सब पुरुषोंके प्राप्तिका विधान करता है; और उसी विधाताके नियत किये हुए समय पर ही मनुष्य समस्त वस्तुओंको पा सकते हैं। सुसमय उपस्थित न होनेसे विद्या वा बुद्धिके प्रभावसे कोई धन लाभ करनेमें समर्थ नहीं होसकता और समयके अनुसार मूर्ख पुरुष भी धन प्राप्त कर सकता है; इससे सम्पूर्ण कार्य्योंके विषयमें कालको ही निरपेक्ष समझिये, अर्थात् काल समयानुसार मूर्ख और पण्डितको समान रूपसे फल प्रदान करता है। जब पुरुषोंके दुःखका समय रहता है, तब तक विज्ञान, मन्त्र औषधि आदि कोई वस्तु भी फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होती; और जब अभ्युदयका समय आता है, तब वे ही सब मन्त्र, औषधि आदि गुणकारी होके सिद्धिप्रद होती हैं। कालके प्रभावसे वायु प्रचण्ड वेगसे बहता है, बादल जलकी वर्षा करते, तालाब कमलों तथा नील-पद्म आदि पुष्पोंसे परिपूर्ण होते और वृक्षादिक फल फूलोंसे युक्त होते हैं इसी भांति कालके प्रभावसे कभी चन्द्र बिम्ब सोलह कलासे पूर्ण होता, कभी रात्रि महाघोर अन्धकारसे युक्त और कभी निर्म्मल ज्योतिसे विभूषित होती है, महाराज! बिना समय पहुंचे वृक्षादिक फूलने फलनेमें असमर्थ होते हैं, नदियां प्रबल वेगसे बहनेमें समर्थ नहीं होतीं। हाथी मृग आदि पशु सर्प तथा पक्षी बिना समय पहुंचे संयोगकी अभिलाषा नहीं करते। इसी भांति स्त्रियोंके गर्भ, शरद-वसन्त आदि ऋतुओंका समागम, जीवोंके जन्म और मृत्यु, बालकोंके मुंहसे पहिले पहल वचन निकलना, युवा अवस्थाका आगमन, बोए हुए बीजसे अंकुर, मरीचि मालो सूर्य्यका उदय और अस्त होना, शीत किरण-धारी चन्द्रमाकी कला और तरङ्गमालासे युक्त समुद्रके, तरङ्गोंकी घटती बढ़ती बिना समय पहुंचे कदापि नहीं होसकती। महाराज! राजा सेनजित्ने दुःखित होकर जो वचन कहा था, आजतक सब कोई उस गाथा को वर्णन किया करते हैं; मैं उस ही पुराने इतिहासको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो! यह दुःसह काल समयानुसार समस्त जीवोंको ग्रहण करता है; पृथ्वीकी सम्पूर्ण वस्तु कालके प्रभावसे अपना समय पर नष्ट होजाती हैं। एक पुरुष किसी पुरुषका वध करता है, और काल क्रमसे

वह भी दूसरेके हाथसे मारा जाता है, यथार्थमें कोई किसीको नहीं मारता और न कोई किसीके मारनेसे मरता है, तब कोई कोई ऐसा समझते हैं, कि "अमुक पुरुषने अमुक का वध किया," और कितनेही बुद्धिमान पुरुष ऐसा समझते हैं, कि इस जगत्में कोई किसीका वध करनेवाला नहीं है ; क्यों कि स्वभाव ही प्राणियोंके जन्म और मृत्युके विषयमें कारण है। मूर्ख लोग धन क्षय होने तथा पिता माता वा पुत्र स्त्री आदिकी मृत्यु होनेपर "अहो! कैसा दुःख है ? हाय क्या हुआ ?" ऐसा ही समझके बीते हुए दुःखोंको केवल पुष्ट करते रहते हैं ; इससे तुम क्यों मरण-धर्म्मशील कौरव और पाञ्चाल आदिक युद्धमें मरे हुए पुरुषोंके निमित्त शोक कर रहे हो ? विचार कर देखो, कि भय और शोककी जितनी बार आलोचना की जावे उतनी ही बार उसकी अधिक बढ़ती होगी। "इस शरीर वा पृथ्वीमें जो कुछ वस्तु है, उसमें कुछ भी मेरा नहीं है ; अथवा इसमें जैसा मुझे अधिकार है, वैसा ही दूसरेका भी है"—पण्डित लोग आपसे इसी भांति विचार करके किसी वस्तुमें मोहित नहीं होते। इस पृथ्वीपर मूढ़ पुरुष ही सैकड़ों शोक और सहस्रों भांतिके हर्ष आदि विषयोंमें मोहित होते हैं ; परन्तु पण्डितोंको ये हर्ष शोकादि कदापि मोहित नहीं कर सकते ये सब हर्ष आदिके विषय समयके अनुसार कभी प्रिय कभी अप्रियरूपसे मालूम होते हैं, इसी भांति वेही कभी सुख कभी दुःख रूपको धारण करके सम्पूर्ण जीवलोकोंमें भ्रमण किया करते हैं। मूढ़ पुरुषोंको आशा भङ्ग होनेसे ही दुःख और अभिलषित वस्तु मिलनेसे सुख प्राप्त होता है ; परन्तु यथार्थमें यह संसार केवलः दुःखको ही खान है, इसमें सुख कुछ भी नहीं है ; इस कारण प्रायः दुःखकी ही अधिकता दीख पड़ती है। संसारमें आसक्त रहने वाले जीवोंको सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके अनन्तर सुख प्राप्त होता है, वे कदापि सदाके वास्ते सुख वा दुःख भोगी नहीं होते। इसी भांति कभी सुख कभी दुःख अवश्य ही प्राप्त होता रहता है ; इससे जो पुरुष नित्य-सुखकी इच्छा करते हैं। उन्हें इस अनित्य सुख तथा दुःख दोनोंको ही त्यागना उचित है। जिसके कारणसे दुःख जनित शोक और सन्ताप आदि अनेक-क्लेश उपस्थित होते हैं ; उसके एक अङ्गको भी अन्तःकरणमें रहने देना योग्य नहीं है। महाराज! सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय, जिस समयमें जो उपस्थित होवे, धीरज युक्त चित्तसे उसे भोगना ही उचित है। हे सौम्य! स्त्री पुत्र आदि स्वजनोंके प्रियकार्य्य साधनमें तनिक त्रुटि करनेसे मालूम होसकता है, कि इस संसारके बीच कौन किस कारणसे किस भांति किसीका आत्मीय बान्धव हुआ है ? इस पृथ्वीपर जो लोग अत्यन्त ही मूढ़ हैं, और जिन्होंने परमात्म ज्ञान प्राप्त किया है, वे दोनों सम्प्रदायके पुरुष ही सुखपूर्व्वक समयको व्यतीत करते हैं ; मध्यवर्त्ती अर्थात् अर्द्धज्ञानी पुरुष ही नाना भांतिके क्लेशोंसे क्लेशित होते हैं। हे राजन्! धर्म्मसुख और दुःखके कारणोंको जाननेवाले पर और अपर विषयोंके ज्ञाता महाबुद्धिमान राजा सेनजित्ने ऐसा ही वचन कहा था। जो पुरुष सदा पराये दुःखसे दुःखी होता है, वह कभी भी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। दुःखका कभी भी नाश नहीं होता, पर्य्याय क्रमसे दुःख, सुख, सम्पत्ति, विपत्ति, हानि, लाभ, जन्म और मृत्यु सम्पूर्ण जीवोंको ही प्राप्त होती हैं ; इससे पण्डित लोग उसमें शोकित वा आनन्दित नहीं होते। पण्डित लोग राजाओंके निमित्त युद्ध ही यज्ञ, दण्डनीतिकी आज्ञा रक्षाको ही योग, यज्ञ आदि कर्म्मोंमें धन दानको ही सन्न्यास करके वर्णन करते हैं ; अर्थात् समझना चाहिये, कि इन्हीं सम्पूर्ण

कार्य्योंसे उनकी पवित्रता होती है। जो यज्ञ करनेवाले, महात्मा राजा बुद्धिके अनुसार राज्यकी रक्षा, समस्त प्राणियोंके ऊपर समदृष्टि, युद्धमें जयलाभ, यज्ञमें सोमरस पान, युक्तिके सहित दण्ड प्रयोग, यथा रीतिसे वेद और शास्त्रोंको पढ़ना, चारों वर्ण की प्रजाको यथा रीतिसे स्वधर्ममें स्थापित करना इत्यादि कर्म्मोंको करके प्रजाके सुख समृद्धिकी उन्नति करते हुए अन्त समयमें युद्धभूमिके बीच शरीर त्याग करते हैं, वे अवश्य ही देवताओंके सङ्ग मिलके स्वर्ग लोकमें परम सुख भोग करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जिस राजाके परलोक गमन करनेके अनन्तर पुर तथा जनपदवासी समस्त प्रजा, और राज्यके सेवक लोग उसके चरित्रोंकी प्रशंसा किया करते हैं; उसे राजसत्तम समझना चाहिये।

२५. अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! उस समय उदारबुद्धिवाले राजा युधिष्ठिर अर्ज्जुनसे यह युक्ति-पूरित वचन बोले,— हे अर्ज्जुन! तुम जो ऐसा समझते हो, कि धनसे बढ़के कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, और निर्द्धन पुरुषोंको स्वर्ग, सुख तथा अर्थ लाभ नहीं हो सकता,—यह तुम्हारी भ्रान्ति मात्र है। इस पृथ्वीपर अनेक मुनि तपस्याके प्रभावसे ही सनातन स्वर्गलोकमें गये हैं, और बहुतेरे पुरुषोंको केवल स्वाध्यायरूप यज्ञसे ही सिद्धि प्राप्त होती देखी गई है। जो लोग ब्रह्मचर्य्य व्रतमें स्थित, और सदा स्वाध्यायमें रत होके सब धर्म्मोंके जाननेवाले होते हैं; देवता लोग उन्हींको ब्राह्मण समझते हैं। हे अर्ज्जुन! तुम स्वाध्याय-निष्ठ तथा ज्ञाननिष्ठ ऋषियोंको यथार्थ धर्म्मात्मा समझो और ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंके उपदेशके अनुसार ही समस्त कार्य्योंको करना उचित है। वैखानस ऋषियोंका विषय भी इस प्रकारसे सुना गया है, कि अज, पृश्नि, सिकत, अरुण और केतु आदि वाणप्रस्थ आश्रमी ऋषियोंने केवल स्वाध्यायके प्रभावसे ही स्वर्गलोकमें गमन किया है; जो लोग वेदमें कही हुई रीतिके अनुसार यज्ञ, दान, अध्ययन और कठिन इन्द्रिय-निग्रह आदि कार्य्योंके अनुष्ठानमें रत रहते हैं, वे सूर्य्यके दक्षिण मार्गके सहारे स्वर्गलोकमें गमन करते हैं; कर्म्मपरायण पुरुषोंकी ऐसी ही गति वर्णित है, इसे मैंने पहिले ही तुमसे कहा है; और जिसे उत्तर पथ समझते हो; उसी अवलम्बन करके योगी लोग नियम आदि योगके प्रभावसे उस प्रकाशमय सनातन लोकमें गमन करते हैं; इस कारण पहिले समयके आचार्य्योंने उत्तर पथकी ही अधिक प्रशंसा किया करते हैं। सन्तोषसे ही पुरुषोंको स्वर्ग और परम सुख प्राप्त होते हैं, सन्तोषसे बढ़के दूसरी कुछ भी वस्तु श्रेष्ठ नहीं है; क्रोध हर्षसे रहित योगियोंके निमित्त सन्तोष ही परम प्रतिष्ठा और उत्तम सिद्धिस्वरूप है; इस विषयमें राजर्षि ययातिका कहा हुआ एक प्राचीन इतिहास है, श्रवण करो। उसके सुननेसे सम्पूर्ण वासना कूर्म्मअङ्गकी भांति भीतर ही लीन हो जाती हैं। जब योगी पुरुष इस जगत्के बीच किसी जीवसे भयभीत नहीं होते और न उनसे ही कोई प्राणी भय करते हैं; तथा जब कि उन्हें किसी वस्तुमें भी इच्छा द्वेष नहीं उत्पन्न होता तभी जानना चाहिये, कि उन्हें ब्रह्मप्राप्ति होगी। और जब वचन, मन तथा कार्य्यसे प्राणी मात्रके अनिष्ट चिन्तामें प्रवृत्ति नहीं होती तबही वे निश्चय ब्रह्मस्वरूप प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। जिनके हृदयसे अभिमान और मोह नष्ट होजाता है, उन आसक्तिरहित आत्म ज्ञानसे युक्त साधु पुरुषोंको निर्व्वाण मुक्ति प्राप्त होसकती है। हे धनञ्जय! मैं और एक कथा वर्णन करता हूं, चित्त लगाके सुनो। इस जगत्के

बीच कोई धर्म्म कोई धन और कोई कोई सदाचारकी इच्छा करते हैं ; परन्तु धन जांचके धर्म्मोपार्ज्जनकी इच्छा करनेकी अपेक्षा उसका अनुष्ठान न करना ही उत्तम है ; क्यों कि अर्थसे ही अनेक भांतिके दोष उत्पन्न होते हैं ; इससे धनसे सिद्ध होनेवाले यज्ञ आदिक कर्म्म भी उस कारणसे दोषयुक्त होजाते हैं ; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। इस विषयको मैंने परीक्षा करके देखा है, तुम्हें भी परीक्षा करके देखना उचित है। जो धनकी अभिलाषा करनेवाले हैं ; उन्हें अवश्य त्याग करने योग्य विषयोंकी त्याग करना भी अत्यन्त कठिन होजाता है। जो धनवान है, उनसे सत्कर्म्मोंका अनुष्ठान होना अत्यन्त दुर्लभ है, क्यों कि दूसरेके अनिष्टके बिना धन कदापि नहीं मिल सकता और धन प्राप्त होनेसे चोर आदिकोंसे अनेक भांतिके भयकी सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त दुराचारी डाकू लोग स्नेह और भयको त्यागके थोड़ेसे धनके वास्ते भी मनुष्योंके ऊपर अनेक भांतिके अत्याचार करते हैं; परन्तु उसमें जो उन लोगोंको ब्रह्महत्या आदि महाघोर पापमें लिप्त होना पड़ता है ; उसे नहीं जान सकते। अर्थसे आसक्त पुरुषोंको यह धन इतना प्यारा है, कि वे लोग दुर्लभ धनको पाकर अपने सेवकोंको उचित वेतन देकर भी ऐसे सन्तापित होते हैं जैसे डाकुओंसे धन लुटे जानेपर सब कोई शङ्कित होते हैं। और वेतन न देनेसे भी सेवक लोग वैसे लोभी अपने स्वामीकी निन्दा करते हैं। और देखिये, निर्धन मनुष्यको कोई भी कुछ नहीं कह सकता, वह मुक्त पुरुष जो कुछ प्राप्त होवे, उसहीमें सन्तुष्ट होकर सब भांतिसे सुखी रहता है परन्तु धनसे कोई भी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता।

प्राचीन विषयोंके जाननेवाले पण्डितोंने यज्ञ विषयको भी जिस प्रकार विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया है, उसे कहता हूं ; सुनो। विधाताने यज्ञके निमित्त धन प्रकट किया, और धनकी रक्षा करनेके वास्ते पुरुषको उत्पन्न किया है ; इससे सम्पूर्ण धन यज्ञमें ही समर्पण करना उत्तम है ; भोग आदि अभिलाष पूर्ण करनेमें धन व्यय करना उचित नहीं है। हे अर्ज्जुन ! विधाता यज्ञ करनेके ही वास्ते मनुष्योंको धन प्रदान करते हैं, सुख विलासके वास्ते नहीं ; तुम भी धनवालों पुरुषोंमें अग्रणी हो, इससे तुम्हें इस विषयको जानना उचित है। इस कारण ज्ञानी पुरुषोंने यह निश्चय किया है, कि यह धन जगत्में किसी पुरुषका भी नहीं है ; इससे श्रद्धावान होकर यज्ञ और दान करना ही कर्त्तव्य कार्य्य है पण्डितोंने उपार्ज्जित किये हुए धनको दान करनेहीके वास्ते उपदेश किया है; भोगकी अभिलाष तथा अपव्यय करनेके वास्ते उपदेश नहीं किया है। दान आदिक सत्कार्य्योंके वर्त्तमान रहते अर्थ-सञ्चयकी क्या आवश्यकता है ? परन्तु जो अल्पबुद्धिवाले मनुष्य धर्म्मभ्रष्ट पुरुषोंको धन दान करते हैं, वे परलोकमें एक सौ वर्ष पर्य्यन्त सदा पुरीष भोजन करते रहते हैं। कुपात्रको देना पात्रको न देना , ऐसी घटना केवल योग्य और अयोग्यका ज्ञान न रहनेसे ही होती है ; इससे दानधर्म्म भी अत्यन्त कठिन है। हे अर्ज्जुन ! धन प्राप्त होनेपर उसे कुपात्रको देना और सत्पात्रको न देना ; इन दोनोंमें समझ रक्खो, कि महा उलट फेर होजाता है।

२६ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचो पुत्र, राजा द्रुपद, विराट धृष्टद्युम्न, धर्म्मात्मा वसुषेण (कर्ण) राजा धृष्टकेतु और अनेक देशीय राजाओंके युद्धभूमिमें मारे जानेसे मैं अत्यन्त ही दुःखित हुआ हूं। हाय ! मैंने

राज्यलोभसे सम्पूर्ण स्वजनोंका नाश करके इसबारगी अपने वंशका नाश किया है। जिसने गोदीमें लेकर हम लोगोंको लाड़प्यारसे पालन करके बड़ा किया था,—मैंने राज्यलोभसे उस भीष्म पितामहका भी वध किया है। प्रकाशमान बाणोंसे परिपूर्ण सिंहके समान ऊंचे शरीरवाले पुरुषसिंह भीष्म पितामह जिस समय शिखण्डीसे आक्रान्त होके अर्जुनके वज्र समान बाणोंके प्रहारसे विचलित होकर इधर उधर घूमने लगे, उस समय उनकी वैसी दशा देखकर मेरे अन्तःकरणमें जैसा दुःख उत्पन्न हुआ था; उसका वर्णन नहीं होसकता। विपक्षीय रथियोंको पीड़ित करनेवाले भीष्म पितामह रथके बीच पीड़ित होकर घूर्णायमान पर्व्वतकी भांति जब रथसे पूर्व्व ओर पृथ्वीपर गिरे थे; उस समय मैं ज्ञानसे रहित हुआ था जिन्होंने धनुष बाण ग्रहण करके महायुद्धमें भृगु नन्दन परशुरामके सङ्ग कुरुक्षेत्रमें कई दिनतक युद्ध किया था; काशीपुरीमें कन्याके वास्ते जिन्होंने अकेले ही वहांपर इकट्ठे हुए सम्पूर्ण क्षत्रियोंको युद्धके वास्ते आह्वान किया था; जिनके अस्त्र प्रतापरूपी अग्निमें राजचक्रवर्त्ती पराक्रमी उग्रायुध क्षण भरके बीच भस्म होगया; मैंने उस भीष्म पितामहका भी युद्धभूमिके बीच वध किया है, साक्षात् मृत्युरूपी जानके भी जिन्होंने शिखण्डीका वध नहीं किया, अर्ज्जुनने वैसे महात्मा भीष्म पितामहका वध किया है। हाय! क्या ही दुःखका विषय है। हे मुनिसत्तम! जबसे मैंने उनको रुधिरपूरित शरीरसे पृथ्वीपर गिरते देखा, उस समयसे अत्यन्त व्याकुल होरहा हूं। जिन्होंने बालक अवस्थामें पालन पोषण करके हम लोगोंको बड़ा किया था; मैंने अस्थिर राज्य-लोभसे उनका वध किया है इससे मैं जो अत्यन्त ही मूढ़ और पापी हूं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण राजाओंमें पूजनीय, युद्धभूमिमें स्थित महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य्यके समीप गमन करके "आपकका पुत्र मारा गया" कहके जो मिथ्या वचन कहा था, उस मिथ्या वचन कहनेके पापसे मेरा सम्पूर्ण शरीर भस्म हुआ जाता है। गुरुने जब मुझसे ऐसा पूछा था, कि "हे राजन्! मेरा पुत्र जीवित है, वा नहीं, तुम सत्य कहो?" आचार्य्यने समझा था, कि युधिष्ठिर सत्य कहेगा। परन्तु मैं ऐसा पापी हूं, कि राज्य लोभके कारण उस समय सत्यको छिपाते हुए मनमें हाथीका नाम लेकर स्पष्ट स्वरसे "अश्वत्थामा मारे गये," ऐसा वचन कहके गुरुके सङ्ग मिथ्या व्यवहार किया है, उस फलसे न जाने किस निकृष्ट लोकमें गमन करूंगा; उसे नहीं कह सकता। और भी देखिये, युद्धमें पीठ न देनेवाले महा पराक्रमी जेठे भाई कर्णका भी मैंने वध किया है; इससे मुझसे बढ़के अधिक पापी और कौन है? मैं ऐसा लोभी हूं, कि विजयकी लालसासे सिंह पुत्रके समान पराक्रमी सुभद्रा पुत्र अभिमन्युको द्रोणाचार्य्यसे रचित चक्रव्यूहके बीच प्रवेश करनेकी अनुमति दी थी। हे महात्मन्! अधिक क्या कहूं भ्रूणहत्या करनेवाले पापी की भांति उस समयसे मैं पुण्डरीकाक्ष कृष्ण और अर्ज्जुनके मुखकी ओर अच्छी प्रकार देखनेमें भी समर्थ नहीं होता हूं। उसी भांति पञ्च-पर्व्वतोंसे रहित पृथ्वीकी भांति पांच पुत्रोंसे हीन अत्यन्त दुःखित द्रौपदी देवीको और देखनेसे भी मैं शोकसे अत्यन्त ही कातर होजाता हूं। मैं पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रियों और गुरुजनोंका नाश करके अत्यन्त ही अपराधी हुआ हूं, इससे मैं इस स्थानमें योगाभ्यास अवलम्बन करके अपने शरीरको सुखा दूंगा, ऐसा होनेसे फिर मुझे किसी जातिमें जन्म नहीं लेना पड़ेगा आजसे मैं खाने पीनेकी सम्पूर्ण वस्तुओंको त्यागके यहां पर ही स्थित होके अपने प्रिय प्राणको त्याग करूंगा। हे तपस्वी श्रेष्ठ! मैं

आपसे विनय पूर्व्वक कहता हूं, कि आप मुझे शरीर त्यागनेकी आज्ञा देकर अपने अभिल-षित स्थान पर गमन कीजिये।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर बन्धु-बान्धवोंके वियोगसे अत्यन्त शोकित वा विह्वल होके विलाप करने लगे; तब ऋषिस-त्तम व्यासदेव बोले, महाराज! योग अवलम्बन करके प्राण त्याग मत करो, तुम्हें इस प्रकारसे शोकित होना उचित नहीं है; मैं फिर तुम्हें उत्तम उपदेश करता हूं, सुनो। जैसे पानीके बुलबुले पानीमें ही उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर फिर उसहीमें लवलीन होजाते हैं, वैसे ही प्राणी मात्रका पहिले संयोग और पीछे वियोग हुआ करता है। सञ्चित वस्तु अन्तमें नाशमान होती हैं, उन्नतिके अनन्तर अवनति होती रहती है, जन्मके अनन्तर मृत्यु होती है, सुखके बाद दुःख होता है; अधिक क्या कहूं, इस जगतके बीच जितनी वस्तु उत्पन्न हुई हैं, वे सबही प्रगट होके पीछे नाशमान हो जाती हैं, परन्तु आलससे दुख और कार्य्यमें रत रहनेसे ही पुरुषको सुख प्राप्त होता है। ऐश्वर्य्य लक्ष्मी लज्जा, कीर्त्ति और धृति आदि गुण आलसी मनुष्यमें कदापि नहीं रह सकते, वह सुहृदपुरुषोंको सुख और शत्रुओंको दुःख देनेमें भी समर्थ नहीं हो सक्ता, बुद्धिसे धन और धनसे सुख भी नहीं प्राप्त कर सकता। हे राजन्! विधाताने तुम्हें धर्म्म कर-नेके ही निमित्त उत्पन्न किया है, कर्म्म त्याग करनेमें तुम्हें अधिकार नहीं है; इससे धर्म्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होनेसे ही तुम्हें सिद्ध प्राप्त होगी।

२७ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिर स्वजनवियोग रूपी दुःखसे सन्तापित होकर प्राण त्याग करनेके अभि-लाषी हुए; तब मुनि सत्तम व्यासदेव उनके शोकको दूर करनेमें प्रवृत्त होकर बोले,-महा-राज! अश्म गीत नाम एक प्राचीन इतिहास मैं वर्णन करता हूं, सुनिये। किसी समय विदेह-राज जनकने शोक दुःखसे अत्यन्त ही सन्तापित होके अश्म नामक महाबुद्धिमान एक ब्राह्मणसे संशय निवारण करनेके निमित्त यह प्रश्न किया, हे ब्राह्मण! स्वजन और धनकी बढ़ती तथा नाश होनेके समय कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको कैसा कार्य्य करना उचित है।

अश्म बोले, मनुष्यके उत्पन्न होते ही सुख दुःख आके उसके अनुगामी होते हैं। सुख दुःख दोनोंका प्राप्त होना सम्भव रहता है, परन्तु उन दोनोंमेंसे जिस समय एक की अधिकता होती है, तब जैसे वायु बादलोंको छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही वह मनुष्यकी चैतन्य शक्तिको हर लेता है। अभ्युदयके समय लोग समझते हैं, कि,, मैं साधारण मनुष्य नहीं हूं, मैं श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, जो इच्छा करूं उसही कार्य्यको कर सकता हूं,-इन तीन प्रकारके अभिमानमें मतवाले होके इक बारगी हिताहित विवेकसे रहित होते हैं; इससे विषयोंमें अत्यन्त ही आसक्त होके अपव्ययसे सम्पूर्ण पैतृक धनको नष्ट करके शीघ्र ही निर्द्धन होजाते हैं; उस समय पराया धन हरण करनेको भी वे लोग उत्तम कार्य्य समझते हैं। अनन्तर जैसे व्याध मृग आदि पशुओंका बध करता है, वैसे ही राजा भी उन नियम उल्ल-ङ्घन करनेवाले तथा पर धन हरनेवाले दुष्ट-मनुष्योंको दण्ड देता है; परन्तु जो बीस तथा तीस वर्षकी अवस्थामें इन दुष्कर्म्मोंसे विरत होजाते हैं, वे लोग प्रायः एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित नहीं रह सकते। इससे राजाको सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतरी वृत्तान्त जानकी

दरिद्रता आदि दुःखोंसे पीड़ित प्रजाके क्लेशोंको बुद्धिकौशलसे दूर करनेका उपाय करना चाहिये। "चित्त विभ्रम और अनिष्ट-विषय" इन दोनोंके सिवा मानसिक दुःख उत्पन्न होनेका तीसरा कारण कोई भी नहीं है, भोगादिकोंसे अथवा अन्य विषयोंसे चाहे किसी भांतिके दुख क्यों न होवें—सब इन्हीं दो कारणोंके अन्तर्गत हैं। इस जगत्‌के बीच बड़े, छोटे निर्बल बलवान आदि सब प्राणियोंको जरा मृत्यु व्याघ्रकी भांति आके भक्षण करती है। जो पुरुष अपने पराक्रमके प्रभावसे समुद्रके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको जय कर सकते हैं, वे भी जरा मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। सुख दुख उपस्थित होनेसे अभिमान रहित होकर उसे भोग करना ही उचित है, क्यों कि प्रारब्धके अनुसार जो कुछ उपस्थित होता है, वह अपरिहार्य्य अर्थात् अटल है।

हे महाराज! देखिये प्राणी मात्र ही अजर अमर होनेकी अभिलाषा करते हैं, परन्तु उसके विपरीत जरा, मृत्यु उपस्थित होके किसीको बाल्य किसीको युवा और किसीको वृद्धावस्थामें ग्रहण करती है; मृत्युके हाथसे कोई भी मुक्त नहीं होसकता। प्राणियोंको जन्म, मृत्यु, हानि, लाभ, प्रियवस्तुओंका संयोग वियोग, सुख, दुख आदिक प्रारब्धके अनुसार ही होते हैं। इससे जैसे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि स्वभावसे ही प्रकट होके अन्तमें निवृत्त होजाते हैं; उस भांति जाना, उठना, खाना, पीना, बैठना, सुख दुःख इत्यादि समयानुसार प्राणियोंको प्रारब्धसे ही उत्पन्न होते हैं; और समय पूरा होनेसे नहीं रहते। इस संसारमें वैद्य भी रोगी होते हैं, बलवान पुरुष निर्बल और धनवान मनुष्य निर्धन होजाते हैं; इससे कालकी गतिको अत्यन्त विचित्र जानना चाहिये। बड़े कुलमें जन्म, वीर्य्य, निरोगता, रूप, सौभाग्य और उपभोग ये सब होतव्यताके अनुसार ही प्राप्त होते हैं। इस पृथ्वीपर इच्छा न रखनेसे भी दरिद्रोंको अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं; परन्तु सम्पत्ति युक्त पुरुषोंको प्रार्थना करनेपर भी एक पुत्र उत्पन्न नहीं होता; इससे दैवके आश्चर्य्यमय कार्य्योंको अवलोकन करो। जरा, व्याधि-अवनति, भूख, प्यास, जल, अग्नि और विष आदिसे जो कुछ आपदा दीख पड़ती है, वह प्राणियोंको प्रारब्ध तथा सुकृत दुष्कृत आदि कर्म्मोंके फलके अनुसारही प्राप्त होती है। इस जगत्‌के बीच कोई पुरुष पाप न करके भी दण्ड पाता है, और कोई महाघोर अत्याचारी होकर भी राजदण्डसे छुटकारा पाता है; इससे प्रारब्धको अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है। इस पृथ्वीपर धनवान पुरुषोंको युवावस्थामें ही मृत्युके मुखमें पतित होते, और दरिद्र पुरुषोंको अत्यन्त क्लेशके सहित जरा-युक्त होकर भी एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते देखा जाता है; इससे छोटे वंशमें जन्म लेकर भी दीर्घजीवी और श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषको भी पतङ्गकी भांति नष्ट होते देखा जाता है। इस संसारके बीच श्रीमान पुरुष प्रायः ऐश्वर्य्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होते, अर्थात् अल्पायु होते हैं; परन्तु दरिद्र-पुरुष अत्यन्त निकृष्ट वृत्तिसे ही जीविका निर्व्वाह करनेमें समर्थ होते हैं, उस निमित्त वे लोग दीर्घजीवी होसकते हैं। दुष्टात्मा पुरुष निज सुखके वास्ते पापकार्य्योंका भी अनुष्ठान करते तथा कालप्रेरित होकर उसे ही प्रिय समझते हैं। मृगया, जूआ, स्त्रियोंमें आसक्ति, मद्यपान व्यर्थप्रलाप,—इन कई एक विषयोंको पण्डितोंने अत्यन्त निन्दित करके वर्णन किया है; परन्तु बहुतसे शास्त्र जाननेवाले पुरुषोंको भी नहीं सम्पूर्ण विषयोंमें आसक्त होते देखा जाता है। ईप्सित वा अनीप्सित सम्पूर्ण विषय समयानुसार प्राणियोंको आक्रमण करते हैं; उसमें दूसरा कोई भी कारण नहीं दीख पड़ता।

वायु, आकाश, अग्नि, सूर्य्य, चन्द्रमा, दिन, रात, ज्योतिवाले पदार्थ, नदी और पहाड़ोंको किसने उत्पन्न किया है; और कौन सबको धारण करता है? अतएव काल ही सबको धारण करता, और कालके प्रभावसे ही समस्त वस्तु उत्पन्न होती हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस भांति सर्दी, गर्मी, वर्षा और मनुष्योंके सुख-दुःख कालके प्रभावसे ही प्राप्त होते, और समयानुसार फिर नष्ट होजाते हैं। जब मनुष्य जरा-मृत्युसे ग्रस्त होते हैं, उस समय औषधि, मन्त्र, जप, होम आदिक कोई भी उसके परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे महासागरमें दो काठके टुकड़े दो ओरसे आके एक स्थानमें मिल जाते हैं, और समयके अनुसार फिर अलग अलग होजाते हैं; वैसे ही प्राणियोंका भी समयके अनुसार संयोग-वियोग होता रहता है। जो पुरुष उत्तम स्त्रियोंके बीचमें रहके गीतवाद्य आदिक सुखोंको भोगते रहते हैं, और जो पराये अन्नके आसरे जीवन धारण करनेवाले अनाथ पुरुष हैं;—काल दोनोंके सङ्ग समान व्यवहार करता है; अर्थात् वे कोई भी मृत्युके मुखसे छुटकारा नहीं पा सकते। इस संसारमें माता, पिता, स्त्री और पुत्र आदिक सैकड़ों तथा सहस्रों भांतिके सम्बन्ध दीख पड़ते हैं; परन्तु विचारपूर्व्वक देखनेसे वे लोग किसके माता, पिता हैं, और हम लोग ही किसके आत्मीय बान्धव हैं? कोई भी इस आत्माका आत्मीय नहीं है और न यह आत्मा किसीका आत्मीय बन्धु होसक्ता है। जैसे पथिक मार्गमें गमन करते हुए थोड़े समयके वास्ते एक स्थानपर इकट्ठे होकर विश्राम करके फिर यथायोग्य स्थानपर गमन करते हैं, इस संसारमें स्त्री पुत्र और स्वजनोंकी सङ्गति भी उसी भांति समझनी चाहिये। मैं कौन हूं, कहां हूं, और कहां जाऊंगा। किस कारण इस संसारमें स्थित हूं, और क्यों शोक वा दुःख करता हूं?" ज्ञानी पुरुषको ऐसा विचारना चाहिये, कि चक्रकी भांति घूमने वाले संसारके बीच प्रियजनोंका एकत्र वास अनित्य है। जैसे मार्गमें चलते हुए पथिक लोग एक स्थानपर इकट्ठे होके थोड़े समयतक विश्राम करते हैं; पिता, माता, भाई और मित्रोंके समागमको भी उसी प्रकार जानना चाहिये। ज्ञानकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको शास्त्र-विधिके अनुसार परमार्थ विषयमें श्रद्धा करनी उचित है? देखिये पण्डित लोग बिना देखे ही परलोकके सम्पूर्ण विषयोंको जानते हैं। विद्वान् पुरुषको भी देवता पितरोंकी पूजा अच्छीसे शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार त्रिवर्गसेवन अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम आदि सत्कर्म्मोंका अनुष्ठान करना उचित है। जरा मृत्युरूपी ग्राहसे युक्त कालरूपी समुद्रमें जो यह जगत् डूब रहा है, उसे कोई भी नहीं मालूम करता।

कितने ही वैद्य आयुर्वेदको पढ़के भी परिवारके सहित व्याधिसे ग्रस्त होते हैं; जैसे समुद्रका वेग तटको उल्लङ्घन नहीं कर सकता, वैसे ही वे लोग नाना भांतिके घृत आदिक औषधि सेवन करके भी किसी प्रकार मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे हाथी पर्व्वतोंपर निवास करके भी कभी कभी मतवाले होकर अपने दांतोंसे पर्व्वत तोड़नेकी इच्छा करते हैं, वैसे ही रसायनिक तथा वैद्यक विद्याके जाननेवाले पण्डित लोग शरीररक्षाके निमित्त भली भांति रसायन प्रयोग करके भी प्रायः जरा मृत्युसे ग्रस्त होते दीख पड़ते हैं। इसी भांति दाता यज्ञशील, वेदपाठी और तपस्वी पुरुष भी जरा-मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। उत्पन्न हुए प्राणियोंके विषयमें वर्ष, महीना, पक्ष, दिन रात्रि आदि जो व्यतीत होजाते हैं, वे फिर लौटके नहीं आते। इससे अनित्य शरीरवाले मनुष्योंको समय

पूर्ण होनेकी इच्छा न रहनेपर भी अवश्य ही सम्पूर्ण प्राणियोंके गमन करनेवाली चिरनिर्दिष्ट उस महापथसे ही गमन करना पड़ता है। शीघ्र ही देह जीवसे पृथक होता है, वा जीव ही देहसे पृथक् होजाता है। जो हो, जगतके बीच स्त्री वा अन्य वस्तुवर्गोंकी जो सङ्गति है, वह मार्गमें निवास करनेवाले पथिकोंकी भांति है। इस जगत्में कोई कदापि एक एक सङ्ग सदा सर्वदा निवास नहीं कर सकता, जब कि निज शरीरसेही के साथ जीवके चिर सहवास-लाभकी सम्भावना नहीं है; तब दूसरेके साथ सदा एक सङ्ग सहवास कैसे स्थिर रह सकता है? हे पापरहित युधिष्ठिर! इस समय तुम्हारे पिता वा पितामह आदि पितर कहां हैं? इस समय वे लोग तुम्हें नहीं देखते हैं, और तुम भी उन लोगोंको नहीं देख सकते हो। हे राजेन्द्र! स्वर्ग और नरकको कोई पुरुष भी नहीं देख सकता; परन्तु शास्त्र ही पण्डितोंके नेत्र स्वरूप हैं; इससे तुम उसके अनुसार इस संसार यात्राका निर्व्वाह करो। इस संसारमें जन्म लेनेके अनन्तर देवता पितर और ऋषियोंके ऋणको चुकानेके निमित्त असूयारहित होके पहिले ब्रह्मचर्य्य फिर दार-परिग्रह कर सन्तान उत्पन्न, अनन्तर यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करे; जो लोग इसलोक और परलोकके कार्य्योंको समान रूपसे साधन कर सकते हैं, और शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार कर ग्रहण करते हैं; उन धर्म स्थापित करनेवाले राजाओंका यश समस्त लोकोंमें विख्यात होता है। शुद्ध-बुद्धि-वाले विदेहराज जनक इसी भांति हेतु पूरित सम्पूर्ण उपदेश वचनोंको सुन कर शोक रहित हुए और अश्म ऋषिका आमन्त्रण करके अपने घर लौट आये। हे अच्युत युधिष्ठिर! तुम इन्द्रके समान पराक्रमी हो, इससे शोक त्याग कर तुम्हें हर्षित होना उचित है। तुमने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार इस पृथ्वीको जय किया है, इस समय अब सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको भोग करो। मेरे वचनमें कुछ संशय मत करो।

२८ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधिष्ठिरने वेदव्यासके उपदेश वचनोंको सुनके भी कुछ उत्तर नहीं दिया, तब पाण्डुपुत्र गुडाकेश अर्जुन हृषीकेश कृष्णसे यह वचन बोले, हे माधव! शत्रुनाशन धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर ज्ञाति-वध शोकसे अत्यन्त ही दुखित हुए हैं; इससे आप शोक रूपी समुद्रमें डूबते हुए राजा युधिष्ठिरको प्रबोधित कीजिये। हे जनार्द्दन! हम लोगोंमेंसे किसीके वचनमें इन्हें विश्वास नहीं होता है।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जब महात्मा अर्जुनने श्री कृष्णसे ऐसा वचन कहा, तब पुण्डरीकाक्ष अच्युत कृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरको धीरज धारण करानेमें प्रवृत्त हुए शैशव बालक अवस्थासे ही धर्मराज युधिष्ठिरके अर्जुनसे भी अधिक प्रिय थे, इससे उनके वचनको राजा युधिष्ठिर अवश्य ही मानते थे। कृष्ण राजा युधिष्ठिरके चन्दन-चर्च्चित शैल स्तम्भके समान भुजाको ग्रहण करके उत्तम वचनसे उनके चित्तको प्रसन्न करने लगे जैसे सूर्य्य उदय होने पर कमल प्रफुल्लित होता है, वैसे ही वचन बोलनेके समयमें श्री कृष्णके सुन्दर दर्शन; उत्तम पङ्क्तिसे युक्त मुख, नेत्र और शरीरकी शोभा हुई।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पुरुष शार्दूल, महाराज! जो लोग कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये हैं, उन लोगोंके फिर प्राप्त होनेकी किसी प्रकारसे भी अब सम्भावना नहीं है, इससे आप ऐसे शोकका परित्याग कीजिये। जैसे स्वप्नमें प्राप्त हुई वस्तु जागनेके अनन्तर नहीं दीख पड़ती, इस महायुद्धमें मरे हुए क्षत्रियोंको भी अब ही

भांति समझना चाहिये। वे मरे हुए शूरवीर पुरुष सब ही युद्धभूमिमें सम्मुख संग्राम करके एक दूसरेके हाथसे मारे गये; उनके बीच कोई भी पुरुष पीठ दिखाके अथवा भागते हुए नहीं मारा गया; वे सब ही वीर शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करके शस्त्रसे मरकर स्वर्ग लोकमें गये हैं, इससे उन लोगोंके निमित्त आप शोक न कीजिये महाराज! क्षत्रिय-धर्ममें रत, वेद वेदांगको जाननेवाले शूरवीर पुरुष अवश्य ही वीर पुरुषोंके योग्य पवित्र गतिको पाते हैं। आप परलोक प्राप्त हुए महात्मा पूर्व राजाओंके वृत्तान्तको सुनने होसे मरे हुए बन्धु-बान्धवोंके निमित्त शोक नहीं करेंगे; इस विषयमें देवऋषि नारदने एक प्राचीन इतिहास कहा था, उसे सुनिये।

पुत्र शोकसे आर्त्त हुए सृञ्जय राजको नारद मुनिने यह उपदेश किया था कि, हे सृञ्जय! तुम, मैं वा अन्य मनुष्य कोई भी सुख दुःखसे छुटकारा नहीं पासकते और हम सब लोगोंको ही एक दिन मरना होगा; तब विलाप करनेको क्या आवश्यकता है? मैं तुम्हारे समीप पहिले समयके राजाओंका महात्म्य वर्णन करता हूं; उसे चित्त लगाके पूर्णरीतिसे सुननेसे ही तुम्हारा शोक नष्ट होजावेगा। उन महातेजस्वी राजाओंके वृत्तान्तको मुझसे सुनकर शोक परित्याग करो। राजाओंमें अग्रणी इन महात्मा राजाओंके सुन्दर मनोहर तथा पवित्र उपाख्यानको सुननेसे ही क्रूर ग्रह शान्त होते और आयु बढ़ती है।

हे सृञ्जय! तुमने सुना होगा, कि अविक्षितके पुत्र मरुत्त नामक एक विख्यात राजा हुए थे; परन्तु वह भी परलोक गये हैं। जिस महात्मा मरुत्त राजाके विश्वजित् अर्थात् सर्वस्व दान नामक यज्ञमें देवतोंके गुरु बृहस्पति प्रमुख इन्द्र और वरुण आदि देवता उपस्थित हुए थे; और जिन्होंने अहङ्कार पूर्वक देवराज इन्द्रको युद्धभूमिमें पराजित किया था; जिनके यज्ञानुष्ठानके समय विद्वान बृहस्पतिके इन्द्रकी प्रियकामनासे जिस मरुत्तराजको यह कहकर कि मैं तुम्हारे यज्ञमें न जा सकूंगा, लौटा देने पर बृहस्पतिके ही कनिष्ठ भ्राता सम्वर्त्तने जिनके यज्ञको पूर्ण कराया था। जिनके शासन समयमें पृथ्वी राजविभवसे शोभित होकर बिना हलसे जोते ही शस्य उत्पन्न करती थी। जिनके यज्ञमें विश्वेदेवा सभासद, साध्य लोग परिवेष्टा हुए थे, और मरुद्गणने आकर सोमरस पान किया था। दक्षिणा देनेमें जो देवता, गन्धर्व और मनुष्योंसे भी बढ़ गये थे। जो, धर्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य, इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे; हे सृञ्जय! जब ऐसे गुणोंसे युक्त महात्मा मरुत्त राजाने भी परलोकमें गमन किया है; तब तुम्हें पुत्रके निमित्त शोक करना उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! सुहोत्र नामक एक विख्यात राजा थे, तुमने सुना होगा उन्हें भी परलोकमें गमन करना पड़ा। जिस सुहोत्र राजाके राज्यमें इन्द्रने एक वर्ष पर्य्यन्त लगातार सुवर्णकी वर्षा की थी। जिन नरपतिको पति रूपसे पाके पृथ्वी "वसुमती" नामसे विख्यात हुई थी। उनके राज्य शासनके समयमें सम्पूर्ण नदियोंमें स्वर्णमय जलजन्तु तैरते थे। उसका कारण यह है कि उन दिनों लोक पूजित इन्द्रने पृथ्वीकी सब नदियोंमें सोनेके कूर्म्म कर्कट घड़ियाल और शिशुमारकी वर्षा की थी। अधिक क्या कहा जावे, उन सैकड़ों तथा सहस्रों मच्छ मकर और कच्छप आदि स्वर्णमय जलजन्तुओंको देखकर राजा सुहोत्र स्वयं विस्मित हुए थे। हे राजन्! अनन्तर राजा सुहोत्रने कुरुजाङ्गलमें यज्ञ आरम्भ करके उस असीम सुवर्णके ढेरको ब्राह्मणोंको दान किया था। वह महात्मा सुहोत्र राजा धर्म, वैराग्य, ज्ञान और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे

श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु वह भी मृत्युके ग्रासमें पतित हुए हैं। इससे तुम दान और यज्ञसे रहित अपने पुत्रके वास्ते शोक मत करो।

हे सृञ्जय। तुमने अङ्गराज बृहद्रथका नाम सुना होगा, उनकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने विष्णुपदगिरि पर यज्ञमें दीक्षित होकर रत्नादिसे भूषित दश लाख कन्या, और दश लाख घोड़े, पद्मलाख चिन्हसे युक्त दश लाख हाथी, उत्तम गजके सहित सुवर्णमालासे भूषित एक करोड़ वृषभ दक्षिणामें दिये; पहिले जिन्होंने एक सौ यज्ञ किये थे, जिन यज्ञोंमें सोमरसपान करके देवराज इन्द्र और दक्षिणा पाये हुए धनके मदसे एकबारही ब्राह्मण लोग मतवाले हुए थे। दक्षिणा देनेमें जो देवता, गन्धर्व और मनुष्योंसे बढ़ गये थे जिन यज्ञोंमें सोमपानकी विधि है, उन अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम उक्थ्य, षोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तोर्य्याम- इन सात सोमसंस्थान नामक यज्ञोंमें अङ्गराज जिस प्रकार धनदान किया था, उस प्रकार धन दान करनेवाला कोई पुरुष इस पृथ्वीपर न हुआ, न होगा। हे सृञ्जय! वह अङ्गराज न्याय, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी कालके ग्रासमें पतित हुए हैं; इससे तुम पुत्रके वास्ते क्यों शोक करते हो?

हे सृञ्जय! तुमने उशीनरपुत्र महाराज शिबिकी कथा भी सुनी होगी; उनकी भी मृत्यु हुई है; जिन्होंने इस पृथ्वीको शरीर तोपनेवाले चमड़ेकी भांति हस्तगत किया था जिन्होंने पृथ्वीको जयशील रथपर चढ़के रथके बड़े शब्दसे चारों ओर गुंजाकर सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके पृथ्वीको एकछत्रके अधीन किया था, और जिन्होंने अपने समान गऊको और अजए गौ, घोड़े आदि पशुओंको मंगाके यज्ञमें दान किया था। अधिक क्या कहा जावे, प्रजापति ब्रह्माने उस समय समस्त राजाओंके बीच उशीनरपुत्र राजऋषि शिबिके अतिरिक्त और किसीको भी राज्यभार ग्रहण करनेके योग्य नहीं समझा था। देखिये वह महात्मा शिबि राजा धर्म्म अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु ऐसे गुणोंसेयुक्त महात्मा शिबि राजाकी मृत्यु हुई है, तब तुम दान और यज्ञसेरहित अपने पुत्रके निमित्त शोक मतकरो।

हे सृञ्जय! महा ऐश्वर्य्यवान् शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न हुए दुष्मन्तपुत्र महात्मा भरतकी कथा तुमने सुनी होगी, जिस महातेजस्वी राजा भरतने देवताओंकी प्रीतिकी अभिलाषासे यमुनाके तीरपर तीस, सरस्वती नदीके किनारे बीस, गङ्गाके तीरपर चौदह इत्यादि इसी भांति क्रमसे एक हजार अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। जैसे मनुष्य बाहुबलके सहारे आकाशमें गमन करनेमें समर्थ नहीं होते उसी भांति पृथ्वीके कोई राजा भी महाराज भरतके कर्म्मोंके अनुगामी होनेमें समर्थ नहीं होसकते। अधिक क्या कहा जावे, उस महात्मा राजा भरतने अनगिनत यज्ञवेदी आरम्भ करके उनमें एक सहस्रसे अधिक अश्व, घोड़े और पद्म सहस्र रत्न काञ्चन भूमिको दान किया था, वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु उन्होंने भी शरीर त्याग किया है; इससे तुम अपने पुत्रके वास्ते व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! राजा दशरथके पुत्र महात्मा रामचन्द्रका वृत्तान्त तुमने सुना होगा, उन्होंने भी शरीर त्याग किया है। जिन्होंने सदा प्रजाको अपने पुत्र समान पालन किया था; राज्यशासनमें जो अपने पिता दशरथके समान थे। और अधिक क्या कहा जावे, रामचन्द्रके

राज्यशासनके समयमें कोई स्त्री विधवा नहीं हुई, न कोई अनाथ हुये दीख पड़ते थे, सदा प्रजापुञ्ज सबकी वर्षा होती थी; पवन भी सदा समय पर अनुकूल चलते थे; इससे उनके राज्य शासनके समयमें किसी भांति दुर्भिक्ष नहीं उपस्थित हुआ था। उस समय किसीकी जलमें डूबके वा अग्निमें भस्म होके मृत्यु नहीं हुई थी, और दूसरे किसी भांतिके रोगका भी भय नहीं था। रामचन्द्रके राज्यशासनके समय सब प्राणी सहस्र वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते, और सहस्र पुत्रवाले होते थे, और सबके अभिलाषित मनोरथ सिद्ध होते थे, रोग रहित होके समय व्यतीत करते थे; उनके राज्यमें पुरुषोंकी बात तो दूर है, स्त्रियां भी आपसमें विवाद करनेमें प्रवृत्त नहीं होती थीं। उस समय सब कोई धर्म्ममें रत, सदा सन्तुष्ट चित्त सत्यव्रती, अभिलाष विषयमें पूर्ण मनोरथ, निर्भय और स्वाधीन थे। वृक्ष सदा फूलफलोंसे युक्त रहते थे, गौयें बड़े परिमाण दूध देती थीं। उस महातपस्वी रामचन्द्रने पिताके वचनको पालन करनेके वास्ते चौदह वर्ष पर्य्यन्त वनमें निवास करके फिर राज्य शासनके समयमें तिगुनी दक्षिणासे युक्त दश अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किये थे। लाल नयनवाले श्याम सुन्दर युवा रामचन्द्र यूथपति हाथी समान बलवान थे। उनकी आजानुलम्बितभुजा थीं, मुख कान्ति मनोहर और कन्धा सिंहस्कन्धके समान था। महात्मा रामचन्द्रने ग्यारह हजार वर्ष पर्य्यन्त निर्विघ्नताके सहित अयोध्यामें राज्य किया था। वह धर्म्म, अर्थ वैराग्य और ज्ञान इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; उन्हें भी मनुष्य लोक समाप्त कर इस लोकको त्यागके परलोकमें गमन करना पड़ा, तब तुम्हें पुत्रके निमित्त शोक करना उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! पहिले भगीरथ नामक एक बड़े राजा हुए थे, उनका नाम तुमने सुना होगा; उन्हें भी अवश्य मृत्युमें पतित होना पड़ा। जिसने यज्ञमें सोमरसके पान करके सुर-सत्तम भगवान् पाकशासनके मतवाले हाथीकी भांति मत्त होके अपने बाहुबलसे हजारों एक हजार असुरोंको पराजित किया था। उन्होंने यज्ञमें रत्नोंसे भूषित करके एक हजार कन्या-दान किया था। उनमेंसे हर एक कन्या चार घोड़ोंसे युक्त एक एक रथपर चढ़ी थीं, हर एक रथके साथ सुवर्ण मालासे सुशोभित पद्मनाभ चिन्हसे युक्त एक एकसौ हाथी, हर एक हाथीके सङ्ग एक हजार घोड़े नियुक्त थे, हर एक घोड़ेके सङ्ग एक हजार गऊ, सहस्र बकरी और सहस्र भेड़ थे। अधिक क्या कहा जावे, उस इक्ष्वाकु कुलभूषण यज्ञशील बहुत सी दक्षिणा देनेवाले महात्मा भगीरथको त्रिलोक गामिनी गङ्गादेवी पिता स्वीकार करके उनकी जङ्घापर बैठी थीं; जिस स्थानमें गङ्गा भगीरथकी जङ्घा-पर बैठीं उस स्थानमें उनका नाम उर्वशी और भागीरथी हुआ। वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे तथा तुम्हारे पुत्रसे श्रेष्ठ तथा अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी कालके ग्राससे मुक्त होनेमें समर्थ न हुए, इससे तुम यज्ञ और दक्षिणासे हीन अपने पुत्रके निमित्त वृथा शोक मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने महात्मा दिलीप राजाका भी वृत्तान्त सुना होगा, जिनके अनेक उत्तम कर्म्म और कीर्त्तिकी कथाको ब्राह्मण लोग आज तक गाया करते हैं। जिन्होंने महा यज्ञका अनुष्ठान करके रत्न-पूरित पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान की थी। जिनके हर एक यज्ञमें पुरोहित ब्राह्मणको एक सहस्र सुवर्णमय हाथी दक्षिणामें प्राप्त हुई थीं। जिनके शोभायुक्त यज्ञमें स्तम्भ भी सुवर्णमय हुए थे; अधिक क्या कहा जावे, उस समय इन्द्र आदि देवताओंने भी अभिष्ट कार्य्योंकी पूर्त्ति

करके महात्मा दिलीपकी उपासना करते थे और उनके यज्ञ मण्डपमें हिरण्मय स्तम्भ गड़ा था; उस समय देवता गन्धर्व इकट्ठे होकर नाचते और विश्वावसु बीचमें बैठके बीन बजाते थे। जिस बीनके बाजेको सुनकर समस्त श्रोताओंने समझा था, कि ये मुझे ही लक्ष्य करके बीन बजा रहे हैं। पृथ्वीके कोई राजा भी महाराज दिलीपके इस कार्य्यके अनुकरण करनेमें समर्थ न हुए। राजा दिलीपके ऐश्वर्य्यकी बात क्या कहूं, सुवर्ण भूषणोंसे भूषित मतवाले हाथी अलमस्त होकर मार्ग होमें शयन करते थे; अधिक क्या कहूं, उस सत्यधन्वा सत्यवादी महात्मा महाराज दिलीपका जिन मनुष्योंने दर्शन किया था, वे भी स्वर्गभागी हुए। जिनके राज भवनमें सदा सर्व्वदा धनुष टङ्कार, वीरोंके सिंहनाद, वेदध्वनि और "देहि दीय" ये तीन भांतिके शब्द क्षण भरके वास्ते भी नहीं बन्द होते थे। देखिये महात्मा दिलीप धर्म, अर्थ, काम और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु उन्हें भी इस लोकको त्यागना पड़ा; इससे अब तुम पुत्रके वास्ते शोक मत करो।

हे सृञ्जय! युवनाश्वपुत्र महाराज मान्धाताकी कथा तुमने सुनी होगी; उनकी भी मृत्यु हुई है। राजा युवनाश्वने पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ दही युक्त अभिषिक्त घृत अपनी स्त्रीको न देकर भ्रमपूर्व्वक स्वयं पान किया था, उससे उनके ही गर्भ रह गया और अन्तमें आज्यके प्रभावसे रुधिर-संयोगके बिना ही वह बालक पितृगर्भमें दिनोंदिन बढ़ने लगा; फिर मरुत आदि देवताओंने पितृगर्भको भेदकर उस बालकको निकाला था, अनन्तर वह बालक त्रिलोकविजयी राजा हुआ था,—ऐसी घटना जिस प्रकार हुई, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो। उत्पन्न होते ही उस बालकको मातृस्तनकी खोजमें यत्न करते देखकर देवता लोग आपसमें यह कहने लगे, कि यह बालक किसका आसरा ग्रहण करेगा। अनन्तर देवराज इन्द्रने कहा, "मां अयं धास्यति" अर्थात् यह मेरा आसरा ग्रहण करेगा,—ऐसा कहके उन्होंने उस बालकका "मान्धाता" नाम रखा, और शरीरपुष्टिके निमित्त अपने हाथकी उंगली उसके मुंहमें डाल दी; तिसके अनन्तर उस उंगलीसे ही दूधकी धार बहने लगी। इन्द्रके हाथकी उंगलीके दूधको पीकर वह बालक दिनोंदिन इस प्रकार बढ़ने लगा, कि बारह दिनमें ही बारह वर्षकी अवस्थाके समान मालूम हुआ; इसी भांति क्रमसे एक सौ दिनतक इन्द्रकी उंगलीके दूधको पीकर पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुआ था। अनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी शूर, धर्मात्मा, महात्मा मान्धाता युद्धभूमिमें अङ्गार, मरुत्त, असितञ्जय, अङ्गराज बृहद्रथ आदि मुख्य मुख्य सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके एक ही दिनमें समस्त पृथ्वीके स्वामी हुए। जिस समय अङ्गराज बृहद्रथके सङ्ग महाराज मान्धाताका युद्ध हुआ था, उस समय देवताओंने उनके धनुषटङ्कारके शब्दको सुनकर समझा कि आकाश विदीर्ण हुआ चाहता है। उनके प्रबल प्रतापको कहांतक वर्णन करूं जहांसे सूर्य्य उदय होते और जहांपर जाके अस्त होते हैं अर्थात् अन्तिम सीमा पर्य्यन्त आजतक पृथ्वी "मान्धाता क्षेत्र" कहके विख्यात है। पृथ्वीपति मान्धाताने एक सौ अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञोंको पूर्ण करके ब्राह्मणोंको दक्षिणामें अनगिनत रोहू मछली प्रदान की थी, दूसरी वस्तुओंके दानकी कथा क्या कहूं! जब कि मान्धाता राजाके यज्ञके अन्तमें ब्राह्मणोंके अतिरिक्त दूसरी जातिके मनुष्योंने भी एक योजन ऊंचे और दश योजन चौड़े सुवर्णके ढेरको बांट लिये थे; तब ब्राह्मणोंने जितना धन पाया था, उसका कहना बाहुल्यता मात्र है। हे सृञ्जय!

राजा मान्धाता धर्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य, इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु वह भी जब शरीर त्यागके इस लोकसे विदा होगये हैं, तब पुत्रके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! बोध होता है, तुमने नहुषपुत्र राजा ययातिका वृत्तान्त सुना होगा, उनकी भी मृत्यु हुई है। जिसने अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया था, जिसने शम्यापात अर्थात् एक बलवान पुरुषके हाथसे फेंके जानेपर जितनी दूरमें एक मोटी तथा भारी लकड़ीका टुकड़ा गिर पड़ता है, उतनी दूरके घेरमें यज्ञकी वेदीसे पृथ्वीको चिह्नित और उत्तम यज्ञ करते हुए क्रमसे पृथ्वीकी सीमा अर्थात् समुद्रके किनारे पहुंचे थे। इसी भांति एक सौ वाजपेय और इसके अतिरिक्त एक हजार दूसरी भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करके सुवर्णके बने हुए तीन पर्व्वत ब्राह्मणोंको दान दिये थे। नहुषपुत्र महाराज ययातिने युद्धभूमिमें अनगिनत दैत्य और दानवोंकी व्यूहबद्ध सेनाका नाश करके समस्त पृथ्वी विभाग कर अपने पुत्रोंको बांट दी थी, परन्तु अन्तमें यदु और द्रुह्यु आदि पुत्रोंको निराश करके सबसे छोटे पुरुको समस्त राज्य पर अभिषिक्त करके स्त्रीके सहित वनको चले गये। हे सृञ्जय! राजा ययाति धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी जब कालके कराल ग्राससे मुक्त न होसके, तब तुम किस कारण अपने पुत्रके वास्ते शोक करते हो?

हे सृञ्जय! तुमने नाभागपुत्र राजा अम्बरीषकी कथा सुनी होगी वह भी मृत्युके मुखमें पतित हुए। जिस पृथ्वी-पालक राजसत्तम अम्बरीषको सब प्रजा साक्षात् पुण्यकी मूर्त्ति समझती थी, जिन्होंने अयुत यज्ञोंके अनुष्ठान किया था, वैसे ही दस हजार राजाओंको उपस्थित ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त किया था। बहुतेरे दीर्घदर्शी पुरुषोंने नाभाग पुत्र राजा अम्बरीषके ऐसे अद्भुत कार्य्यको देखकर कहा था, कि "पहिले कोई भी राजा ऐसा कार्य्य न कर सके और न भविष्य होंमें कर सकेंगे,"—इसी भांति बारम्बार उनकी प्रशंसा की थी। हे सृञ्जय! जो सब राजा यज्ञके समय ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त थे, उन लोगोंने महाराज अम्बरीषके महात्म्य प्रभावसे अश्वमेध यज्ञोंके फलके भागी होकर उत्तरायण मार्गसे हिरण्यगर्भ लोकमें गमन किया। हे सृञ्जय! राजा अम्बरीष धर्म्म, अर्थ ज्ञान और वैराग्य इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु वह भी मृत्युके कराल ग्रासमें पतित हुए; इससे पुत्रके वास्ते तुम व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने चित्ररथ-पुत्र शशविन्दुका उपाख्यान सुना होगा, जिस महात्मा शशबिन्दु राजाके एक लाख स्त्री थीं और उन सम्पूर्ण स्त्रियोंसे दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे; वे सब राजपुत्र सुवर्णमय कवचोंसे युक्त और महाधनुर्द्धर थे, उन हर एक राजपुत्रोंने एक एक सौ कन्याओंके सङ्ग विवाह किया था। हर एक कन्याके सङ्ग एक सौ हाथी प्रति हाथीके साथ एक सौ रथ, हर एक रथके सङ्ग सुवर्ण मालाभूषित एक सौ उत्तम घोड़े थे; हर एक घोड़ेके साथ एक सौ गऊ, प्रति गऊके सङ्ग एक एक सौ बकरे और भेड़ नियुक्त थे। इस समस्त अपार धनको महाराज शशबिन्दुने अश्वमेध नामक महायज्ञमें ब्राह्मणोंको दान किया था। हे सृञ्जय! राजा शशबिन्दु तुमसे धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे परन्तु वह भी मृत्युके मुखसे मुक्त होनेमें समर्थ न होसके इससे तुम पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय ! राजा अमूर्त्तरयके पुत्र गयकी कथा तुमने सुनी होगी ; उनकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने एक सौ वर्ष पर्य्यन्त यज्ञसे शेष बचे एक अन्नको भोजन करके अपने जीवनको धारण किया था। अग्निने जब उन्हें वर देनेको कहा, तब उन्होंने यह वर मांगा, "हे अग्नि ! तुम्हारी कृपासे मेरा धन अक्षय होवे, धर्म्म और सत्यमें मेरी अटलरूपसे सदा बुद्धि रत रहे," ऐसी जनश्रुति है, कि अग्निने राजा गयकी प्रार्थना सुनके उन्हें वही अभिलषित वर प्रदान किया था। राजा गय एक हजार वर्ष पर्य्यन्त दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास और अश्वमेध यज्ञसे देवताओंकी पूजा करनेमें नियुक्त थे। एक हजार वर्षतक राजा गयने प्रति यज्ञके अन्तमें सौ हजार गऊ और सौ हजार अश्वतर दान की थी। इस ही भांति उस पुरुष श्रेष्ठ धनसे ब्राह्मणों, सोमरस पानसे देवताओं, स्वधासे पितरों और अभिलषित वस्तुओंके दानसे स्त्रियोंको तृप्त किया था। उन्होंने अश्वमेध यज्ञोंके पूर्ण होनेपर दश-व्याम चौड़ी और एक सौ हाथ लम्बी सुवर्णकी कृत्रिम पृथ्वी बनाके ब्राह्मणोंको दान की थी। हे सृञ्जय ! पृथ्वीपर जितने बालूके कण देख पड़ते हैं, महात्मा गयने उतनी ही गऊ ब्राह्मणोंको दान की थी, हे सृञ्जय ! महात्मा गय धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, उन्हें भी जब शरीर त्यागना पड़ा, तब तुम यज्ञ और दक्षिणासे हीन अपने पुत्रके निमित्त क्यों शोक करते हो ?

हे सृञ्जय ! तुमने महाराज रन्तिदेवकी कथा सुनी होगी, वह भी सदाके वास्ते इस पृथ्वीपर रहनेमें समर्थ नहीं हुए। जिस महातपस्वी रन्तिदेवने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रसे यह वर मांगा था, कि "मेरे अपरम्पार अन्नके ढेर सदा सर्व्वदा तैयार रहैं, मेरे द्वारपर प्रति दिन अनगिनत अतिथि उपस्थित रहैं, किसी समयमें भी मेरी श्रद्धा, कम न होवे, और मुझे किसीके समीप याच्ञा करनी न पड़े,"—इन्द्रने उन्हें इच्छानुसार वरदान किया। व्रत करने-वाले, महात्मा रन्तिदेवके यज्ञके समयमें गांव और वनके पशु स्वयं आके उपस्थित होते थे। उनके यज्ञमें मरे हुए पशुओंके रुधिर और चर्म्मोंसे एक महानदी प्रकट हुई थी, वह आज तक पृथ्वीपर चर्म्मण्वती नामसे विख्यात है। जिस रन्तिदेवने सभाके बीच सुवर्णमुद्रा दान करनेके समय "तुम्हें एक सौ स्वर्ण मुद्रा दान करूंगा, तुम्हें एक सौ स्वर्णमुद्रा दूंगा,—इसी भांति मन्त्रसे सङ्कल्प करके जब देनेको उद्यत हुए, तब ब्राह्मण लोग हम लोग एक सौ स्वर्ण मुद्रा नहीं लेंगे,—ऐसा वचन कहके कोला-हल मचाने लगे ; अनन्तर महात्मा रन्तिदेवने उन हर एक ब्राह्मणोंको एक एक हजार स्वर्ण मुद्रा प्रदान की थी। उस बुद्धिमान राजा रन्तिदेवकी पाकशालामें कलसे, कड़ाही, थाली लोटे आदि भाजनके पात्र सुवर्णके अतिरिक्त दूसरी धातुके नहीं थे ; जिसके गृहमें रात्रिमें पहुंचे हुए अतिथियोंके वास्ते जिस रात्रिको बीस हजार पशु मारे गये थे, उस रात्रिमें सुन्दर मणि जटित कुण्डलोंसे शोभित रसोई बनानेवाले पुरुष "आज पहिलेकी भांति मांस नहीं है इससे तुम लोग आज इच्छानुसार दालके सङ्ग भोजन करो,"—ऐसे ही वचन कहते हुए अतिथियोंके समीप प्रार्थना करते थे। हे सृञ्जय ! महाराज रन्तिदेव धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु उन्हें भी कालके कराल गालमें पतित होना पड़ा ; इससे तुम यज्ञ और दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय ! अत्यन्त पराक्रमी इक्ष्वाकुकुल-भूषण पुरुष शार्दूल महात्मा सगरकी कथा

तुमने सुनी होगी; उन्हें भी परलोकमें गमन करना पड़ा। महाराज! राजा सगरके गमन करनेके समय साठ हजार पुत्र इस प्रकार उनके अनुगामी होते थे, जैसे शरदऋतुमें चन्द्रमाके आस पास नक्षत्रमण्डली दीख पड़ती है। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीपर एकछत्र राज्य करके एक हजार अश्वमेध यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवताओंको तृप्त किया था, और हर एक यज्ञोंके पूर्ण होनेपर राजा सगरने सुवर्णस्तम्भ, सुन्दर नेत्र और उत्तम शरीरवाली स्त्रियोंके सहित उत्तम शय्यासे पूरित श्रेष्ठ मन्दिर प्रदान किये थे; उनकी आज्ञानुसार ब्राह्मणोंने उन समस्त वस्तुओंको आपसमें बांट लिया था। राजा सगरने क्रुद्ध होकर पृथ्वीको खनके समुद्रको पुनर्व्वार उत्पन्न किया था, उस ही समयसे समुद्र सागर नामसे विख्यात हुआ है। वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; तो भी कराल काल उन्हें हस्तगत करनेमें न चूका, इससे तुम पुत्रके निमित्त शोक वृथा मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने वेणपुत्र राजा पृथुकी कथा सुनी होगी, उन्हें भी इस लोकसे परलोकमें गमन करना पड़ा। जिस राजा पृथुको महर्षियोंने जङ्गलके बीच राज्यपद पर अभिषिक्त करके "ये पृथ्वीके सम्पूर्ण भागको उन्नत करेंगे; इससे इसका नाम पृथु हुआ।" ऐसा वचन कहके उनका नाम पृथु रक्खा था; उन्होंने क्षतसे प्रजाओंका उद्धार किया था, इससे वह प्रकृत क्षत्रिय शब्दसे प्रसिद्ध हुए; और सब प्रजा "हम सब तुम्हारे ऊपर अनुरक्त हैं", ऐसा अनुराग भाव प्रकाशित कर वह राजा कहके विख्यात हुए। राजा पृथुके राज्यशासनके समय बिना हलके जोते ही पृथ्वीमें अन्न उत्पन्न होते थे; वृक्षोंके हर एक पत्तोंमें मधु प्रकट होती और गौएं कलस परिमाण दूध देती थीं; उस समय सम्पूर्ण मनुष्योंकी अभिलाषा पूरी होती थी और सब कोई रोगरहित होकर घर तथा खेतमें अपनी इच्छानुसार निवास करते थे। जब महाराज पृथु समुद्र यात्रा करते थे, तब समुद्रकी लहरका शब्द बन्द हो जाता और नदियोंके जल स्तम्भित हो जाते थे; मार्गमें गमन करनेके समय उनके रथकी ध्वजाकी कहीं पर किसी भांति भी रुकावट नहीं होती थी। उन्होंने बृहत् अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानमें एक हजार हाथ ऊंचा सुवर्णका पर्व्वत तैयार कर ब्राह्मणोंको दान किया था। महाराज पृथु धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, जब उन्हें भी मृत्युके मुखमें पतित होना पड़ा तब तुम यज्ञ दानरहित अपने पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय! तुम मौनावलम्बन करके किस की चिन्ता कर रहे हो? तुम क्या मेरे इन सब वचनोंको नहीं सुनते हो? यदि तुम नहीं सुनते हो, तो कालग्रस्त रोगी पुरुषको औषध देनेकी भांति मेरे ये सब उपदेश युक्त वचन तुम्हारे समीपमें निष्फल तथा व्यर्थ हुए।

सृञ्जय बोले, देवर्षि! कीर्त्तिमान पवित्र चरित्रवाले महात्मा राजर्षियोंकी कथा, जो कि आपने मेरे समीप वर्णन की है, वह शोक मोहको नाश करनेवाली और सुगन्धि युक्त मालाकी भांति मनोहर है, मैंने विचित्र अर्थसे युक्त आपके सम्पूर्ण उपदेशोंको चित्त लगाके सुना है। हे ब्रह्मवादी-श्रेष्ठ महर्षि! आपके कहे हुए; हितोपदेश वचन निष्फल नहीं हुए; अधिक क्या कहूं, आपके दर्शन मात्रसे ही मैं शोक रहित हुआ हूं। जैसे कोई अमृत पीके तृप्त नहीं होता, वैसे ही आपके उपदेश युक्त वचनोंको बार बार सुनकर भी मेरा चित्त तृप्त

नहीं होता है। हे देवर्षि ! आपके समान महात्मा पुरुषोंके दर्शन कदापि निष्फल नहीं होते, इससे यदि आप पुत्र शोकसे शोकित मुझ दीनके ऊपर प्रसन्न हुए हों, तो आपकी कृपासे मेरा पुत्र फिर जीवित होके मेरे सङ्ग वार्त्तालाप करे।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय पर्व्वत ऋषिके वरप्रभावसे तुम्हें जो पुत्र प्राप्त हुआ था, तथा सुवर्णष्ठीवीनामक तुम्हारा जो गुणवान पुत्र इस समय प्राण रहित होकर पृथ्वी पर शयन कर रहा है, मैं तुम्हारे उस सुखप्रद पुत्रको फिर जिला देता हूं; अब मेरे आशीर्वादसे इस बार एक हजार वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहेगा।

२९ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण ! सृञ्जयराजका पुत्र सुवर्णष्ठीवी किस भांति हुआ और पर्व्वत ऋषिके वरसे उत्पन्न होके भी वह किस कारण अकालमें ही मृत्यु ग्रस्त हुआ ? उस समयमें जब कि सब मनुष्योंकी आयु एक हजार वर्ष पर्य्यन्त थी, तब सृञ्जयपुत्रने कुमार अवस्थाके न बीतते ही बीतते क्यों यमलोकमें गमन किया ? जो हो, उसका नाम मात्र सुवर्णष्ठीवी था, वा निष्ठीवनमें सुवर्ण उत्पन्न होता था, इस कारण उसका नाम सुवर्णष्ठीवी हुआ ? यदि स्वाभाविक सुवर्ण उत्पन्न होता था, तो किस भांति वह सुवर्णष्ठीवी हुआ, मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज ! इस विषयमें जो कुछ घटना हुई थी, मैं वह सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, आप सुनिये। लोक-पूजित नारद और पर्व्वत दो ऋषि हैं, उन दोनोंमें मामा और भानजेका सम्बन्ध है, उसमें नारद मामा और पर्व्वत भानजे थे। पहिले किसी समयमें घृत चावल आदि अन्न भोजन करनेकी अभिलाषासे उन दोनों ऋषियोंने मर्त्यलोकमें आगमन किया था। अनन्तर वे दोनों ऋषि पृथ्वीपर मनुष्योंके योग्य सम्पूर्ण वस्तुओंको भोगते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे। उन दोनोंने प्रीति पूर्व्वक आपसमें यह नियम स्थापित किया, कि "चाहे शुभ हो चाहे अशुभ होवे, जिस समय हम लोगोंके बीच जैसे भावका उदय होगा; यदि कोई इसमें अन्यथाचरण करेगा, तो वह शापका भागी होगा। उन दोनों ऋषियोंने "ऐसाही होगा" यह वचन कहके ऊपर कहे हुए नियमको पालन करनेके वास्ते प्रतिज्ञा की थी। अनन्तर सब लोकोंमें पूजित वे दोनों ऋषि राजा सृञ्जयके समीप जाके यह वचन बोले, हे महाराज! तुम्हारे हितके निमित्त हम दोनों इस स्थानपर कुछ दिनोंतक वास करेंगे; तुम हम लोगोंके ऊपर अनुकूल होकर यहांपर रहनेके वास्ते आज्ञा दो। राजा सृञ्जय उन दोनों ऋषियोंके वचनको सुनते ही "जो आज्ञा" कहके उनकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुए। इस ही भांति कुछ दिन व्यतीत हुए, तब एक दिन राजा सृञ्जय प्रीतिपूर्व्वक उन दोनों महात्माओंसे बोले, हे दोनों महात्मन् ! मेरा एक निवेदन सुनिये। मेरे एक पद्मपुष्पके समान सुन्दर रूपवाली, कामिनीकुलकी भूषण, शीलता आदि गुणोंसे युक्त सुकुमारी नामकी अनिन्दिता कन्या है, वह अकेलीही आप दोनों महात्माओंकी सेवा करेगी, इस विषयमें आप लोगोंका जो कुछ अभिप्राय हो; उसे प्रकाशित कीजिये।

राजाके वचनको सुनकर उन दोनों ऋषियोंने "उत्तम है"—ऐसा कहके उस विषयमें अपनी सम्मति प्रकाशित की। तब राजा सृञ्जय अपनी कन्यासे यह वचन बोले, हे पुत्री ! तुम पिता और देवताकी भांति इन दोनों ऋषियोंकी सेवा करो। पिताकी आज्ञा सुनके वह अनिन्दिता कन्या उन दोनों महात्माओंकी सेवा

करने लगी। उसको निष्कपट सेवा और सुन्दर रूपको देखकर थोड़े ही समयके बीच महात्मा नारद ऋषिके अन्तःकरणमें अलक्ष्य कामदेव प्रकट होके शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भांति क्रमसे बढ़ने लगा; परन्तु धर्मात्मा नारद ऋषिने लज्जा-पूर्व्वक अपने भानजे महात्मा पर्व्वतऋषिके समीप निज मानसिक भावको प्रकाश नहीं किया।

महर्षि पर्व्वतने अपने तपके प्रभावसे नारदको कामार्त्त समझा और अत्यन्त क्रुद्ध होके उनसे यह वचन बोले, "आपने स्वयं मेरे सङ्ग यह नियम किया था, कि" हम दोनोंके बीच जिसके मनमें शुभ अशुभ जैसे भावका उदय होगा उसी समय कपट रहित होकर आपसमें प्रकाश करेंगे; परन्तु तुमने यह प्रतिज्ञा झूठी की।" क्योंकि राजपुत्री सुकुमारीके विषयमें जो आपको काम-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है, उसे इतने दिनोंतक आपने मेरे समीप प्रकाशित नहीं किया; इससे मैं आपको शाप दूंगा। आप मेरे गुरु, ब्रह्मचर्य्य व्रतमें निष्ठावान और तपस्वी ब्राह्मण हैं; परन्तु हम लोगोंके आपसमें किये हुए नियमको आपने उलङ्घन किया है, इस ही कारण मैं तुम्हें जैसा शाप दूंगा, उसे सुनो,—राजकन्या सुकुमारी तुम्हारी भार्य्या होगी इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु विवाहके समयसे आप स्वरूप भ्रष्ट होकर अपनी विवाहिता स्त्री और अन्य मनुष्योंको वानर रूपसे दीख पड़ेंगे।

देवर्षि नारदने अपने भानजेके असहन शापयुक्त वचन सुनके क्रुद्ध होकर उन्हें भी शाप दिया, कि "यद्यपि तुम तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सत्य और दम आदि गुणोंसे युक्त तथा अटल रूपसे नित्य धर्म्ममें स्थित हो; तौभी मेरे शापसे अब पहिलेकी भांति स्वर्ग लोकमें गमन करनेमें समर्थ न होसकोगे।" इसी भांति उन दोनो ऋषियोंने क्रोधपूर्व्वक एक दूसरेको शाप देकर क्रुद्ध हाथियोंकी भांति अपने अपने अभिलषित स्थानपर गमन किया। महाबुद्धिमान पर्व्वत ऋषि निज तेज प्रभावसे समस्त मनुष्योंमें सम्मानित होकर पृथ्वीपर भ्रमण करनेमें प्रवृत्त हुए, और विप्रवर नारद ऋषिने शास्त्र विधिके अनुसार सृञ्जयराजकी कन्या अति सुकुमारीको ग्रहण किया; परन्तु वह कन्या पाणीग्रहणके समयसे ही नारद ऋषिको पर्व्वत ऋषिके शाप प्रभावसे वानर रूपसे देखने लगी। आश्चर्य्यका यह विषय है, कि उस धर्म्मज्ञ राजपुत्रीने नारद ऋषिके बन्दरके समान मुख और रूपको देखकर भी उनकी अपमानना नहीं की, बल्कि प्रीति पूर्व्वक अपने स्वामीकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुई। उसने अपने पतिमें अनुरक्त होकर देवता, यक्ष, मुनि तथा अन्य किसी पुरुषको कभी मनसे भी पतिभावसे नहीं देखा।

तिसके अनन्तर किसी समय भगवान् पर्व्वत ऋषिने अपने मामा नारद ऋषिको वनके बीच एकान्त स्थानमें देखा। उस समय वह नारद ऋषिको प्रणाम करके यह वचन बोले, हे भगवन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होके फिर स्वर्ग लोकमें गमन करनेकी अनुमति दीजिये। अनन्तर शापसे अत्यन्त दुःखित महात्मा नारद ऋषि अपने भानजे पर्व्वत ऋषिको शापसे कातर और हाथ जोड़के उपासककी भांति अपने सम्मुख स्थित देखके उनसे बोले, हे तात! पहिले मुझे "तुम बन्दर होगे," यह कहके तुमने शाप दिया, तब मैंने भी क्रोधपूर्व्वक तुम्हें शाप दिया, कि "आजसे तुम अब स्वर्ग लोकमें गमन न कर सकोगे"। देखो तुम मेरे पुत्रके समान हो, इससे मेरे सङ्ग ऐसा व्यवहार करना तुम्हें उचित नहीं हुआ। इसी भांति वाद विवाद करके वे दोनों ऋषि शान्त होके आपसमें एक दूसरेको अपने शापसे मुक्त किया। तब देवर्षि नारद पहिलेकी भांति फिर अपने दिव्य स्वरूपको प्राप्त हुए, इधर राजपुत्री पति सुकुमारी श्रेष्ठ नारद ऋषिका देवतोंके

समान तेजपुञ्जसे युक्त शरीर देखके भय युक्त समझ उनके समीपसे भागने लगी । तब पर्व्वत ऋषि अनिन्दिता सुकुमारी राजपुत्रीको भागती देखके बोले, हे पतिव्रता ! ये तुम्हारे वेही पति निग्रहानिग्रहमें समर्थ महात्मा नारद ऋषि हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इससे तुम शङ्का रहित होकर इनकी अनुगामिनी बनो। महात्मा पर्व्वत ऋषिने उस राजकन्याके समीप ऐसे विनय युक्त वचन कहके फिर आपसके शापका वृत्तान्त वर्णन किया, तब राजकन्या सुकुमारी पर्व्वत ऋषिके मुख समस्त वृत्तान्त सुनके शान्त हुई। अनन्तर महर्षि पर्व्वत स्वर्ग लोक और नारद ऋषिने अपने गृहको ओर गमन किया ।

श्रीकृष्ण बोले. महाराज ! मैंने आपके समीप जिस वृत्तान्तको वर्णन किया, उह सब जिन्होंने प्रत्यक्ष देखा था, वह भगवान् नारद ऋषि यहीं पर बैठे हुए हैं ; इससे आपके पूछनेपर ये स्वयं ही शेष वृत्तान्त वर्णन करेंगे ।

३० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर नारद मुनिसे यह वचन बोले, हे भगवन् ! मैं उस सुवर्णष्ठीवीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त आपके मुखसे सुननेकी इच्छा करता हूं ।

नारद मुनि युधिष्ठिरके पूछने पर सुवर्णष्ठीवीकी उत्पत्ति आदि सम्पूर्ण वृत्तान्तको वर्णन करनेमें प्रवृत्त होकर बोले, महाराज ! महात्मा कृष्णने तुम्हारे समीप जो कुछ वर्णन किया, वह सब सत्य है, शेष वृत्तान्त मैं कहता हूं, तुम सुनो । किसी समय मैं और मेरे भानजे महामुनि पर्व्वत ऋषि अर्थात् हम दोनोंने कुछ समयतक निवास करनेके वास्ते विजयी-श्रेष्ठ राजा सृञ्जयके समीप गमन किया ; वह यथारीतिके कार्य्योंसे हम दोनोंकी सेवामें नियुक्त हुए। हम लोग उनके राजमन्दिरमें वास करके खाने पीनेकी समस्त वस्तुओंसे सम्मानित होकर वहां पर निवास करने लगे। इसी भांति वर्षाकाल बीतने पर जब हम लोगोंके गमन करनेका समय उपस्थित हुआ, तब पर्व्वत ऋषि मुझे सम्बोधन करके उस समयके अनुसार मुझसे यह वचन बोले,"हे ब्रह्मन् ! हम लोगोंने इतने दिनोंतक इस राजाके घरमें परम सुखसे निवास किया है इस समय कोई प्रत्युपकारसे इसका कल्याण होसकता है; इस विषयका विचारकरो ।" शुभ दर्शन पर्व्वत ऋषिके मुखसे ऐसा वचन सुनके मैंने कहा, "हे भागिनेय ! तुम सब विषयोंके पूर्ण करनेमें समर्थ हो, इससे ऐसा कहना तुम्हें योग्य ही है, तुम राजाको इच्छानुसार वर देकर कृतार्थ करो । अथवा यदि तुम्हारी इच्छा होवे तो राजा सृञ्जय हम दोनोंके तप प्रभावसे सिद्धि प्राप्त करें !

तिसके अनन्तर पर्व्वत ऋषि विजयी श्रेष्ठ राजा सृञ्जयसे यह वचन बोले, हे राजन् ! तुम्हारी निष्कपट सेवासे हम लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं, इससे आज्ञा देता हूं, कि तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो उसे इसही समय विशेष समालोचना करके देखो, यह कहनेका यही अभिप्राय है, कि देवताओंकी हिंसामें प्रवृत्त न होनेसे मनुष्योंका कदापि नाश नहीं होता, इससे तुम इस विषयमें सावधान होकर इच्छानुसार वर मांगो ; क्यों कि तुम मेरे समीप वर ग्रहण करनेके योग्य पात्र हो ।

सृञ्जय बोले, यदि आप दोनों मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, तब मुझे समस्त वस्तु प्राप्त हुई हैं ; यही मेरे वास्ते परम लाभ तथा महत् फल समझिये। राजा सृञ्जयका ऐसा वचन सुनके पर्व्वत ऋषि बोले, हे राजन् ! जो सङ्कल्प बहुत दिनोंसे तुम्हारे अन्तःकरणमें विराजमान

है, उस ही चिर-संकल्पित वरको तुम इस समय हम लोगोंके समीप मांगो।

राजा सृञ्जय बोले, हे महर्षि! हमारी यह इच्छा है, कि महासौभाग्य युक्त, आयुष्मान, वीर्य्यवान दृढ़व्रती, वीर और देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होवे। उनके ऐसे वचनको सुनके पर्व्वत ऋषि बोले, महाराज! तुमने जो वर मांगा, वह तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा पूरी होगी; इसके अतिरिक्त तुम्हारे पुत्रके मलमूत्रसे सुवर्ण उत्पन्न होगा, इससे वह सुवर्णष्ठीवी नामसे विख्यात होगा। परन्तु तुमने मन ही मन देवराज इन्द्रके पराभवकी इच्छाकी थी; इससे तुम्हारा पुत्र दीर्घजीवी नहीं होगा। जो हो, तुम इन्द्रके समान तेजस्वी पुत्रकी सदा सर्व्वदा देवराज इन्द्रसे रक्षा करना। राजा सृञ्जय पर्व्वतऋषिके मुखसे ऐसा वचन सुनतेही अत्यन्त भय भीत होकर उनसे बोले, "हे भगवन्! ऐसा अनिष्ट न होवे, आपके तप-प्रभावसे मेरा पुत्र दीर्घायु हो," इसी भांति विनययुक्त वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करनेके निमित्त यत्न करने लगे; परन्तु पर्व्वतऋषिने इन्द्रके कल्याणकी इच्छा करके राजा सृञ्जयके वचनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब मैंने राजा सृञ्जयको अत्यन्तही दीनभावसे युक्त देखकर कहा। महाराज! तुम आपदग्रस्त होनेपर मुझे स्मरण करना; तो उस ही समय तुम मेरा दर्शन पाओगे और तुम्हारा वह प्रियपुत्र यदि यमलोकमें भी गया होगा, तौभी मैं उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे समीप लाके उप-स्थित करूंगा; इससे अब इस विषयके वास्ते शोक मत करो। राजा सृञ्जयसे ऐसा वचन कहके भानजे पर्व्वतऋषि और मैं,—दोनोंने ही अपने अभिलषित स्थानपर गमन किया; सृञ्जय भी अपने राजभवनमें गये। कुछ दिनके अनन्तर राजऋषि सृञ्जयके अग्निके समान तेजस्वी महापराक्रमी एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और वह बालक तालावमें स्थित बड़े पद्मकी भांति क्रमसे बढ़ने लगा। परन्तु पर्व्वतऋषिके वरप्रभावसे उस बालकके निष्ठी वनसे प्रकृत रूपसे सुवर्ण उत्पन्न होने लगा; इसही कारण उसका नाम भी सुवर्णष्ठीवी हुआ।

नारद मुनि बोले, हे कुरुसत्तम युधिष्ठिर! तिसके अनन्तर यह लोकविस्मयकर समाचार चारों ओर फैल गया और बलि तथा वृत्रासुरके नाश करनेवाले भगवान इन्द्रने भी सुना, कि पर्व्वतऋषिके वर प्रभावसे राजा सृञ्जयके एक अद्भुत पुत्र उत्पन्न हुआ है; उससे उन्होंने अपनी पराजयके भयसे डरके बृहस्पतिके निकट सब वृत्तान्त प्रकाश किया; फिर देव-ताओंके गुरु बृहस्पतिकी सम्मतिके अनुसार उस राजपुत्रका छिद्र खोजने लगे और मूर्त्तिमान दिव्य अस्त्र वज्रको सम्बोधन करके बोले, हे वज्र! पर्व्वतऋषिके वरप्रभावसे राजा सृञ्जयके एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह युवा अवस्था प्राप्त होनेसे अवश्य ही मुझे पराजित करेगा; इससे तुम बाघका रूप धरके उसका वध करो ऐसा कहके उन्होंने उस बालकके मारनेकी इच्छासे वज्र चलाया। तब शत्रुओंके जीतने-वाला वज्र इन्द्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर गुप्त रीतिसे उस राजपुत्रका छिद्र खोजता हुआ उसके पीछे घूमने लगा। इधर राजा सृञ्जय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी पुत्रको पाके प्रसन्न चित्तसे थोड़ी सेनाके सहित उस राजकुमारकी रक्षाके वास्ते सर्व्वदा अन्तःपुरमें निवास करने लगे। इसी भांति वह बालक क्रमसे पांच वर्षकी अवस्थाका होगया, परन्तु वह थोड़ी अवस्थाका होकर भी गजराजके समान परा-क्रमी हुआ था। उस ही समय एक दिन उस राजपुत्रने खेलनेके वास्ते केवल दासीके साथ गङ्गातीरके निकट निर्ज्जन वनके बीच गमन किया। वहां पहुंचते ही उसका महाबली पराक्रमी एक शेरको उसके सम्मुख आते

देखकर वह बालक भयसे कांपने लगा, और उसके अनन्तर उस व्याघ्रके हस्तगत होके पिसके तथा प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिर पड़ा उसे देखकर दासी चिल्लाके रोने लगी। इधर इन्द्रकी मायाप्रभावसे व्याघ्ररूपी वज्र उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगया। अनन्तर रोती हुई दासीका अत्यन्त आरत शब्द सुनके राजा सृञ्जय स्वयं उस ही ओर दौड़े और वहां पहुंचके देखा, कि "शोभारहित चलनेमें असमर्थ चन्द्रमाके समान राजपुत्र प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिरा हुआ है; और किसी हिंसक पशुने उसके गलेका रुधिर पीया है।" उस समय राजा सृञ्जय अत्यन्त दुःखित होकर उस रुधिर लिपटे शरीरसे युक्त मरे हुए पुत्रको गोदमें उठाके आरत स्वरसे विलाप करने लगी। तिसके अनन्तर उस राजकुमारकी माता भी पुत्रकी विपद-वार्त्ता सुनकर अत्यन्त ही शोकके सहित रोदन करती हुई जिस स्थानमें राजा सृञ्जय विलाप कर रहे थे, वहांपर उपस्थित हुई। राजा सृञ्जयने बहुत देरतक रोदन करनेके अनन्तर एकाग्रचित्त होकर मुझे स्मरण किया, मैं उसे जानके उस ही समय शोकसे व्याकुल राजाके पास उपस्थित हुआ। अनन्तर चण भर पहिले यदुवीर कृष्णने जो तुम्हारे समीप वर्णन किया, वही सब प्राचीन राज-ऋषियोंका इतिहास उनके समीप वर्णन किया; तिसके अनन्तर इन्द्रकी सम्मतिसे उनके पुत्रको भी फिर जिला दिया। हे राजन्! इससे यह निश्चय जान रखो, कि जो होनहार है, वह अवश्य होता है, किसी प्रकार उसका अन्यथा नहीं होसकता। जो हो, अनन्त पराक्रमी महायशस्वी राजपुत्र सुवर्णष्ठीवीने फिर जीवित होकर पिता माताकोप्रसन्न किया; और कुछ समयके अनन्तर राजा सृञ्जयके परलोक गमन करने पर महाबली अत्यन्त तेजस्वी राजपुत्रने पिताकी राजगद्दी पर बैठके ग्यारह सौ वर्ष पर्य्यन्त निर्विघ्नताके सहित राज्य शासन किया। इतने दिनमें उन्होंने बहुतसी दक्षिणासे युक्त अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवता और पितरोंको तृप्त कर बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके कुलको बढ़ाया था। इसी भांति बहुत दिनतक अतुल ऐश्वर्य्य भोगके वह भी अन्त समयमें परलोकको गये। हे महाराज युधिष्ठिर! इससे महातपस्वी व्यासदेव और श्रीकृष्णने तुम्हें जैसा उपदेश किया है, तुम उस ही भांति पिता पितामहसे प्राप्त हुए राज्यभारको ग्रहण करो और लोकोंका पवित्र करनेवाले महा यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करनेके वास्ते यत्न करो; ऐसा होनेसे तुम शरीर त्यागनेके अनन्तर अपने अभिलषित लोकमें गमन कर सकोगे।

३१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कि सम्पूर्ण धर्म तत्वके जाननेवाले महा तपस्वी श्री कृष्णचन्द्र द्वैपायन ऋषि राजा युधिष्ठिरको शोकसे आरत और मौनभावसे स्थित देखकर बोले, हे राजो-वलोचन धर्म्मराज! राजाओंको प्रजा पालन करना ही एक मात्र धर्म्म है; और सदा धर्म्म करनेवाले मनुष्योंका धर्म्म ही प्रमाण-स्वरूप है; इससे तुम पिता पितामहसे रक्षित उस ही राजधर्म्मको पालन करो।

हे भरतकुल तिलक! तपस्या केवल ब्राह्मणोंका ही धर्म्म है, ऐसी विधि वेदमें दृढ़ रूपसे निश्चित है; वह नित्य धर्म्म ब्राह्मणोंका मूल स्वरूप है; परन्तु समस्त धर्म्मोंके रक्षक क्षत्रिय हैं। क्यों कि तपस्यामें निष्ठावान ब्राह्मण लोग विघ्नोंसे बिना रक्षित हुए किसी भांति भी धर्म्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं हो सके। यदि कोई पुरुष विषय लोभके वशमें होकर राजशासन उल्लङ्घन करे, तो उस लोकयात्रामें

विघ्न डालनेवाले पुरुषको दण्ड देना राजाका कर्त्तव्य है। सेवक, पुत्र वा तपस्वी आदि कोई पुरुष क्यों न हों, यदि मोहके वशमें होकर प्रमाण प्रमाणको अप्रमाण करनेमें प्रवृत्त होवें, तो जिस उपायसे होसके उन पापी पुरुषोंका शासन अथवा उनका वध करना उचित है; इसमें अन्यथा आचरण करनेसे राजाको पापमें लिप्त होना पड़ता है। किसी दुष्ट पुरुषको धर्म्म लिप्त करते देखके यदि राजा उस दुष्टको दण्ड देके धर्म्मकी रक्षा न करे, तो धर्म्म लुप्त होनेका सब पाप राजाको ही लगता है। हे युधिष्ठिर! तुमने धर्म्म लोपक दुर्य्योधन आदि दुष्ट राजाओंको मारके यथार्थ रूपसे क्षत्रिय धर्म्मको रक्षा की है, तब किस कारण तुम व्यर्थ शोक करते हो? धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन, दान और दुष्टोंका दमन करना, ये ही राजाओंके प्रकृत धर्म्म है।

युधिष्ठिर व्यासदेवके वचनोंको सुनके बोले, हे तपोधन! आप धर्म्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रणी हैं तथा धर्म्मके सम्पूर्ण तत्व आपको गुप्त भावसे विदित हैं, इससे आपके उपदेश युक्त वचनोंका मैं कुछ भी संशय नहीं करता हूं, परन्तु मैंने जो राज्यके वास्ते भीष्म-द्रोणाचार्य्य आदि कई एक अवध्य पुरुषोंका वध किया है, वही दुष्कर्म्म मेरे हृदयको भस्म किये डालता है।

श्री वेदव्यास मुनि बोले, हे राजेन्द्र! युद्धभूमिमें जो सब वीर मारे गये, उनका वध करनेवाला ईश्वर, जीव स्वभाव, अथवा उनके किये हुए कर्मोंके फल हैं? यदि कहो कि जीव ईश्वरकी प्रेरणासे शुभा-शुभ कर्म्मोंमें प्रवृत्त होता है, तो तुम्हें शोक करना उचित नहीं है; क्योंकि उस शुभाशुभ कर्म्मोंके फलको देनेवाला कर्त्ता ईश्वर ही है, वही फिर भोगेगा। उसका दृष्टान्त देखो, कि यदि कोई पुरुष वनमें एक वृक्ष काटे, तो वृक्ष काटनेका पाप उस काटनेवालेका ही लगेगा; कुल्हाड़ेको पाप नहीं लग सकता। यदि कहो, कि कुल्हाड़ा अचेतन अर्थात् जड़ वस्तु है, इसही कारण पापभागी नहीं हो सकता; परन्तु जीव चैतन्य है, इसही कारण नियोज्यकर्त्ता होनेसे वह शुभाशुभ कर्म्मोंका अवश्य फलभागी होगा। तो वृक्ष काटनेवालेको पाप न लगकर कुल्हाड़ा बनानेवालेको भी तो पाप लग सकता है?

हे कुन्तीनन्दन! कभी ऐसा विचार मत करो, कि उस नियोज्यकर्त्ता कुल्हाड़ा बनानेवालेको भी वृक्ष काटनेवालेके पाप-फलमें लिप्त होना पड़ेगा! क्योंकि एक पुरुषने वृक्ष काटा और दूसरेको उस पापका भागी होना पड़ेगा, यह सिद्धान्त कदापि युक्ति-पूरित नहीं हो सकता। इससे तुम भी सब कर्म्मोंके फलको प्रयोजन-कर्त्ता ईश्वर होको समर्पण करो। यदि कहो, जीवही शुभाशुभ कर्म्मोंका कर्त्ता है, उसे प्रेरणा करनेवाला कोई भी नहीं है; ऐसा माननेसे जगन्नियन्ता कोई भी नहीं स्वीकार किया जा सकता; ऐसा होनेसे तुम्हें किसको भय है! तुमने शुभ अथवा अशुभ जो कुछ कर्म्म किये हैं, वेही उत्तम हैं।

हे राजन्! इस समयमें जो कहता हूं, उसे विशेष रूपसे निश्चय करो। वृक्ष काटनेवालेका पाप कदापि नियोज्यकर्त्ता कुल्हाड़ा बनानेवालेको नहीं लग सकता यह तुम निश्चय समझ रक्खो, कि कोई भी दैवका अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, अर्थात् सब कोई दैवके वशमें होके शुभाशुभ कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं। यदि तुम स्वभावकोही कर्त्ता समझते हो, तो भूत और भविष्यत् किसी कालमें भी तुम्हारे साथ पापका सम्बन्ध नहीं होसकता। हे युधिष्ठिर! यदि तुम्हें सब लोगोंके धर्म्माधर्म्मकी मीमांसा करनेकी इच्छा हो, तो शास्त्रसे ही इसका निर्णय होसकता; क्योंकि धर्म्माधर्म्म शास्त्रमूलक हैं। इससे उस शास्त्रमें ही जब राजाका दण्ड धारण कर्त्तव्यका

विधि वर्णित है ; तब तुम्हें इतना शोकका कौनसा विषय है ? हे राजशार्दूल ! यदि तुम यह समझते हो, कि शास्त्रका मत ऐसा ही है और सब लोग शास्त्र विधि अनुसार कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं,-इसे स्वीकार करता हूं ; परन्तु शुभ और अशुभ कर्म्मोंके फल स्वयं ही जीवके सम्बन्धमें आप ही आके उपस्थित होते हैं और उन कर्म्मोंके फल भी जीवको प्राप्त होते हैं ;तो मैं जो कुछ कहता हूं, उसे निश्चय करो। पापसे अशुभ कर्म्म करनेकी प्रवृत्ति होती है इससे तुम असत् फलदायक सम्पूर्ण कर्म्मोंको सब भांतिसे त्याग कर अब शोक चिन्तासे रहित हो जाओ। हे राजन् ! तुमने यथार्थ रीतिसे निज धर्म्म पालन किया है, इससे अब तुम्हें लोकनिन्दित आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होना उचित नहीं है। और देखिये इस लोकमें पापकर्म्मोंके प्रायश्चित्तकी विधि है ; परन्तु प्रायश्चित्त जीवित अवस्थामें ही सहजमें किया जा सकता है ; शरीर नष्ट होनेपर किस प्रकार प्रायश्चित होसकेगा ? हे युधिष्ठिर ! शरीरकी रक्षा करनेसे तुम अनायास ही प्राय श्चित्तके अनुष्ठान करनेमें समर्थ होसकोगे, और यदि तुम बिना प्रायश्चित्त किये ही शरीर त्याग करोगे ; तो परलोकमें तुम्हें अत्यन्त ही पश्चाताप करना पड़ेगा।

३२ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर वेदव्यास मुनिसे यह वचन बोले, हे पितामह ! हे तपोधन ! मैंने राज्य-लोभसे पुत्र, पौत्र, भ्राता, चचा, पितामह, गुरु, ससुर, मामा, भानजे स्वजन, सुहृद, मित्र सम्बन्धी आदि तथा दूसरे बहुतेरे क्षत्रियोंका नाश किया है ! और भी देखिये, कैसे दुःखका विषय है, कि जो सब राजा दोनों ओरकी सहायता करनेके वास्ते कुरुक्षेत्रमें आके उप-स्थित हुए थे, उनके बीच एक भी पुरुष जीते जी घर न आसके, सब कोई रणभूमिमें मरकर यमलोकवासी हुए ! हे महर्षि ! आप केवल मुझे ही इन सब लोगोंके नाशकी जड़ समझिये। जो लोग सदासर्व्वदा धर्म्म और यज्ञके अनुष्ठानमें रत रहते थे, वैसे धर्म्मात्मा राजा और स्वजन-बान्धवोंको नाश करके इस पुरुष हीन पृथ्वीके राज्यको ग्रहण करनेमें मुझे कौनसा सुख मिलेगा ? उन सम्पूर्ण श्रीमान् राजाओंसे रहित पृथ्वीकी दुर्दशाको बारम्बार विचारके मेरा हृदय अब भी रातदिन भस्म हुआ जाता है। विशेष करके भयङ्कर स्वजन-हत्या और दोनों ओरकी सेनाके अनगिनत पुरुषोंको मृत्युके मुखमें पतित होते देखकर मेरा चित्त किसी प्रकार भी शान्त नहीं होता है। हाय ! इस कुरुक्षेत्रके युद्धमें जिनके पति, पुत्र और भाई मारे गये हैं ; उन स्वजनहीन दीन वराङ्गना स्त्रियोंकी इस समय कैसी दशा होगी ; उसे मैं नहीं कह सकता हूं। वे सब स्त्रियें तनक्षीण और दीनभावसे युक्त होकर "क्रूर पाण्डवोंने वृष्णिवंशियोंके सङ्ग मिलके हमारे पति, पुत्र आदि आत्मीय पुरुषोंका बध किया है," ऐसे वचनोंको कहके हम लोगोंकी निन्दा करती हुई पृथ्वीमें गिरेंगी। वे सब स्त्रियें पिता भ्राता, पति और पुत्रोंके मुख न देखकर स्नेह-बन्धनसे युक्त होके शोकित तथा अत्यन्त दुःखित होकर प्राणत्यागके यमलोकमें गमन करेंगी ; और धर्म्मकी जैसी सूक्ष्म गति है, उससे हम लोगोंको ही स्त्री बधरूपी पापमें लिप्त होना होगा ; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ! हमने जब राज्यलोभसे आत्मीय पुरुषोंका नाश करके बहुतसा पाप किया है, तब हमको शिर नीचा करके महाघोर नरकमें गमन करना पड़ेगा ; इसमें कौन सन्देह कर सकता है ? इससे हे अद्भुतकर्म पितामह ! आप सब आश्रमोंके विशेष लक्षण मेरे समीप वर्णन कीजिये।

आपके उपदेशके अनुसार मैं कठिन तपस्या करके शरीर त्याग करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले श्रीवेदव्यास मुनि धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके ऐसे वचनको सुनकर निज-बुद्धि अनुसार समालोचना करके उनसे बोले, हे राजन्! तुम क्षत्रिय धर्म्मको स्मरण करके अपने हृदयके शोकको दूर करो। क्यों कि वे सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष निजधर्म्मके अनुसार युद्ध भूमिमें मारे गये हैं। वे सब कोई इस पृथ्वीपर महत् यश और परम सौभाग्यकी अभिलाषासे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए थे, परन्तु समय पूर्ण होनेसे ही वे लोग कालके वशमें होके प्राण-रहित होगये। तुम, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव, तुम लोग कोई भी उन लोगोंके मारनेवाले नहीं हो। पर्य्यायक्रमसे धर्म्मपूर्व्वक कालने ही उन लोगोंका प्राणहरण किया है। उस कालका कोई माता, पिता, भ्राता तथा अनुग्रहका पात्र नहीं है। जो सम्पूर्ण प्रजाके किये हुए कर्म्मोंका साक्षी है, उस ही कालके प्रभावसे युद्धमें प्रवृत्त हुए क्षत्रिय पुरुष मृत्युको प्राप्त हुए हैं, तब जो काल एक प्राणीको अन्य प्राणीके द्वारा नष्ट करता है वह केवल निमित्त मात्र समझा जाता है, और ऐसाही उसका नियत कार्य्य है।

हे महाराज! पुण्य पापके साक्षी स्वरूप कालको कर्म्म सूत्रात्मक समझनेसे अर्थात् जीवके किये हुए कर्म्म ही भविष्यमें सुख तथा दुःख रूपसे परिणत होते हैं, इससे ईश्वर जीवके किये हुए कर्म्मोंके फलको प्रदान करके शुभाशुभ कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होता। हे पाण्डुपुत्र! वे सब क्षत्रिय पुरुष जिन कर्म्मोंसे युद्धमें मारे गये हैं, उन लोगोंके नाशके मूल कारण उनके सम्पूर्ण कर्म्म और अपने किये हुए तपस्या तथा व्रत आदि विषयोंको विचार करके देखो! क्यों कि तुम अत्यन्त ही क्षमाशील और अजातशत्रु हो, तौभी पूर्व्व कर्म्मके प्रभावसे देवने स्वयं तुम्हें इस हिंसात्मक युद्ध कर्म्ममें प्रवृत्त कराके अनेक पुरुषोंका नाश कराया है। इस-से रस्सीकी भांति यह जगत् ईश्वरके वशमें होकर कालप्रेरित कर्म्मसे ही प्रवर्त्तित होता है। इस पृथ्वीपर प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशके विषयको विचार कर देखनेसे हर्ष वा शोक करना निरर्थक होता है। महाराज! तुम अब व्यर्थ शोक मत करो, बल्कि उन दुष्कर्म्मोंके निमित्त प्रायश्चित्तकी जैसी विधि है, उसका अनुष्ठान करना उचित है। पहिले देवासुर युद्धके विषयमें ऐसा सुना गया है, कि असुर जेठे और देवता लोग उनसे छोटे थे। राजलक्ष्मीके वास्ते देवता और असुरोंमें महाघोर भ्रातृ-विरोध उपस्थित हुआ; बत्तीस वर्ष पर्य्यन्त उन लोगोंमें महाभयङ्कर युद्ध होता रहा, अधिक क्या कहा जावे, समुद्रकी भांति उस समय पृथ्वी रुधिरसे परिपूरित होगई।

तिसके अनन्तर देवता लोगोंने दैत्योंको पराजित करके स्वर्ग लोकके राज्यको प्राप्त किया। उसी समय कितने ही वेद जाननेवाले ब्राह्मण पृथ्वीको पाके अभिमानसे मोहित होकर दैत्योंकी सहायतामें तत्पर होगये। हे भारत! वे अठासी हजार दुष्टात्मा पृथ्वीपर शालावृक नामसे विख्यात थे; वे लोग अपने मूर्खताके कारण देवताओंके हाथसे मारे गये। महाराज! पृथ्वी-मण्डलमें जो लोग धर्म्मका नष्ट करके अधर्म्मकी वृद्धि करते हैं, उन दुष्टोंका इस प्रकार नाश करना चाहिये, जैसे देवताओंने दैत्योंका नाश किया था। यदि एकके नाश होनेसे कुलभरकी आपद दूर होवे, तो अवश्य ही एकका नाश करना उचित है, यदि एक कुलके नष्ट करनेसे राज्य भरके सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा होती हो, तो उस कुल भरका नष्ट करनेसे भी धर्म्म नष्ट नहीं होता। हे राजन्! इसी भांति कोई कोई अधर्म्मके कार्य्य हैं, जो धर्म्म रूपसे परिणत होते हैं,

और कोई कोई धर्म्मके कार्य्य भी अधर्म्मरूपसे गिने जाते हैं; पण्डित लोग इस विषयको विशेष रूपसे जानते हैं। हे भारत! तुम सब शास्त्रोंके विषयोंको भली भांति जानते हो और देवता तथा पूर्व्व राजऋषियोंके आचरित प्राचीन मार्गके ही अनुगामी हुए हो; इससे अब शोक मत करो। तुम यह निश्चय जान रखो, कि तुम्हारे समान धर्म्मात्मा और सदाचारी पुरुष नरकमें कदापि गमन नहीं करते; इससे अब तुम इस समय अपने इन भाइयों और सुहृद पुरुषोंको धीरज धारण कराओ। जो पुरुष मनमें इच्छा करके पाप कर्म्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और पाप कर्म्म करके कुछ भी पश्चाताप नहीं करते, वेही पुरुष सम्पूर्ण पापोंके भागी होते हैं, ऐसा वेदमें कहा है। ऐसे पापाचारी पुरुषोंके पापके प्रायश्चित्तकी विधि नहीं है, इससे उन पापियोंका पाप नहीं घट सकता, परन्तु तुम सदा धर्म्म कार्य्योंमें रत रहते हो और पाप कर्म्म करनेके वास्ते मनमें भी इच्छा नहीं करते; केवल दुर्य्योधन आदिके दोषने ही तुम्हें युद्ध करनेमें प्रवृत्त कराया था, और कार्य्य समाप्त करके पश्चाताप भी कर रहे हो, इससे तुम्हें प्रायश्चित्त करनेमें अधिकार है। हे महाराज! अश्वमेध नामक महायज्ञके अनुष्ठान करनेसे ही इसका प्रायश्चित्त कहा गया है, इससे तुम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करो। भगवान इन्द्रने देवताओंके सङ्ग मिलके बार बार दैत्योंका नाश करते हुए एक एक करके क्रमसे एक सौ अश्वमेध यज्ञोंको पूर्ण किया था, इसलिये वह शतक्रतु नामसे विख्यात हुए और पाप रहित होकर स्वर्गलोक जय और परम सुख प्राप्त कर सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए मरुद्गणके सहित स्वर्ग लोकके राज्यपर शोभित हो रहे हैं। देखो देवतोंके राजा शचीपति इन्द्र अप्सराओंके सहित महाश्रि-माली युक्त होकर किस प्रकार सुख पूर्व्वक स्वर्ग-लोकमें विराजमान हैं। इस समय तुमने भी अपने पराक्रमसे सब राजाओंको पराजित किया है, और समस्त पृथ्वीपर भी तुम्हारा अधिकार हुआ है, इससे अब तुम सुहृद पुरुषोंके सङ्ग मिलके राज्य और युद्धमें मरे हुए राजाओंके नगरमें गमन करके उन लोगोंके पुत्र, पौत्र वा भ्राता जो कोई वर्त्तमान हों उन्हें उनके पैतृक राज्यपर अभिषिक्त करो। यदि उन लोगोंके बीच कोई बालक हो, तो भी सदाचार और शान्त वचनसे उन्हें राज्यपद पर प्रतिष्ठित करके सब प्रजाके मनको रञ्जन करते हुए पृथ्वीको पालन करो। जो राज्य एक बारगी राजपुत्रोंसे रहित होगये हैं, वहां पर यदि मृत राजाओंकी कन्या हों, तो उन्हें राज्यपर अभिषिक्त कीजिये; क्यों कि स्त्रियोंके पूर्ण मनोरथ होनेसे ही फिर उनके वंशकी बढ़ती होसकेगी; इसी भांति कार्य्य करनेसे तुम्हारा शोक दूर होगा। महाराज! तुम इसी भांति राज्यके सब प्रजाको सुखी करते हुए असुरोंके नाश करनेवाले इन्द्रकी भांति अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करो। कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें जो सब महात्मा क्षत्रियोंकी मृत्यु हुई है, उनके वास्ते शोक करना उचित नहीं है, क्यों कि वे सब वीर योद्धा कालके वशमें मोहित होकर क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार युद्धभूमिमें मारे गये हैं। इस समय तुमने क्षत्रियोंके यथार्थ धर्म्म और निष्कण्टक राज्य दोनों ही प्राप्त किया है, इससे निज धर्म्मके अनुसार राज्य शासन करो; ऐसा होनेसे ही परलोकमें तुम्हारा कल्याण होगा।

३३ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि पितामह, मनुष्यको कैसा कर्म्म करनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है; और किन कार्य्योंके करनेसे वे लोग

उन पापोंसे कूट सकते हैं? आप यह वृतान्त मेरे समीप कहिये।

धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनके महर्षि वेदव्यास मुनि बोले, प्रतिसिद्ध और विहित कर्मके करनेवाले तथा जो वृथा कार्य्यों में प्रवृत्त होते हैं, वे सब ही प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। ब्रह्मचारी पुरुष यदि सूर्य्यके उदय और अस्त होनेके समय शयन करते रहें तो उन्हें भी पापग्रस्त होना पड़ता है। कुनखी अर्थात् पूर्व्व जन्ममें जो पुरुष सुवर्ण चोरी किये रहते हैं, दूसरे जन्ममें उनके हाथ पांवके नख दूषित हो जाते हैं, इस लोकमें वेही पुरुष कुनखी कहके प्रसिद्ध हैं। पहिले जन्ममें शराब पीनेवाले पुरुषोंके दूसरे जन्ममें दांत काले हो जाते हैं; वे पुरुष श्यामदन्तो नामसे विख्यात होते हैं। जिस पुरुषका छोटा भाई अपना आगे विवाह करता है, वह जेष्ठ-परवित्ति नामसे प्रसिद्ध होता है! परिवेत्ता अर्थात् जो पुरुष जेठे भाईके रहते हुए पहिले अपना विवाह करता है; जेठी बहिनके रहते छोटी बहिनका व्याह होनेसे उस छोटीके पतिका नाम दिधिषपति कहके प्रसिद्ध होता है। छोटीका पहिले व्याह होनेसे उसकी जेठी बहिनको जो व्याहता है, वह पुरुष दिधिषुका उपपति कहके विख्यात होता है। अवकीर्णी अर्थात् व्रतभ्रष्ट ब्रह्मघाती, परिनिन्दक; द्विजातियोंके बध करनेवाले, सत्पात्रको वेद विद्या न देनेवाले और कुपात्रको वेद विद्या दान करनेवाले, ग्रामघाती मांस बेचनेवाले, अग्नित्यागी ब्राह्मण, भृत्रिभोगी अध्यापक गुरुपत्नी घातक, वंश परम्परासे निन्दित पुरुष, यज्ञके अतिरिक्त तथा पशुओंको हिंसा करनेवाले घर जलानेवाले, चोरीसे जीविका निर्व्वाह करनेवाले, गुरुजनोंसे विरुद्धता करनेवाले और नियम उलङ्घन करनेवाले, ये सब पापग्रस्त पुरुष ही प्रायश्चित्त करनेके अधिकारी हैं। हे कुन्तीनन्दन! इस समय अकार्य्य अर्थात् लौकिक और वेद विरुद्ध कार्य्यों को तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, चित्त लगाके सुनो। निज धर्म्म त्यागके पराये धर्म्म कार्य्यों का अनुष्ठान करना जो वस्तु मांगने योग्य न हों, उन्हें जांचना, अभक्ष वस्तुओंको भक्षण करना, शरणागतको परित्याग करना, सेवकोंका पालन न करना, रस, अर्थात् लवण तथा गुण आदि बेचना, पशु पक्षी, आदिका नाश करना सामार्थ रहते भी स्त्रीको गर्भधारण न कराना और प्रतिदिन देने योग्य गोग्रास आदि न देना, संकल्पकी हुई वस्तुको दान न करना, और ब्राह्मणोंके ऊपर अत्याचार इन ऊपर कहे हुए कार्य्यों को धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने अकार्य्य कहके वर्णन किया है। जो पुत्र पिताके सङ्ग विवाद करते हैं, जो गुरु शय्या गामी हैं। और जो उचित समयपर निज स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न नहीं करते वे सब ही प्रार्याश्चत्त करनेके योग्य हैं। महाराज! जिन कर्म्मों के करने और जिनके न करनेसे मनुष्योंको प्रायश्चित्त करना पड़ता है, उसे मैंने संक्षेप और विस्तारके सहित तुम्हारे समीप वर्णन किया है, अब पाप कर्म्म करनेपर भी जिन कारणोंसे पापी नहीं होना पड़ता, उसे वर्णन करता हूं, सुनो।

वेद जाननेवाला ब्राह्मण भी यदि शस्त्र ग्रहण करके युद्ध भूमिमें गमन करे; जो युद्ध करनेवाले ब्राह्मणोंका बध करनेपर भी ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! मैंने जैसी व्यवस्था कही है, वेदमें भी इस विषयका प्रमाण है। जो वेद प्रमाणसे युक्त और विहित धर्म्म कहके वर्णित है, वह मैं तुम्हारे समीप कहता हूं। निज वृत्तिसे भ्रष्ट आततायी ब्राह्मणका वध करनेसे मारनेवालेको जो ब्रह्महत्याके पापमें नहीं लिप्त होना पड़ता उसका कारण यही है कि उस आततायीका क्रोधही उसके वध करनेवाले पुरुषके क्रोध

उत्पन्न होनेका मूल है। यदि अज्ञानता और असाध्य व्याधिसे जीवन नष्ट होता होवे, तो ऐसे समयमें धर्म्मात्मा ज्ञानी वैद्यके उपदेशके अनुसार सुरापान करनेपर फिर संस्कार मात्र करनेसे ही सुरापानके पापसे मुक्त हो सकेंगे। हे महाराज! अभ्यक्ष्य वस्तुओंके भक्षणसे जो पाप कहे हैं, विहित प्रायश्चित्त करनेसे मनुष्य उन सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। गुरुकी आज्ञानुसार गुरुपत्नीके सङ्ग गमन करनेसे मनुष्यको पाप नहीं लगता, उसका प्रमाण यह है, कि उद्दालक मुनिने शिष्यके द्वारा अपनी स्त्रीसे श्वेतकेतु नाम पुत्र उत्पन्न कराया था। आपद काल उपस्थित होनेपर गुरुके निमित्त चोरी कर्म्म करनेसे भी पाप नहीं लगता; परन्तु वह शिष्य गुरुके हित साधनके सिवा अपनी अभिलाषासे यदि चोरी कर्म्ममें प्रवृत्त न होवे, वह चोरी किया हुआ धन यदि ब्रह्मस्व न हो और चोरी करनेवाला यदि उसे स्वयं भोग करनेकी इच्छा करे, तो उसे पापमें नहीं लिप्त होना पड़ेगा। अपने वा दूसरेके प्राण रक्षाके निमित्त गुरुके वास्ते, विवाह और स्त्रीसे रति करनेके समयमें मिथ्या वचन कहनेसे मनुष्य पापी नहीं हो सकता। ब्रह्मचारी पुरुषका वीर्य्य यदि स्वप्नमें स्खलित होजावे, तो फिरसे उपनयनकी विधि नहीं है; उसके प्रायश्चित्तके वास्ते जलती हुई अग्निमें घृत होम करनेकी विधि है। बड़ा भाई यदि विवाहके पहिले ही पतित वा परिव्राजक होजावे, तो छोटा भाई विवाह कर सकता है; ऐसा करनेसे पारिवित्ति दोषमें नहीं फंसना पड़ता। पराई स्त्री यदि कामसे आरत होके स्वयं आकर रति करनेकी इच्छा करे, तो उसके सङ्ग भोग करनेसे धर्म्म नष्ट नहीं होता यज्ञके बिना पशु बध करना वा दूसरेको पशुओंके बध करनेमें प्रवृत्त कराना उचित नहीं है, परन्तु यज्ञमें जो मन्त्र पढ़नेके पशु बध होता है, वह पशुओंके ऊपर कृपा प्रकाशित हुई है, जिसके वेदमें वर्णित है। तीर्थस्थानमें यदि कोई पुरुष अज्ञानताके कारण प्रतिदिन योग्यपात्रको दान न देकर अयोग्य ब्राह्मणोंको दान देवे तो उससे धर्म्म लोप नहीं होता। स्त्रीके दुराचारिणी होनेसे उसके सङ्ग रति और भोजन आदि कर्म्म न करके उसे धिक्कार देकर पृथक् स्थानमें रखनेसे स्त्री पुरुष दोनों ही निर्दोष होते हैं, अर्थात् मूर्ख स्त्रियां धिक्कार प्रदानसे तिरस्कृत होनेसे ही पाप रहित हो सकती हैं, और पुरुष स्त्रीका सङ्ग त्यागनेसे निर्दोष होते हैं। जो पुरुष "इससे देवता लोग तृप्त होकर, मनुष्योंकी इच्छानुसार अर्थात् अन्न उत्पन्नके योग्य जलवृष्टि करते हैं," इससे सोमरस दोनों लोकोंका उपकारक है,—इस प्रकार सोमरसके तत्त्वको जानते हैं, वे सोमरस बेचनेसे पापी नहीं होते। कार्य्य करनेमें असमर्थ सेवकको परित्याग करनेसे स्वामीको दोषभागी नहीं होना पड़ता; सब गौओंकी रक्षा करनेके वास्ते सम्पूर्ण बनको भस्म किया जा सकता है। महाराज! मैंने जिन कर्म्मोंको कथा कही है, यदि ऊपर कहे हुए कारणसे वे सब कार्य्य किये जावें; तो उन कर्म्मोंके करनेवाले पुरुषोंको पापी नहीं होना पड़ता। अब प्रायश्चित्तके विषयको बिस्तारपूर्व्वक वर्णन करूंगा, ध्यान देके सुनो।

३४ अध्याय समाप्त।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, महाराज! प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर यदि मनुष्य फिर पूर्व्व कृत पापाचरणमें प्रवृत्त न होवे, तो तपस्या, यज्ञके अनुष्ठान और गौ तथा सुवर्ण दानसे पापसे मुक्त होसकता है। सेवक न रखके निज कार्य्योंको स्वयं करते हुए भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके एक बार भोजन करे, ब्रह्मचर्य्य व्रतमें स्थित हो साष्टाङ्ग पाणि होकर पृथ्वीपर भ्रमण

करते हुए असूया-रहित होके निज दोष प्रकाशित करे और रात्रिके समय भूमिपर शयन करे,—इसी भांति नियम पूर्व्वक बारह वर्ष व्यतीत करनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। अथवा यदि इच्छा हो, तो व्यवस्था देनेवाले पण्डितके मतके अनुसार शस्त्रजीवी धनुर्द्धारी पुरुषके बाणका निशाना होकर प्राणत्याग करे; अथवा अवाक्शिरा होके जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म कर देवे, अथवा किसी एक वेदमन्त्रको जपते हुए तीन सौ योजन मार्ग भ्रमण करके किसी तीर्थ स्थानमें उपस्थित होनेसे, वा वेद जाननेवाले ब्राह्मणको अपना सर्व्वस्व दान करनेसे; अथवा उस ब्राह्मणको जीवनके समय पर्य्यन्त अन्न वस्त्र और गृहदान करनेसे भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकता है। परन्तु यदि प्राण सङ्कटके समय गो ब्राह्मणकी रक्षा कर सके, तो उस ही समय ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो सकता है। यदि कृच्छ्रभोजी होसके, अर्थात् पहिले तीन दिन सबेरे फिर तीन दिन सन्ध्याके समय और फिर तीन दिन तक बिना मांगी वस्तुओंका भोजन करना होगा और शेषके तीन दिनमें कुछ भी भोजन न करने पावेगा,—इसीको कृच्छ्र भोजन कहते हैं; इसी भांति नियम पूर्व्वक छः वर्ष बितानेसे पुरुष पापसे रहित हो सकते हैं। यदि प्रत्येक महीनेसे प्रथम सप्ताहमें सबेरे, दूसरे सप्ताहमें अयाचित भोजन करके चौथे, सप्ताहमें अनशन व्रत करे, तो तीन वर्षमें ही ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। यदि पहिले महीनेमें प्रातःकाल, दूसरेमें सन्ध्याके समय, तीसरेमें बिना मांगा हुआ भोजन करके चौथे महीनेमें उपवास व्रत करे,—तो क्रमसे एक वर्ष तक इसी भांति नियम पूर्व्वक रहनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष अपने पापसे छूटेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। और यदि महीने भरसे अधिक समय तक कुछ भी भोजन न करके केवल जल पीके प्राण धारण करके रह सके तो इस प्रकार अनशन व्रत करनेवाला पुरुष थोड़े ही समयमें पापरहित होता है।

हे महाराज! ब्रह्महत्या वा चाहे किसी प्रकारके पापी क्यों न हों—दक्षिणा युक्त अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके अवभृत अर्थात् यज्ञके शेषमें स्नान करनेसे ही ऊपर कहे हुए सब पापोंसे मुक्त हो सकते हैं। महाराज! ब्रह्महत्या आदि अनेक भांतिके पापी जो अश्वमेध यज्ञ करनेसे पापरहित होसकते हैं, इसका वेदमें प्रमाण है। इसी भांति यदि ब्राह्मणके प्राण रक्षामें प्रवृत्त होकर युद्धमें मारा जावे तौभी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो सकता है, अथवा उत्तम ब्राह्मणको एक लाख गऊ दान करनेसे भी ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है; परन्तु दूध देनेवाली पच्चीस हजार कपिला गऊ दान करे तौभी पापसे छूटेगा; और यदि किसी दरिद्र साधु पुरुषको आहारके अभावमें प्राण संशय उपस्थित हो, तो उस समयमें एक हजार बछड़ोंसे युक्त दुग्धवती गऊ दान करनेसे भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकेगा; परन्तु जितेन्द्रिय ब्राह्मणको केवल सौ काम्बोजदेशीय घोड़ेदान करनेसे ही पापरहित होगा। यदि याचकको उसकी अभिलाषा अनुसार वस्तु दान कर सके और दान करके किसीके समीप प्रकाश न करे; तो एक पुरुषको दान देकर ही ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकेगा। एक बार सुरापान करनेसे अनिवार्य्य सुरापान करे, तो इस लोक और परलोकमें आत्माको उत्तीर्ण कर सकेगा; अथवा जलरहित स्थानमें ऊंचे पहाड़के ऊपरसे गिरने, वा जलती हुई अग्निमें प्रवेश करने अथवा महाप्रस्थान-यात्रा अर्थात् केदाराचलपर गमन करके हिमालयमें चढ़के प्राणत्याग करनेसे भी सुरापानके पापसे मुक्ति लाभ होसकती है। सुरापान करनेवाला

ब्राह्मण बृहस्पतिसव नाम यज्ञके अनुष्ठानसे भी सुरापानके पापसे छूटके फिर ब्राह्मण समाजमें मिल सकता है; ऐसा वेदमें वर्णित है। यदि प्रायश्चित्तके अनन्तर फिर सुरापानमें प्रवृत्त न होवे, तो मत्सरहीन होकर भूमिदान करनेसे ही पापरहित होसकेगा। गुरुस्त्री गमन करनेवाला पुरुष जलती हुई लोहयुक्त शिलासे लिपटके प्राणत्याग करे, तो उस पापसे मुक्त होसकता है; अथवा अपना लिङ्ग काटके ऊर्द्धदृष्टि होकर परिव्राजक होनेपर भी गुरुपत्नीगमनके पापसे निस्तार पा सकता है। किसी प्रकारके पाप क्यों न हों, शरीर त्याग करनेसे वे सब छूट जाते हैं, परन्तु जिन सब पापोंका वर्णन किया गया है, यदि स्त्रियां उन पापोंमें लिप्त हों, तो वे एकवर्ष पर्य्यन्त आहारविहार आदि भोगोंको त्यागके इन्द्रिय संयम करनेसे ही पापरहित होसकती हैं। जो पुरुष महाव्रतके अनुष्ठान अर्थात् एक महीने पर्य्यन्त सब भोजन करनेकी वस्तुओंको और जल पीना भी परित्याग करे, तो वह सब पापोंसे मुक्त हो सकता है; और सर्व्वस्वदान करनेसे भी मुक्ति लाभ कर सकेगा। अथवा गुरुको प्राणरक्षाके वास्ते युद्धमें मरनेसे भी पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होसकता है। गुरुके समीप मिथ्या व्यवहार वा अप्रिय कार्य्य करनेसे फिर उनके इच्छानुसार प्रिय कार्य्य करनेसे उस पापसे मुक्त होगा। यदि कोई पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत करनेवालोंका व्रत भङ्ग करे, तो उसे छः महीनेतक गाचर्म्म ओढ़के ब्रह्महत्याके समान व्रतका अनुष्ठान करने होगा, तब वह उस पापसे मुक्त होसकेगा। पराये धन और स्त्री हरनेवाले पुरुषका सात वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य व्रतका अनुष्ठान करना होगा, ऐसा करनेसे उसका पाप छूट सकता है; अथवा जिनकी जैसी वस्तु हरण करे, उसे अनेक भांतिके उपायसे वैसी ही वस्तु प्रदान करनेसे भी पापरहित हो सकता है। परिवेत्ता और परिवित्ति ये दोनों ही इन्द्रियसंयम करके बारह दिन प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करनेसे पवित्र हो सकेंगे। परन्तु परिवित्त अर्थात् जेठ भ्राता छोटे भाईके विवाहके अनन्तर स्त्रीका पाणिग्रहण करके यज्ञानुष्ठान करे, तो उसे भी छोटे भाईकी भांति बारह दिनतक प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करके प्रायश्चित्त करना होगा; इससे अन्यथा प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ेगा; और परिवेत्ता अर्थात् छोटे भाईका जेठ भ्राताके प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर फिर दो परिग्रह करना होगा, इनके बिना उसकी शुद्धि नहीं होसकेगी; इससे वह श्राद्ध आदि कर्म्मोंसे पितरोंका उद्धार भी न कर सकेगा। परन्तु इन परिवेत्ता आदिकोंकी प्रथम विवाहिता स्त्रियोंको पाप नहीं लगेगा, क्यों कि स्त्रियोंको पुरुष कृत पापोंमें लिप्त नहीं होना पड़ता। अधिक क्या कहें यदि स्त्रियांसे कोई महापाप भी होजावे, तो अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले वस्तुओंके भोजनसे चातुर्मास व्रतका अनुष्ठान करनेसे ही वह पापरहित हो सकती हैं, धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने ऐसी ही विधि वर्णन की है। स्त्रियां यदि मन ही मन किसी पापाचरणके अनुष्ठानका सङ्कल्प करें, अथवा बिना जाने किसी पापाचारी पुरुषके सङ्ग व्यभिचारमें प्रवृत्त होवें, तो ऋतुकाल उपस्थित होनेसे वे भस्मसे मले हुए पात्रकी भांति शुद्ध होंगी। भोजन करनेके पात्र ब्राह्मण वा शूद्रोंके जूठे अथवा गौवोंके सूंघनेपर पञ्चगव्य, मट्टी, जल, भस्म, खटाई और अग्नि,—इन दश वस्तुओंसे शुद्ध होंगे, ब्राह्मणोंको चतुष्पाद धर्म्मके अनुष्ठान करनेकी विधि है, क्षत्रियोंको त्रिपाद, वैश्यको द्विपाद और शूद्रको केवल एक पाद मात्र धर्म्मके अनुष्ठानकी विधि कही गई है। प्रायश्चित्तके विषयको भी धर्म्मानुष्ठानके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य आदि वर्णोंके

लाघव और गौरवके सहित विचारना उचित है। तिर्य्यग् योनि अर्थात् पशु पक्षियोंके बध करने तथा नाना भांतिके वृक्ष आदिकोंके काटने पर जन—समाजमें अपने किये हुए कर्म्मको प्रकाशित करते हुए तीन बार वायु पान करके रहनेसे ही पुरुष पाप रहित होंगे। अगम्यागमन करनेसे शरीरमें भस्म लगाके भीगे हुए वस्त्रसे अपने सब शरीरको ढांके धुनीको भस्म रूपी शय्या पर शयन और शतरुद्री पाठ करते हुए छः महीना बितानेसे उस पापसे मुक्त होंगे। परन्तु दृष्टान्त भूत शास्त्रमें कहे हुए हेतु-पूरित वचनोंके साथ वेद विहित वाक्योंको ऐक्यता करके सम्पूर्ण पाप कर्म्मोंके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनी होगी, अर्थात् वेदमें यदि किसी स्थलमें प्रायश्चित्त आदिके विषयमें अस्पष्ट विधि हो, तो शास्त्रोंमें जिस स्थलमें उस विषयकी स्पष्ट विधि दीख पड़े; उसी युक्तिसे विचारके उस ही दृष्टान्तके अनुसार अस्पष्ट वेदविधिको व्याख्या करके व्यवस्था देनी चाहिये, ब्राह्मण यदि अज्ञानताके वशमें होकर कोई पापाचरण करे, तो वह राग द्वेष मान और अपमानसे रहित होके गायत्री मन्त्रका जप करे, पाप विशेषमें जितने दिनों तक व्रताचरण करना होगा, उतने दिनों तक प्रतिदिन अनावृत स्थलमें खड़ा रहे, रात्रिके समय कुशा पर शयन करे और दिनमें तीनबार तथा रात्रिके समयमें भी तीन बार तालाबमें गमन करके वस्त्र सहित स्नान करे, स्त्री, शूद्र और पतित पुरुषोंके सङ्ग वार्त्तालाप न करे,—इसी भांति व्रताचरण करनेसे समस्त पापोंसे मुक्त होगा। मनुष्य पाप वा पुण्य जो कुछ करते हैं परलोकमें गमन करने पर अग्नि, जल और वायु आदि महाभूतोंके अधिष्ठाता देवता लोग उनके किये हुए सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म्मोंके साक्षी रहते हैं; इससे परलोकमें मनुष्योंको अवश्य ही शुभाशुभ कर्म्मोंके फलको भोगना पड़ता है। परन्तु पुरुषोंके किये हुए सत् अथवा असत् कर्म्मोंमेंसे जब जिसकी अधिकता होती है, तब वह कर्म्म एक दूसरेको दबाके कर्त्ताको इस ही लोकमें फल देता है। जैसे सदा पापकर्म्मोंके अनुष्ठान करनेवाले पुरुषोंके पापकी अधिकता होकर शीघ्रही उसी पापका फल भोगना पड़ता है, वैसेही ज्ञानकी आलोचना, तपस्या और यज्ञानुष्ठानसे पुरुष पापरहित होके इस ही लोकमें शुभ कर्म्मोंके फलभागी होते हैं; इससे सदा पाप कर्म्मोंसे निवृत्त होके प्रतिदिन दान और शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करना उचित है; ऐसा करनेसे उस पुरुषको पाप-कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होना पड़ता। हे महाराज! जिन जिन पापोंको कथा वर्णित हुई हैं उनके अनुरूप ही प्रायश्चित्तकी विधि कही गई; अब महा पातकके अतिरिक्त भक्ष्य, अभक्ष्य, पात्र और अपात्र इत्यादि नाना प्रकारके विषयोंकी व्यवस्थाका वर्णन करता हूं, सुनो। यह जो ज्ञान और अज्ञान कृत पापोंको विधि कही गई है, वह बालक और अत्यन्त मूर्ख तथा पशु तुल्य अन्त्यजजातिके निमित्त नहीं है; उसे श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न हुए बुद्धिमान वा किञ्चित ज्ञानवान पुरुषोंके विषयमें ही समझना चाहिये। इसी भांति यदि बुद्धिमान पुरुष किसी पापकर्म्म करनेकी इच्छा करके उसके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं, तो वे अधिक पापी होंगे, और यदि अज्ञानताके कारण दैवी संयोगसे कदाचित पाप कर्म्म होजावे, तो वह उसकी लघुता समझी जाती है, इससे उसका प्रायश्चित्त भी थोड़ा होगा। जैसा पापाचरण होगा, उसके अनुरूप ही प्रायश्चित्त करनेसे वह पाप नष्ट होता है, परन्तु शास्त्रमें कही हुई ये सम्पूर्ण विधि नास्तिक और अश्रद्धावान पुरुषोंके सम्बन्धमें नहीं कही गई हैं; इन्हें श्रद्धावान और आस्तिकोंके विषयमें ही जानना चाहिये; क्योंकि शास्त्रमें दम्भ और द्वेषयुक्त पुरुषोंके विष-

यमें कोई भी विधि नहीं दीख पड़ती; कारण शास्त्रमें शिष्टाचार ही धर्म्म कहके वर्णित हुआ है; इससे इस लोक और परलोकमें कल्याण प्राप्तिकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषोंको इन्हीं शास्त्रोक्त विधिके अनुसार चलना उचित है। महाराज! मैंने तुमसे पहिलेही कहा है, कि चत्रियधर्म्म अथवा निज प्राण रक्षाके निमित्त महादुष्ट-पुरुषोंका बध करनेसे मारनेवालेको कदापि पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता, इस ही कारण तुम भी दुष्टात्मा कौरवोंका बध करनेसे पापी नहीं हुए। यह सब जानके भी यदि तुम्हारे चित्तकी ग्लानि नहीं दूर होती है, तो शास्त्रविधिके अनुसार प्रायश्चित्त करो; परन्तु जैसे अनार्य्य लोग मनके दुःखको न सहके आत्मघाती होते हैं, वैसे आचरण करनेमें तुम्हें कदापि प्रवृत्त होना उचित नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! धर्म्मराज युधिष्ठिर तपस्वी वेदव्यास मुनिके मुखसे इन सम्पूर्ण उपदेशयुक्त वचनोंको सुनके क्षणभर चिन्ता करके उनसे कहने लगे।

३५ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि पितामह! द्विजातियोंके निमित्त कौनसे अभच्य और कौनसे भच्य हैं? दोनोंमें कौनसा दान बड़ा है। और उसके पात्र तथा अपात्र कैसे हैं? उसे मेरे समीप प्रकाशित करके कहिये।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, महाराज! इस विषयमें प्रजापति मनुने सिद्ध तथा ऋषियोंसे एक प्राचीन इतिहास कहा था, उसे सुनो। आदिकालमें किसी समय व्रत करनेवाले ऋषियोंने इकट्ठे होकर प्रजापति विभु भगवान मनुके समीप गमन करके धर्म्म विषयमें कई एक प्रश्न किये, उन्होंने कहा, हे प्रजापति! हम लोग किस प्रकार पात्रको अन्नदान करें? पवित्रता किस प्रकार होसकती है, दान, अध्ययन, तपस्या कार्य्य और अकार्य्य क्या है? इन विषयोंको आप हम लोगोंके समीप वर्णन कीजिये।

ऋषियोंके ऐसे वचन सुनके भगवान स्वयम्भू मनु बोले, हे ऋषि लोगो! तुम लोग संक्षेप और विस्तारके सहित यथारीतिसे धर्म्मकी कथा सुनो। जिन जिन स्थानोंमें पुण्यशीला नदियां बहती हैं और शास्त्रोंमें जिन देशोंके सम्बन्धमें कोई दोष नहीं वर्णित हुए हैं, बहुतसे साधु पुरुष जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, उन स्थानोंमें जप, होम, उपवास, आत्मज्ञानका विचार इत्यादि तपस्याके अनुष्ठानसेही लोगोंको पवित्रता होसकती है। ऊपर कहे हुए स्थानोंमें जप होम आदि शुभ कर्म्मोंके अनुष्ठानसे जिस प्रकार मनुष्योंकी पवित्रताका विषय वर्णित हुआ है, वैसे ही कई एक पापोंके फलकी विधिको पृथक् रूपसे वर्णन करनेको सामान्यता समझके केवल सुवर्ण, आज्य प्राशन, स्वर्ण आदि पञ्च रत्नोंसे युक्त जलमें स्नान, देव स्थानोंके दर्शनको यात्रा तथा ब्रह्मगिरि आदि कई एक लोक पावन पर्व्वतोंके दर्शन इत्यादि कई एक वस्तुको ही पण्डितोंने सामान्य रूपसे अशुभ कर्म्मोंको नाश करनेवाली प्रायश्चित्तकी विधि कहके वर्णनकी है, उस विधिके अनुसार कार्य्य करनेसे पुरुष शीघ्र ही पाप कर्म्मोंसे मुक्त हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। बहुत दिनोतक जीवित रहनेकी आशा रहनेपर किसीको भी अवज्ञा करनी उचित नहीं है; यदि अज्ञानताके कारण ऐसा कार्य्य होजावे, तो उस दोषको दूर करनेके वास्ते तीन बार तप्तकृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करनी चाहिये। बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण न करना, दान, अध्ययन, तपस्या, अहिंसा, सत्य व्यवहार, क्षमा और देवताओंकी पूजा इत्यादि कई एकको धर्म्मका लक्षण जानना चाहिये। परन्तु इस प्रकारका

धर्म्म भी देशकालके अनुसार कभी कभी अधर्म्मरूपसे गिना जाता है और प्रतिग्रह, मिथ्या व्यवहार और हिंसा आदि अधर्म्मके कार्य्य भी अवस्थाविशेष अर्थात् प्राण संशय आदि स्थलोंमें धर्म्मरूपसे माने जाते हैं।

हे कुन्तीनन्दन! बुद्धिमान पुरुषोंके सम्बन्धमें धर्म्म और अधर्म्म यही दो प्रकारसे कहे गये हैं। वह धर्म्माधर्म्म फिर लौकिक और वैदिक मतके अनुसार शुभाशुभ और प्रवृत्ति निवृत्ति भेदसे दो दो अंशोंमें विभक्त है, उसमें प्रवृत्ति वैदिक और शुभाशुभ लौकिक है। प्रवृत्ति अर्थात् वेदविहित ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके अनुष्ठान,—इनके फल बारबार संसारमें जन्म और मृत्यु हैं और निवृत्ति मार्गका फल तत्वज्ञान तथा ब्रह्म प्राप्ति है। इसी भांतिसे लौकिकमें भी परोपकार आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे जनसमाजके बीच प्रशंसा और अर्थलाभ आदि शुभ फल मिलता है, और असत कार्य्य अर्थात् जनसमाजके बीच अत्याचार करनेसे जगत्में निन्दा होती और राजदण्ड आदि अशुभ फल मिलते हैं; इससे वैदिक मार्गकी भांति लौकिकमें भी शुभाशुभ कर्म्मोंके फलके अनुसार धर्म्माधर्म्म जानना चाहिये। दैव इच्छा, शास्त्रमें कहे हुए कर्म्म, निज प्राणरक्षा, माता पिता, स्वामी आदि तथा पालन करनेवाला,—इनके अनुरोधसे अन्याय कार्य्य करनेसे भी शुभ फल मिलता है। परन्तु इस पृथ्वीके बीच जो श्येन यज्ञ आदि कर्म्मोंके फलकी भांति शीघ्र ही फलित होते हैं; अथवा जो उत्तर कालमें फलित होसकेगा, कहके सन्देहास्पद होगा, उसे केवल लोकानुरोधसे किसी मनुष्यको लक्ष्य करके वैसा अनिष्ट कार्य्य करनेसे कर्त्ताको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। यदि कोई पुरुष क्रोध वा मोहके वशमें होके निज मनकी सन्तुष्टि वा असन्तुष्टि करनेवाले कार्य्यको करे, तो वह शास्त्रमें कहे हुए प्रमाण और युक्तिके अनुसार शरीरको सुखानेवाले उपवास आदि प्रायश्चित्त करके शुद्ध होगा; अथवा हविष्यान्न भोजन, आत्माको पवित्र करनेवाले मन्त्रोंके जप और तीर्थाटन करनेसे भी उस पापसे मुक्त होसकेगा। राजा यदि अज्ञान और क्रोधके वशमें होकर दण्ड चलावे, तो एकरात्रि और पुरोहित त्यागनेपर तीन रात्रि उपवास करके पवित्र होसकता है। कोई पुरुष यदि पुत्रादिकी मृत्युसे शोकित होके शस्त्र आदिसे आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होके भी कृतकार्य्य न होसके, तो वह तीन दिन उपवास व्रत करनेसे आत्महत्या-प्रवृत्ति दोषसे मुक्त होगा, शास्त्रमें ऐसी ही विधि वर्णित है। जो लोग सब भांतिसे ब्राह्मणत्वादि जातिधर्म्म, गृहस्थी आदि आश्रमोंके धर्म्म, देशाचार और कुलाचारको त्यागते हैं, उन लोगोंको प्रायश्चित्त करनेका अधिकार नहीं है।

हे ऋषिलोगो! मैंने जो सब व्यवस्था कही है, उसे वैसे ही समझो; परन्तु धर्म्मविषयमें कोई संशय उत्पन्न होनेपर दश जन वेदशास्त्रोंके जाननेवाले अथवा धर्म्मशास्त्र जाननेवाले तीन पण्डित जैसी व्यवस्था दें, उसे ही धर्म्म कहके ग्रहण करना होगा। बैल, मिट्टी, विष, मलमूत्रके कीड़े, चीटी आदि द्विजातियोंके निमित्त अभक्ष्य हैं। शल्करहित मछरी और कछुएके अतिरिक्त मेडक आदि चार पांववाले जलजन्तुओंका भक्षण भी निषेध है। जलमें तैरनेमें समर्थ बगुले, गरुड़, भाष, बाज, कौवे, चकवे, मद्गू, गिद्ध हंस और उल्लू आदि पक्षी भक्षणीय नहीं हैं; इनके अतिरिक्त दांतवाले, मांसभक्षी और चार पांववाले पक्षी भी द्विजातियोंके अभक्ष्य जानो। जिनके दोनों ओर दांत हैं और चार दांतवाले पक्षियोंका मांस भी नहीं खाना चाहिये। मानुषी, हरिनी, उटनी, भेड़ी और गदही आदि पशुओंका दूध ब्राह्मणोंको नहीं पीना चाहिये। नवप्रसूता गौका

दूध भी दशदिनके बिना बीते पीना उचित नहीं है। नीलेपरका, नवप्रसूता स्त्रीका बनाया हुआ और दश दिनके बिना बीते नवप्रसूता गौके दूधमेंका बना हुआ पायस आदि भोजन करना उचित नहीं है। राजाके अन्नखानेसे तेज, शूद्रके घर भोजन करनेसे ब्रह्मवर्चस अर्थात् वेदाध्ययनकी प्रतिभा, स्वर्णकार और अवीरा स्त्रीके घर भोजन करनेसे आयु क्षीण होती है। वार्द्धुषिक अर्थात् व्याज ग्रहण करनेवालोंका अन्न मलरूपी और गणिकाके अन्न खानेसे वीर्य्यह्रास होता है। जो निजपत्नी आदि दुश्चरित्रवाली स्त्रियोंके उपपतियोंको देखके क्षमा करते हैं और जो पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत हैं, उनका अन्न भोजन निषेध है। यज्ञके निमित्त पशु वध होते हो और होम आदिके बिना समाप्त हुए यज्ञ करनेवाले पुरुषका अन्न भोजन न करे। सोम रस बेचनेवाले, सूम, तक्ष, व्यभिचारिणी, चिकित्सा करनेवाले और नगर रक्षकका अन्न भी भक्षणीय नहीं है। इसी भांति परिवित्त, स्तुति करनेवाले और जुआरी पुरुषोंका अन्न भी नहीं ग्रहण करना चाहिये। गणान्न और ग्राम-दूषित पुरुषका भी अन्न ग्रहण करना उचित नहीं है। पर्य्युषित और बायें हाथसे ग्रहण किये हुए भोजनको खाना नहीं चाहिये जो निज आत्मीय पुरुषोंको न देकर अपने ही वास्ते खाने योग्य वस्तुवोंको संग्रह करता है, उसका तथा सुरासे स्पर्श हुआ अन्न और जूठा भोजन नहीं करना चाहिये। पिष्टक, ऊखके रस और शाक बिगड़नेसे त्यागके योग्य हैं। सत्तु, भ्रष्टयव और दहीसे युक्त सत्तू भी बहुत समय बीतने पर खाना उचित नहीं है। दूध युक्त पायस, कृशरान्न अर्थात् तिलयुक्त अन्न, पिष्टक और मांस देवताओंके निमित्त तैयार हुए हों, तो ग्रहण करना उचित नहीं है। हे महाराज! गृहमेधी ब्राह्मण आदि जो कुछ अपेय और अभक्ष्य वस्तु हैं, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया, परन्तु देवता, ऋषि, पितर, अतिथि और प्रात्यहिक गृह देवताकी पूजा अर्चना करके अनिषिद्ध वस्तुवोंको भोजन करना उचित है। इसी भांति गृहस्थ मनुष्य प्रव्राजित चारों आश्रमोंकी भांति गृहमें ही पापरहित होके रह सकते हैं, अर्थात् स्त्रीके सहित ऊपर कहे हुए सदाचारसे युक्त होकर गृहस्थ पुरुष गृहस्थाश्रममें ही धर्म्म लाभ करनेमें समर्थ होंगे। धर्म्मात्मा पुरुषको यशकी अभिलाषा वा भयके कारण दान करना नहीं चाहिये। और नाचने गानेके व्यवसायी, भांड़, मतवाले उन्मत्त, चोर निन्दक, बहिरे, अङ्गहीन, बदसूरत, बौने, दुर्ज्जन, नीचकुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुष, उपकारी और जो लोग ब्रह्मचर्य्य आदि व्रतोंसे हीन हैं, उन्हें दान देना उचित नहीं है। आतियके अतिरिक्त वेदज्ञानसे रहित ब्राह्मणको भी दान देना निषेध है, क्योंकि वैसा दान और प्रतिग्रह ग्रहण करना अन्याय कार्य्य कहा गया है, इससे वैसे दान देने और लेनेवाले दोनो ही अनर्थमें फंसते हैं। जैसे खदिर वा शिला ग्रहण करके समुद्र तरनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके सब उद्यम निष्फल होते और उन्हें अवश्य ही जलमें डूबना पड़ता है, वैसे ही दाता और ग्रहीता दोनों ही पापरूपी समुद्रमें डूबते हैं। भीगे काष्टकी अग्निकी भांति तपस्या स्वाध्याय और सच्चरित्रतासे हीन ब्राह्मणको तेजरहित जानना चाहिये; इससे ऐसे ब्राह्मणको दानदेना निष्फल है। जैसे कपाल पात्रमें स्थित जल और कुत्तेके चमड़ेमें रखनेसे दूध आधार दोषसे अपवित्र होता है, वैसेही सदाचार रहित ब्राह्मणोंके निकट वेदकी भी प्रतिभा नहीं प्राप्त होती। मन्त्रहीन, व्रत रहित, शास्त्र न जाननेवाले और असूयायुक्त लोगोंको केवल दयाके वशमें होकर दान दिया जा सकता है, अर्थात् दीन, भूखे, आतुर, मन्त्रहीन और व्रतहीन आदि पुरुषोंको दान देनेके समय "यह शिष्टा-

चार या धर्म है ?,, ऐसा विचारके दान करना उचित नहीं है; उन्हें शास्त्रादिसे पीड़ित न करके केवल दया युक्त होके दान दिया जा सकता है; वेदज्ञानसे रहित ब्राह्मणको दान देनेसे वह निष्फल हो जाता है,-ऐसा ही शास्त्रमें कहा गया है; विशेष करके अपात्रको दान देनेसे दान करनेवालेको पापमें फंसना होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। काठके बने हुए हाथी, चमड़ेसे बने हुए मृग और वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मण ये तीनों नाम मात्रके ही हैं; इनसे कोई भी कार्य्य पूर्ण नहीं हो सकता। जैसे नपुंसक पुरुषोंसे स्त्रियोंके और वन्ध्या स्त्रीसे पुरुषोंके कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते; उसी भांति वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मणोंसे भी मनुष्योंके कार्य्य नहीं पूर्ण होते। और पङ्खरहित पक्षी, शस्यहीन धान्य, जलरहित कूएं और मन्त्रज्ञानसे रहित ब्राह्मणोंको एक समान ही जानना चाहिये। अधिक क्या कहा जावे, भस्ममें आहुति देनेकी भांति मूर्ख ब्राह्मणको दान देना सब भांति निष्फल होता है। मूर्ख शत्रुस्वरूप है, क्योंकि वह अर्थापहारी और देवता पितरोंके उद्देश्यसे दिये हुए हव्य कव्यका नाशक है, इससे मूर्खको इस लोक और परलोकमें कहीं भी कल्याणकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! तुमने जो कुछ प्रश्न किये, मैंने संक्षेपसे उन सब प्रश्नोंका उत्तर यथा रीतिसे वर्णन किया है; यह महत् वृत्तान्त आर्योंको अवश्य सुनना चाहिये।

३६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे ऋषि सत्तम भगवन्! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके सब धर्म विशेष करके राजधर्म और आपत्काल उपस्थित होने पर मनुष्योंको किस प्रकारकी नीति अवलम्बन करना उचित है और धर्मयुक्त मार्गसे गमन करते हुए किस प्रकार पृथ्वी जय कर सकूंगा,— इस सम्पूर्ण वृत्तान्तको विस्तार पूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। भक्ष्याभक्ष्य और उपवास आदि महत् कौतूहलसे युक्त आपकी कही हुई प्रायश्चित्तकी कथा मेरे चित्तको अत्यन्त ही आनन्दित कर रही है। परन्तु राज्य पालन और धर्म आचरण इन दोनोंका आपसमें सदा विरुद्ध भाव है; इससे एक ही पुरुषके द्वारा ये दोनों आपसमें विरुद्ध भावोंसे युक्त कार्य्य कैसे अनुष्ठित हो सकते हैं? इस हीकी चिन्ता करके मेरा चित्त बार बार मोहित होता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! वेदवादियोंमें अग्रणी श्रीवेदव्यास मुनि धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचनोंको सुनके सम्पूर्ण ज्ञान तत्त्वके जाननेवाले प्राचीन ऋषि नारद मुनिकी ओर देखकर युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! यदि तुम्हें भली भांति सम्पूर्ण धर्म तत्त्व जाननेकी इच्छा हुई हो, तो तुम कुरुपितामह बूढ़े भीष्मके निकट गमन करो। धर्म रहस्यके विषयमें तुम्हारे चित्तमें जो कुछ सन्देह है, सब धर्मोंके जाननेवाले गङ्गानन्दन भीष्म तुम्हारी शङ्का दूर करनेमें समर्थ होंगे। महाराज! स्वर्ग लोकमें जो त्रिपथ गामिनी होके बहरही हैं, उसही गङ्गादेवीसे जिसकी उत्पत्ति हुई है उस गङ्गानन्दन महात्मा भीष्मने इन्द्र आदि देवताओं और बृहस्पति आदि देवर्षियोंका प्रत्यक्ष दर्शन कर अनेक भांतिसे उनकी पूजा अर्चा करके सब राजनीति विद्या सीखी थी। दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य्य और देवतोंके गुरु बृहस्पति जिन सर्व शास्त्र और धर्मतत्त्वोंको जानते हैं, कौरवोंमें श्रेष्ठ भीष्मने उन दोनों महात्माओंसे वह सब विद्या प्राप्त की है। विशेष करके उस महाबाहु भीष्मने व्रत करके भृगुकुलनन्दन परशुराम, शुक्राचार्य्य, च्यवन और महात्मा वसि-

गुके निकट साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंको पढ़ा था। पहिले उन्होंने अध्यात्म विद्याके सारतत्त्वको जाननेवाले ब्रह्माके जेठे पुत्र महातेजस्वी सनत्कुमारके समीप सब अध्यात्मविद्या सीखी थी और मार्कण्डेय मुनिके मुखसे समस्त यतिधर्म्म भी श्रवण किया था। इसके अतिरिक्त उस पुरुषश्रेष्ठने इन्द्र और परशुरामजीसे सब अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या सीखी थी। जिन्होंने मनुष्य लोकमें जन्म लेकर भी इच्छामरण प्राप्त किया है; और अपत्यहीन होनेपर भी जिसके पुण्यका प्रभाव सब लोकोंमें विख्यात हुआ है, अधिक क्या कहा जावे, पवित्रात्मा ऋषि लोग जिसके निकट सभासद होकर विराजमान रहते थे, और ज्ञान तथा जानने योग्य वस्तुओंमें जिसे कुछ भी अविदित नहीं है, वही सूक्ष्म धर्म्म अर्थके तत्वको जाननेवाले धर्म्मज्ञान विशारद भीष्म तुम्हें धर्म्म उपदेश करेंगे; परन्तु उस महात्माके प्राणत्याग होनेके पहिले ही तुम उनके समीप गमन करो।

इतनी कथा सुनके महाबुद्धिमान दीर्घदर्शी राजा युधिष्ठिर ज्ञानियोंमें अग्रणी सत्यवती-पुत्र भगवान वेदव्यास मुनिसे बोले, हे महर्षि! मैंने रोएंको खड़े करनेवाले अत्यन्त बृहत् स्वजन-हत्या करके सब लोगोंके समीप पृथ्वीनाशक तथा अपराधी कहके गिना गया हूं, विशेष करके भीष्म पितामह रणभूमिमें सरल भावसे युद्ध कर रहे थे; तौभी मैंने कपट व्यवहारके सहित उनका बध कराया है; इससे अब मैं क्या कहके उनके समीप जाके धर्म्मविषयमें प्रश्न करनेमें समर्थ हूंगा?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजाओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनके यदुकुल श्रेष्ठ महाबुद्धिमान श्रीकृष्णचन्द्र चारों वर्णको प्रजाके हितकी अभिलाषा करके बोले, महाराज! बीते हुए शोकके विषयमें आपको अब बारबार अत्यन्त शोक प्रकाश करना उचित नहीं है। भगवान वेदव्यास मुनिने जो कुछ वचन कहे, उसके अनुष्ठानमें यत्नवान होइये। जैसे ग्रीष्मकालके अन्तमें जल चाहनेवाले प्राणी जलके निमित्त बादलोंकी उपासना करते हैं, वैसे ही आपके ये महाबलवान भाई और ब्राह्मणलोग आपकी उपासना कर रहे हैं, यह देखिये, युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजा और कुरु-जाङ्गलवासी राष्ट्रकी चारों बर्णकी सभामें एकत्रित हैं। इससे आप इन लोगों महात्मा ब्राह्मणों, हम सब कोई सुहृद मित्रों, द्रौपदीके अनुरोध और महातेजस्वी वेदव्यास मुनिकी आज्ञानुसार इस प्रियकार्य्यका अनुष्ठान कीजिये, हे शत्रुनाशन! आप यदि भीष्म पितामहके निकट उपदेश ग्रहण करेंगे, तो जगत्का कल्याण होगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषसिंह महाबुद्धिमान राजीवलोचन युधिष्ठिर श्रीकृष्णके वचनको सुनके सबके हितकी इच्छा करके उठे, उन्होंने खुद श्रीकृष्ण, अर्ज्जुन महर्षि वेदव्यास और देवस्थान आदि ऋषियोंके विनीत वचनोंसे प्रबोधित होकर धीरज धरके अपना मानसिक दुःख सन्ताप परित्याग किया। पाण्डुपुत्र महायशस्वी राजा युधिष्ठिर वेदवाक्य तथा वेदोंके अर्थ विचारवाले ग्रन्थ तथा मीमांसा और नीति-शास्त्रके जाननेवाले थे; इससे उन्होंने वेद-शास्त्रके सब वचनोंको निश्चय करके अपने चित्तको शान्त किया; और नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति ऋषियों और भाइयोंसे घिरके अन्धराज धृतराष्ट्रको आगे करके हस्तिनापुर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। धर्म्म जाननेवाले कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिरने राज नगरीमें प्रवेश करनेकी इच्छा करके पहिले देवता और सहस्रों ब्राह्मणोंकी पूजा की। उस समय आज्ञा पाते ही उस ही स्थलमें शुभ लक्षणोंसे युक्त पाण्डुर वर्ण सोलह बैल जुते हुए उत्तम २ कम्बल और अजिनयुक्त एक सफेद रथ वहां

लाया गया। अनन्तर पवित्र वेदमन्त्रोंसे वह रथ पूजित हुआ। तब राजा युधिष्ठिर इस प्रकार उस रथपर चढ़े, जैसे भगवान चन्द्रमा अपने अमृतमय रथपर चढ़ते हैं। रथपर चढ़नेके समय बन्दीजन चारों ओरसे राजा युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे। महापराक्रमी भीमसेनने उस रथके सारथी होके घोड़ोंकी बागडोर ग्रहणकी और अर्जुन मणि रत्नोंसे भूषित श्वेतछत्र ग्रहण करके राजा युधिष्ठिरके पीछे खड़े हुए।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! उस रथके ऊपर मोतियोंकी माला शोभित जब उस श्वेतछत्रको ग्रहण करके महात्मा अर्जुनने धर्म्मराज युधिष्ठिरके सिरपर धारण किया, तब उस समय बोध हुआ, मानो आकाश मण्डलमें तारापुञ्जसे युक्त एक श्वेत मेघ उदित हुआ है, अनन्तर माद्रीपुत्र महावीर नकुल सहदेव चन्द्रकिरणके समान प्रकाशमान अनेक भांतिको मणिरत्नोंसे भूषित दो सफेद चवंर ग्रहण करके दोनों ओर खड़े होकर डुलाने लगे। जिस समय उन पांचो भाइयोंने अनेक भांतिके आभूषणोंसे भूषित होकर रथपर चढ़के हस्तिनापुरकी ओर गमन किया, उस समय वह रथ सब प्राणियोंकी पञ्चभुत मय देहकी भांति बोध होने लगा। अनन्तर युयुत्सु मनके समान वेगगामी घोड़ोंके रथपर चढ़कर महाराज युधिष्ठिरके अनुगामी हुए; और श्रीकृष्ण सात्यकिके सहित शैव्य और सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त सुवर्णमय सफेद रथपर चढ़के कौरवोंके पीछे पीछे गमन करने लगे। अन्धे धृतराष्ट्र गान्धारीके सहित पालकीमें चढ़के धर्म्मराज युधिष्ठिरके आगे आगे गमन करने लगे। तिसके पीछे कुन्ती द्रौपदी और अन्य कौरवोंकी स्त्रियां नाना भांतिकी सवारियोंमें बैठके विदुरके सङ्ग चलीं।

अनन्तर भली भांति वस्त्र और भूषणोंसे भूषित रथी, गजपति, घुड़सवार आदि सेना उनके पीछे पीछे गमन करने लगी। उस समय वैतालिक और सूत, मागध, सुललित भाषामें स्तुति पाठ करते हुए राजाओंके संग हस्तिनापुरकी ओर गमन करने लगे। महाराज! राजा युधिष्ठिर इस ही भांति जब चतुरंगिनी सेना और स्वजनोंमें घिरकर गमन करने लगे, उस समय सब मार्गमें बहुत भीड़ इकट्ठी होगई और वे सब लोग आनन्दित और हर्षित होके आपसमें वार्त्तालाप करते थे; उससे उस समय में महाकोलाहल सुनाई देता था। पृथापुत्र राजा युधिष्ठिर नगरमें आवेंगे, इस समाचारको सुनके नगरवासियोंने पहिलेसे ही नगरको विधिपूर्व्वक सज्जित कर रखा था। उस समय नगरके बीच मार्गोंमें फूलोंसे सब भूमि इस प्रकार सजाई गई थो, कि सब मार्ग पुष्पमय बोध होते थे; उस समय सब राजमार्ग धूपदीपसे युक्त और ध्वजा पताकासे परिपूरित थे; राजनगरीमें रहनेवाले कर्म्मचारियोंने फूल माला तथा प्रियंग आदि सुगन्धित वस्तुओंसे गृहोंको सज्जित कर रखा था। नगरके दरवाजे तथा समस्त पुरवासियोंके द्वारपर जलयुक्त धातुके नवीन कलश दीख पड़ते थे; और जगह जगह सुन्दर अङ्गोंसे युक्त महासुन्दरी मनको हरनेवाली कन्यायें खड़ी की गई थीं। पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने सुहृद मित्रोंके सहित पुरवासियोंके मङ्गलजनक वचन सुनते हुए ऊपर कहे हुए शोभासे शोभित और मङ्गल लक्षणोंसे युक्त नगरके भीतर प्रवेश किया।

३७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पृथापुत्रोंको नगरमें प्रवेश करते सुनकर अनगिनत पुरवासी उनके दर्शनको लालसासे इकट्ठे हुए। उस समय राजमार्ग और चौतरे इस प्रकार शोभित हुए

थे, जैसे चन्द्रमाको देखके समुद्र उमड़ता है। राज मार्गके दोनों ओर नाना भांतिके अलङ्कारोंसे शोभित बड़ी२ अटारियां स्त्रियोंके समूहसे परिपूर्ण होकर इस प्रकार बोध होती थीं, मानो उनके भारसे हिल रही हैं। वे सब स्त्रियां लज्जासे युक्त तथा मृदुस्वरसे द्रौपदीको कहती थीं,—हे पाञ्चाली! हे कल्याणि! महर्षियोंकी उपासना करनेवाली गौतमीकी भांति तुम सदा सर्व्वदा पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंकी उपासना करती हो, तुम्हारे व्रताचरण आदि सब कर्म्म अमोघ हैं; इससे तुम धन्य हो। ऐसा वचन कहके युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवकी भी प्रशंसा करने लगीं। उन लोगोंके उस प्रीति और प्रेमसे पूर्ण प्रशंसासूचक आपसकी वार्त्तालापसे वे सब अटारियां परिपूरित हो रही थीं। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने राजमार्गको अतिक्रम करके अनेक अलङ्कारोंसे भूषित राजपुरीमें प्रवेश किया। उस समय सब मनुष्य तथा पुरवासी लोग उनके सम्मुख उपस्थित होकर कहने लगे, हे शत्रुनाशन! हे राजेन्द्र! भाग्यसे ही आपने विजय लाभ करके फिर राज्य प्राप्त किया है; यह सब आपके धर्म्मप्रभावसे ही हुआ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, इस समय आप हम लोगोंके राजा होकर देवराज इन्द्रकी भांति प्रजाको पालन करते हुए एक सौ वर्ष पर्य्यन्त राज्य भोग कीजिये, इसी प्रकार कानोंको सुख देनेवाले वचन सब कोई कहने लगे। श्रीमान् धर्म्मराज युधिष्ठिर राजनगरीके बीच प्रजाओंके मङ्गलमय वचनोंसे पूजित होके और ब्राह्मणोंके आशीर्व्वादको सुनते तथा पुरवासी और राजसेवकोंके जय शब्दसे सत्कृत होते हुए राजभवनकी बाहिरी कक्षामें प्रवेश करनेके अनन्तर रथसे उतरे और भीतर प्रवेश करके अनेक भांतिकी मणि रत्न और सुगन्धित पुष्पमालासे शोभित मन्दिरमें प्रतिष्ठित देवमूर्त्तियोंके दर्शन करके धूप दीप, फलपुष्प नैवेद्यसे उनकी पूजा की। तिसके अनन्तर मांगलिक वस्तुओंको हाथमें ग्रहण किये हुए कितने ही महात्मा ब्राह्मणोंका दर्शन किया। उस समय महायशस्वी राजा युधिष्ठिर आशीर्व्वाद देनेवाले ब्राह्मणोंके बीचमें घिरके इस प्रकार शोभित हुए, जैसे तारापुञ्जके बीचमें चन्द्रमा शोभित होता है अनन्तर उन्होंने गुरु धौम्य और जेठे पिता धृतराष्ट्रको सत्कृत कर ब्राह्मणोंके बीचमें गमन करके उन लोगोंसे कहने लगे, कि आप लोगोंकी क्या इच्छा है, आपकी क्या अभिलाषा है? इसी भांति प्रत्येक ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते हुए बहुत सा सुवर्ण, रत्न, वस्तु, मनोहर मोदक और गऊ दान कर हर एक ब्राह्मणको सन्तुष्ट करके उनकी पूजा की। उस समय सम्पूर्ण दर्शक तथा पुरवासी लोग उन वेदज्ञ ब्राह्मणोंके पदपदाक्षरोंसे युक्त मनोहर आशीर्व्वाद वचनोंका एकबारगी हंसनिनादकी भांति सुनने लगे। महाराज! सुहृदमित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाले उन पुण्यात्मा ब्राह्मणोंका आशीर्व्वाद शब्द एकबारगी इस प्रकार समुत्थित होकर ऐसा बोध हुआ, कि उस शब्दसे आकाशमण्डल गूंज उठा। उस समय अनेक पुरुषोंके जयजयकार, शङ्ख और नगाड़ोंके शब्द, मिलके तुमुल शब्द सुनाई देने लगा। कुछ समयके अनन्तर जब पुरवासी और ब्राह्मणोंका शब्द बन्द होकर सन्नाटा छागया, तब उस समय दुर्य्योधनका मित्र चार्व्वाक राक्षस मायाप्रभावसे रुद्राक्षकी माला, शिखा और त्रिदण्ड धारण कर भिक्षुक ब्राह्मणका वेष बनाके उस स्थानमें आके उपस्थित हुआ। वह दुष्ट महात्मा पाण्डवोंके अनिष्टको अभिलाषा करके लज्जा और भयरहित होकर राजाओंकी मण्डली तथा ब्राह्मणोंके बीचमें गमन करके किसीसे भी कुछ वार्त्तालाप न करके एकबारगी राजा युधिष्ठिरके समीप आके उनसे बोला,

महाराज! ये सब ब्राह्मण लोग जो मेरे ऊपर धिक्कार शब्दका प्रयोग कर रहे हैं, वह केवल आरोपित वचन मात्र है; प्रत्युत ये आपको कह रहे हैं, कि "तुम ज्ञाति हत्या करनेवाले, दुष्ट राजा हो, इससे तुम्हें धिक्कार है!" हे कुन्तीनन्दन! स्वजनोंका वध करके तुम्हें जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसका कुछ भी प्रयोजन नहीं है; विशेष करके गुरुहत्या करने पर जीनेसे मरना ही उत्तम है। ब्राह्मण लोग उस दुष्ट राक्षसके वचनको सुनके अत्यन्त दुखित होके चिल्लाने लगे, उन ब्राह्मणोंने और स्वयं धर्म्मराजने भी लज्जासे अत्यन्त व्याकुल होकर कुछ समय तक शिर नीचा करके मौनावलम्बन किया। अनन्तर युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मण लोगो! मैं विनयपूर्व्वक आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूं, कि आप लोग मेरे ऊपर प्रसन्न होइये; मैं स्वयं सुख भोगके वास्ते राज्यग्रहणकी अभिलाषा नहीं करता हूं; परन्तु चिरकालसे दुःखित अपने इन भाइयोंके वास्ते राज्यग्रहण करता हूं; इससे आप लोग अब मेरे विषयमें धिक्कार प्रदान न कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ब्राह्मण लोग राजा युधिष्ठिरकी कातरता युक्त वचन सुनके बोले, महाराज! हम लोगोंने ये सब वचन नहीं कहे हैं, वरन अब भी कहते हैं, कि आपकी श्री बढ़े। उन वेद जाननेवाले तपस्वी महात्मा ब्राह्मणोंने धर्म्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहके उस कपट वेषवाले ब्राह्मणके विषयको जाननेकी कोशिश की, और और ज्ञान नेत्रसे क्षणमात्रमें सब जान लिया; अर्थात् उसे चार्व्वाक राक्षस समझा। तब वे लोग युधिष्ठिरको सम्बोधन करके बोले, महाराज! हम लोगोंने कोई विरुद्ध वचन नहीं कहा, इससे आपका मानसिक शोक और दुःख दूर होवे, आप भाइयोंके सहित बहुत दिनों तक जीवित रहके परम सुखके सहित राज्य भोग कीजिये। इस दुष्टात्माको हमने ज्ञानसे पहचान लिया है, यह दुर्य्योधनका मित्र चार्व्वाक नामका राक्षस है; दुर्य्योधनके हितकी अभिलाषासे परिव्राजक वेषसे आपके निकट आके तुम्हारे अनिष्टकी इच्छासे ऐसा वचन कह रहा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! उन सब पवित्रात्मा ब्राह्मणोंने राजा युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहते हुए अत्यन्त क्रोधित होकर उस पापाचारी राक्षसकी अनेक भांतिसे निन्दा करके हुङ्कारसे ही उसे भस्म कर दिया। तब चार्व्वाक राक्षस उस समय ब्राह्मणोंके तेज प्रभावसे इस प्रकार भस्म होगया, जैसे इन्द्रके वज्र-प्रभावसे नवीन अंकुरोंसे युक्त वृक्ष भस्म होजाते हैं। जब ब्राह्मणोंने इस प्रकार राक्षसका नाश किया, तब धर्म्मराज युधिष्ठिरने सुहृद मित्रोंके सहित अत्यन्त आनन्दित होके उन महात्मा ब्राह्मणोंकी विधि पूर्व्वक पूजाकी और ब्राह्मणोंने भी राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके अपने अपने स्थानोंपर गमन किया।

३८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सर्व्वदर्शी देवकीनन्दन जनार्द्दन कृष्ण भाइयोंके सहित बैठे हुए धर्म्मराजसे बोले, महाराज! इस पृथ्वीमण्डलके बीच ब्राह्मणोंको ही सब भांतिसे पूजा करनी हम लोगोंको उचित है; क्यों कि ब्राह्मणोंके समीप सदा सर्व्वदा विनीत भावसे रहनेसे वे लोग प्रसन्न होके विनयी भक्तोंकी मङ्गलकामना सिद्ध करते हैं। जो दुष्टात्मा अभिमानसे मतवाले होके ब्राह्मणोंकी अवज्ञा करते हैं, वे उस ही समय उनके अव्यर्थ वाक्यकी अग्नि सदृश शापरूपी अग्निमें भस्म होजाते हैं; इस ही कारण ब्राह्मण लोग इस जगत्के बीच वाक्यवज्र और भूदेव कहके प्रसिद्ध हैं। महाराज! मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, सुनिये।

सतयुगमें चार्व्वाक राक्षसने बदरिकाश्रममें स्थित होके महाघोर तपस्या करके ब्रह्माको प्रसन्न किया था। जब पितामह ब्रह्मा वर देनेके वास्ते उसके समीप उपस्थित हुए उस समय उसने यह वर मांगा था, कि "किसी प्राणीसे भी मुझे भय उत्पन्न न होवे,"—जगत्पति ब्रह्माने उसको प्रार्थना सुनके उसे बरदान किया, कि, "किसी प्राणीसे भी तुम्हें भय नहीं होगा, परन्तु ब्राह्मणोंका अवमान ना करनेसे उस ही समय तुम्हारी मृत्यु होगी।" वह पापी राक्षस ब्रह्माके समीप वर पाके अत्यन्त पराक्रमी तीव्र कर्म्म करनेवाला और महाबलवान होके इस जगत्के सब प्राणियोंको दुखित करनेमें प्रवृत्त हुआ। देवताओंने क्रमसे चार्व्वाक राक्षसके उपद्रवसे व्याकुल तथा दुखित हो ब्रह्माके निकट गमन कर उसके बधके निमित्त अनुरोध किया। उस समय अव्यय-देव ब्रह्माने उन देवताओंसे कहा, हे देवतो! शीघ्र ही उस दुराचारी राक्षसकी जिस भांति मृत्यु होगी, मैंने वह उपाय स्थिर कर रखा है, सुनो। मनुष्य लोकमें राजा दुर्य्योधन चार्व्वाक राक्षसका मित्र होगा उस ही मित्रता स्नेहसे बद्ध होकर वह ब्राह्मणोंका अपमान करेगा; उससे वाक्य बल सम्पत्तिसे युक्त ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होके उस पापी चार्व्वाकको शापरूपी अग्निसे भस्म कर देंगे। उस समय देवता लोग ब्रह्माका ऐसा बचन सुनके निश्चिन्त होके अपने स्थानोंपर गये। हे राजेन्द्र! इस ही कारणसे वह दुष्टात्मा चार्व्वाक राक्षस आज ब्राह्मणोंके तेजप्रभावसे भस्म होगया, इससे आप उसके वास्ते कुछ भी शोक न कीजिये और अपने मृत स्वजनोंके वास्ते भी अब आप चित्तको ग्लानियुक्त न कीजिये; क्यों कि वे वीरोंमें मुख्य महात्मा क्षत्रिय पुरुष युद्धमें मरके स्वर्गलोकमें गये हैं; इससे आप इस समय शत्रुजय, प्रजापालन और ब्राह्मणोंकी पूजा अर्चा आदि अपने कर्त्तव्य कर्म्मोंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होजाइये।

३९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके बचनको सुनके मानसिक चिन्ता तथा दुःखको दूर किया और पूर्व्व ओर मुह करके सुवर्णके आसनपर बैठे। शत्रुनाशन कृष्ण और सात्यकी राजा युधिष्ठिरके सम्मुखमें ही प्रकाशमान स्वर्णासन पर बैठ गये। महात्मा भीमसेन और अर्ज्जुन राजा युधिष्ठिरको बीचमें करके उनके बगलमें ही मणिरत्नोंसे जटित सुन्दर पीठासनोंपर बैठे; पाण्डवोंकी माता कुन्तीदेवी नकुल सहदेवको सङ्ग लेकर सुवर्णभूषित हाथीदांतके सफेद आसनपर बैठीं। राजा दुर्य्योधनके पुरोहित सुधर्म्मा, पाण्डवपुरोहित धौम्य मुनि, राजा धृतराष्ट्र और बिदुर आदि सब कोई अग्निके समान प्रकाशमान आसनोंपर पृथक् पृथक् बैठ गये। यशस्विनी गान्धारी, सञ्जय और युयुत्सु, राजा धृतराष्ट्रके समीपमें ही बैठे। तिसके अनन्तर धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरने सफेद पुष्प, भूमि, सोना, चांदी, मणि, अक्षत और सब भांतिकी उत्तम वस्तुओंसे अङ्कित देवता पीठ आदि स्पर्श किया। उस ही समय सब प्रजा तथा पुरवासियोंने अनेक भांतिके मणि, रत्न मृत्तिका, सुवर्ण और अनेक भांतिकी माङ्गलिक वस्तुओंको ग्रहण करके पुरोहितके सङ्ग आके राजदर्शन किया। तिसके अनन्तर सोना, चांदी और काष्ठमय पृथ्वीकी मूर्त्ति, पूर्ण घड़े, फूल, माला कुश, दूध, दही आदि वस्तु और पीपल पलाश, सेमल, आम तथा उदुम्बर आदि काष्ठोंके बने हुए स्रुवे सुवर्ण भूषित शङ्ख, और मधु, घृत आदि सम्पूर्ण माङ्गलिक वस्तु उस स्थलमें लाके रखी गई। अनन्तर पाण्डवोंके पुरोहित बुद्धिमान धौम्य

मुनिने श्रीकृष्णकी सम्मतिसे पूर्व्व और उत्तर भागमें क्रमसे नीची करके सब शुभ लक्षणोंसे युक्त सुन्दर वेदी तैयार करके उसके निकटमें हो जलती हुई अग्निके समान दृढ़ चरण अर्थात् पायासे युक्त ऊपरके हिस्सेमें व्याघ्र चर्मसे भूषित प्रज्वलित सर्व्वतोभद्र नाम आसन पर राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीको बैठाकर विहित मन्त्रोंको उच्चारण करते हुए आगमें आहुति देनेमें प्रवृत्त हुए। होमकार्य्य समाप्त होनेपर श्रीकृष्णने उठके लोकपूजित शङ्ख ग्रहण करके कुन्तीनन्दन पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरको अभिषिक्त किया। अनन्तर कृष्णकी आज्ञासे राजा धृतराष्ट्र और सब प्रजा जल लेके राजा युधिष्ठिरके ऊपर अभिषेचन करनेमें प्रवृत्त हुई; परन्तु धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित पाञ्चजन्य शङ्खके जलसे अभिषिक्त होकर अत्यन्त दर्शनीय हुए। उसही समय ढोल नगाड़े आदि बाजा बजने लगे।

तिसके अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिरने प्रजाके दिये हुए उपहार आदि ग्रहण करके बहुतसा धन देकर उन लोगोंको सत्कृत किया, और वेद पढ़नेवाले धृति तथा शीलसे युक्त स्वस्तिवाचक ब्राह्मणोंको एक एक हजार स्वर्णमुद्रा दान किया। ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्व्वक हंसोंकी भांति मधुर शब्दसे जय हो; जय हो; स्वस्ति स्वस्ति;—हे महाबाहो! भाग्यसे हो तुम्हारी बिजय हुई है; हे महा तेजस्विन्! तुमने प्रारब्धहीसे पराक्रम द्वारा क्षत्रिय धर्म्म लाभ किया है; प्रारब्धसे ही गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्ज्जुन, भीम, नकुल सहदेव और तुम शत्रुओंको पराजित करके वैसे भयङ्कर संग्रामसे मुक्त हुए हो; इस समय अब जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म करना बाकी है, उसके अनुष्ठानमें शीघ्र प्रवृत्त हो जाओ। इसी भांति आशीर्वाद युक्त वचन कहते हुए सब कोई राजा युधिष्ठिरकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे। धर्म्मराज युधिष्ठिरने उन साधुओंसे इस प्रकार पूजित होकर सुहृदोंके सहित बहुत बड़ेभारी राज्य भारको ग्रहण किया।

४० अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर प्रजा और ब्राह्मणोंके देशकालके अनुसार सब वचन सुनके बोले, हे ब्राह्मण लोगो! पाण्डुपुत्र धन्य हैं, क्योंकि चाहे सत्य हो, चाहे मिथ्याही हो, आप लोग उपस्थित होके उनके गुणोंकी वर्णन कर रहे हैं। विशेष करके आप लोग जब मत्सरताहीन होके हम लोगोंको गुण-सम्पन्न कहते हैं, तब यह बोध होता है कि हम निश्चय ही आप लोगोंके कृपापात्र हैं। देखिये, ये जो हमारे जेठे पिता महाराज धृतराष्ट्र हैं, वह हम लोगोंके पास देवता स्वरूप हैं, इससे आप लोग यदि मेरे प्रियकार्य्य तथा कल्याणके अभिलाषी हैं, तो इनके प्रियकार्य्योंके करनेमें नियुक्त रहियेगा। अधिक क्या कहें, मैं जो इस प्रकार स्वजनोंको मारके भी अबतक जीवन धारण कर रहा हूं; वह केवल आलस रहित होके इनकी सेवा टहलके निमित्त ही समझियेगा। मैं यदि आप लोगों और सुहृद पुरुषोंका कृपा पात्र होऊं, तो आप लोग धृतराष्ट्रके सङ्ग पहिलेकी ही भांति व्यवहार कीजिये। ये हमारे, आपके और जगत्के स्वामी हैं; यह सब पृथ्वी और पाण्डव लोग इनके अधीन हैं। मैंने जो कुछ कहा, आप लोग मेरे उस वचनको स्मरण रखियेगा।

राजा युधिष्ठिरने इसी भांति ब्राह्मणोंके समीप धृतराष्ट्रको "राजा" कहके सबका विदित करके ब्राह्मणोंको निज निज स्थानोंपर जानेके वास्ते बिदा किया। तिसके अनन्तर उन्होंने पुरवासी तथा जनपदवासी सब प्रजाको बिदा कर राजकार्य्यमें प्रवृत्त होके प्रीति पूर्व्वक

भीमसेनको युवराज किया। मन्त्र निश्चय, शत्रुओंके सङ्ग सन्धि स्थापन, युद्धके निमित्त यात्रा, शत्रुता करके निवास, दोनों ओर सन्धि करना और किला आदिका वा किसीका आश्रय ग्रहण करना इत्यादि राज्य-रक्षाके विषयमें ऊपर कहे हुए छः उपायोंके विचारके निमित्त बुद्धिमान विदुरको नियुक्त किया ; कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषयों और आय व्ययके विचारके निमित्त सब गुणोंसे युक्त वृद्ध सञ्जयको नियत किया। सेनाका परिमाण, उन्हें अन्न और वेतन देने तथा सेनाके सब कार्य्योंको देखनेके निमित्त नकुलको नियुक्त किया और दुष्टोंके दमन तथा शत्रुराज्य आक्रमणका भार अर्जुनको सौंपा। प्रात्यहिक ब्राह्मणों और देव कार्य्योंका भार निज पुरोहित धौम्य मुनिको सौंपा। केवल सहदेवको सर्व्वदा अपने समीपमें रहनेके निमित्त आज्ञा दी ; क्यों कि धर्म्मराज हर समय सहदेवसे रक्षित होना कर्त्तव्य कार्य्य समझते थे। पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरने इसके अतिरिक्त जो कार्य्य जिस पुरुषके योग्य समझा अत्यन्त प्रीतिके सहित उसे उस ही कार्य्य पर नियुक्त कर दिया।

तिसके अनन्तर धर्म्मपुत्र धर्म्मात्मा शत्रुनाशन राजा युधिष्ठिर महाबुद्धिमान् विदुर और युयुत्सुसे बोले,—हमारे जेठे पिता राजा धृतराष्ट्रको जब जिस कार्य्यकी आवश्यकता होगी, उस ही समय आप लोग स्वयं उठके आलस रहित होकर उन कार्य्योंका पूरा कीजियेगा। और नगर तथा जनपदवासी प्रजाके सम्बन्धमें जो कुछ कार्य्य उपस्थित होगा, उसे महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर अपने अपने कार्य्यभारके अनुसार पूर्ण कीजियेगा।

४१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उदार बुद्धिसे युक्त राजा युधिष्ठिरने कुरुक्षेत्रके युद्धमें मरे हुए स्वजनोंका फिर पृथक् रूपसे श्राद्ध कराया और अन्धे राजा महायशस्वी धृतराष्ट्रने भी अपने पुत्रोंके श्राद्धमें अन्न, रत्न और गौ आदिक सब वस्तु इच्छानुसार ब्राह्मणोंको दान किया ; विशेष करके धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरने द्रौपदीके सहित एकत्रित होके महात्मा द्रोणाचार्य्य, कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, हिड़िम्बापुत्र घटोत्कच, द्रौपदीके पांचो पुत्र और परम हितैषी राजा विराट आदि मृत सुहृद मित्रोंके श्राद्धमें हर एकके नामसे एक एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराके उन्हें धन रत्न, वस्त्र और गऊ आदि दान किया। इसके अतिरिक्त जिन राजाओंके पुत्रादि तथा इष्टमित्रोंमें किसीको जीवित नहीं देखा, उनके श्राद्ध करनेके अनन्तर हर एकके नामसे एक एक धर्म्मशाला, तालाब, कूआं आदिक खुदवाके उनके वंशधर पुत्र पौत्रोंके करने योग्य कार्य्यको पूर्ण किया। वह इसी भांति आत्मीय और मृत सुहृद पुरुषोंके श्राद्ध आदि, कार्य्य समाप्त करके उनके ऋण तथा लोकनिन्दासे रहित होके कृतार्थ हुए, और धर्म्म पूर्व्वक प्रजा पालन करते हुए पहिलेकी भांति राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी विदुर आदि पूजनीय कौरवों और मुख्य मुख्य पदोंपर प्रतिष्ठित सेवकोंको अत्यन्त सम्मानके सहित प्रतिपालन करने लगे। जो सब स्त्रियां स्वामी और पुत्ररहित होकर वहां पर निवास करती थीं, कुरुराज युधिष्ठिर कृपापूर्व्वक अत्यन्त सम्मानके सहित उनका भरण पोषण करने लगे। अनन्तर उन्होंने कृपाके वशमें होकर अन्धे, लूले, लङ्गड़े और दीन दुःखियोंको घर, वस्त्र और भोजनकी सामग्री प्रदान करके कृपा प्रकाशित की। इसी भांति राजा युधिष्ठिर पृथ्वी विजय करके शत्रुओंके निकट अऋणी हुए, और निष्कण्टक तथा सुखी होकर राज्य-भोगनेमें प्रवृत्त हुए।

४२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्मराज युधिष्ठिर फिर राज्य पाकर तथा राज्यपद पर अभिषिक्त होके हाथ जोड़के शुद्धभावसे पुण्डरीकाक्ष दाशार्ह कृष्णसे बोले। हे शत्रुनाशन! हे यदुकुल सिंह कृष्ण! हमने तुम्हारे ही बल, बुद्धि, नीति और पराक्रमके प्रभाव तथा तुम्हारीही प्रसन्नतासे पिता पितामहसे प्राप्त हुए राज्यको फिर पाया है। हे पुण्डरीकाक्ष! तुम्हें बारम्बार प्रणाम है। सब शास्त्र तुम्हें अद्वितीय पुरुष सात्वत पुरुषोंकी गति स्वरूप कहके वर्णन करते हैं। द्विज लोग यत्नपूर्व्वक तुम्हारे विविध नामोंको उच्चारण करते हुए तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं। तुम ही पुरुषोत्तम, विष्णु, जिष्णु, कृष्ण वैकुण्ठ, विश्वात्मा और जगतके उत्पन्न करनेवाले हो; इससे हे विश्वकर्म्मन्! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हींने सप्तधा-अदितिके गर्भसे जन्म ग्रहण किया है और पुराणोंमें तुम ही पृश्निगर्भ कहके विख्यात हो पण्डित लोग तुम्हें त्रियुग कहके वर्णन करते हैं। तुमही शुचिश्रवा अर्थात् पुण्यकीर्त्ति, हृषीकेश, घृतार्चि: (यज्ञेश्वर) हंस, त्रिनेत्र, शम्भू, विभु और दामोदर नामसे वर्णित होते हो। तुम वाराह, अग्नि, सूर्य्य, वृष-भध्वज, गरुड़ध्वज, अनिकसाह (शत्रु सेना विमर्दी) पुरुष (जीव) शिपिविष्ट (सर्व्वान्तरव्यापी) उरुक्रम, वरिष्ट, उग्रसेनानी, देवसेनानी, सत्य, राजसनि (अन्नप्रद) हो। तुम स्वयं अच्युत और शत्रुओंके नाश करनेवाले हो। तुम संस्कृति (ब्राह्मण रूप) और विकृति (अनुलोम प्रतिलोम जाति रूप) हो। तुम श्रेष्ठ, जड़वर्त्मा, अद्रि, वृषदर्भ और वृषाकपि हो। तुम ही सिन्धु, विधर्म्म (निर्गुण) त्रिककुत त्रिधामा, त्रिदिवाच्युत (अवतीर्ण मूर्त्ति) हो। तुम ही सम्राट्, विराट्, स्वराट्, सुरराज, भवकारणविभू, भू, (सत्वी रूप) अभिभू (अशरीर) कृष्ण, कृष्णवर्त्मा, ग्विष्टकृत् (अभिलाष पूर्ण करनेवाले,) भिषजावर्त्त (दोनों अश्विनीकुमारोंके पिता सूर्य्य) हो, तुम ही कपिल, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड़ और यज्ञसेन नामसे विख्यात हो। तुम ही सिखण्डी, नहुष, वभ्रु (महेश्वर) दिवस्पृक्, पुनर्व्वसु नाम नक्षत्र सुवभ्रु (अत्यन्त पीतवर्ण) उक्थ यज्ञ, सुषेण, दुन्दुभि, गभस्तिनेमि, श्रीपद्म, पुष्कर, पुष्पधारण ऋभु, विभु और सर्व्वसूक्ष्म हो, वेदमें तुम्हारे ही चरित्रोंके विषय गाये जाते हैं। तुम अम्भोनिधि, ब्रह्मा, पवित्र धाम, धामवित् हो; श्रुति तुम्हारे ही नामको हिरण्यगर्भ कहके तुम्हारे महात्म्यका वर्णन करती है। तुम ही स्वाहा, स्वधा और केशव हो; तुम ही इस जगत्के कारण और प्रलयस्वरूप हो; हे कृष्ण! पहिले ही तुम इसकी सृष्टि करते हो। हे विश्वयोनि! हे शार्ङ्गपाणि! हे खड्गपाणि! चक्रपाणि! यह संसार तुम्हारे वशमें स्थित है, इससे तुम्हें नमस्कार है।

यदुकुल शिरोमणि कमल नेत्र कृष्णने इसी भांति सभाके बीच पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिरके स्तुतियुक्त वचनोंसे सत्कृत तथा पूजित होके अत्यन्त प्रीतिके सहित उचित वचनोंसे उन्हें भी आनन्दित किया।

४३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिरने सभामें स्थित पुरुषोंको विदा किया, उन लोगोंने अपने गृहोंकी ओर गमन किया। तब वह महापराक्रमी, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवको धीरज देके आदर पूर्व्वक यह वचन बोले, हे भरतश्रेष्ठ! तुम लोग महासंग्राममें शत्रुओंके अस्त्रोंसे क्षत-विक्षत शरीरसे युक्त होकर थक गये हो, विशेष करके तुम लोगोंने राजपुत्र होकर भी मेरे वास्ते बहुत दिनोंतक वनवासकर क्रोध और शोकसे दुःखित होके साधारण पुरुषोंकी भांति अनेक क्लेश सहे; इससे

आज रात्रिको अपनी इच्छानुसार विजय-सुख अनुभव करो। जब तुम लोगोंकी बुद्धि प्रकृतिस्थ और तुम्हारी थकावट दूर हो, तब तुम लोग प्रातःकाल फिर आके मेरे निकट उपस्थित होना। धर्म्मराज युधिष्ठिरने भाइयोंको ऐसी आज्ञा देकर राजा धृतराष्ट्र की अनुमतिसे अनेक मणि रत्नोंसे शोभित, दास दासियोंसे युक्त दुर्य्योधनका घर भीमसेनको समर्पण किया; उन्होंने इन्द्रके वैजन्तपुरी प्रवेश करने की भांति उस गृहके भीतर प्रवेश किया। अनन्तर प्रासादमाला शोभित सुवर्णके तोरणोंसे युक्त दुर्य्योधनके भवन समान ही अनेक धन-धान्य और दास दासियोंसे पूरा दुःशासनका गृह महाबाहु अर्जुनको समर्पण किया। तिसके अनन्तर वनवास क्लेशसे दुःखित नकुलको मणि रत्नोंसे युक्त कुबेर गृहके समान दुःशासनके गृहसे भी श्रेष्ठ दुर्म्मर्षणके गृहको अत्यन्त प्रीतिके सहित प्रदान किया। प्रिय कार्य्योंके करनेवाले सहदेव सुवर्ण भूषित, पद्मपत्रनयनाक्षी और उत्तम शय्या तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे भूषित दुर्म्मुखका उत्तम गृह पाके कैलासधाममें बासस्थान पाये हुए कुबेरकी भांति आनन्दित हुए। विदुर, सञ्जय, युयुत्सु, राजपुरोहित धौम्य और सुधर्म्मा आदिने अपने अपने गृहोंमें गमन किया। जैसे शार्दूल पर्व्वतकी कन्दरामें प्रवेश करता है, वैसे ही पुरुषसिंह श्रीकृष्णने सात्यकिके सहित अर्ज्जुनके गृहमें प्रवेश किया। उन सबोंने उन गृहोंमें अन्न आदिक खाने पीनेकी वस्तुओंसे तृप्त होकर परम सुखसे रात्रि बिताई और भोरके समय फिर सब कोई स्नान आदिसे निवृत्त होके राजाके समीप सभामें उपस्थित हुए।

४४ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे विप्रर्षि! महाबाहु धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर जो कुछ कार्य्य किये और त्रिलोक गुरु भगवान कृष्णने उस समय जो कुछ कार्य्य किया हो; उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कृष्णके सहित पाण्डवोंने जो कुछ कार्य्य किये, मैं वह सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनिये। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर चारों वर्णोंकी प्रजाको निज निज धर्म्ममें स्थापित कर, एक हजार महात्मा स्नातक ब्राह्मणोंको एक एक सहस्र स्वर्णमुद्रा दान करके फिर अनुजीवी सेवकों और उस समय वहांपर इकट्ठे हुए अतिथियोंको तृप्त किया; अधिक क्या कहा जावे, उन्होंने कृपण और विरुद्ध मतावलम्बी पुरुषोंकी भी अभिलाषा पूरी करनेमें त्रुटि नहीं की। महायशस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिरने निज पुरोहित धौम्य मुनिको दश हजार गऊ, और सोना, चांदीसे युक्त अनेक भांतिके मणिरत्न तथा वस्त्र आदि प्रदान करके कृपाचार्य्यको पहिलेकी भांति अपना गुरु नियत किया; परन्तु विदुर और धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सुको विशेष रूपसे सम्मानित किया। दान देनेवाले पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने आश्रित सब पुरुषोंको ही भोजन, पान, शयन, आसन और वस्त्र आदिसे सन्तोषित किया। उन्होंने नगरनिवासियोंको प्रसन्न करके प्राप्त हुए राज्यमें शान्ति स्थापित किया, और धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा विदुरको सब राज्यभार सौंपके निश्चिन्त होकर सुखपूर्व्वक निवास करने लगे। अनन्तर सवेरा होनेपर राजा युधिष्ठिरने हाथ जोड़के महात्मा कृष्णके समीप गमन किया। उन्होंने वहां जाके देखा, कि दिव्य आभूषणोंसे भूषित, पीताम्बरधारी, नीलमणिके समान तेजसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्र सुवर्णजड़ित मणिके समान प्रकाशमान शरीरसे प्रज्वलित होके सुवर्ण-मणि भूषित बृहत् शय्याके ऊपर बैठे हैं; उनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणिसे इस

प्रकार शोभित होरहा था, जैसे उदय हुए सूर्य्यके सहित उदयाचल पर्व्वत शोभित होता है। महाराज! तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं दीख पड़ती, जिससे श्रीकृष्णचन्द्रकी उस समयके शोभाकी उपमा होसके। उस समय धर्म्मात्मा युधिष्ठिर पुरुषविग्रह महात्मा विष्णुके समीप पहुंचके हंसकर मधुर वचनसे कहने लगे। हे पुरुषोत्तम! हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! सुखपूर्व्वक रात्रि बीती है न? इस समय तुम्हारी बुद्धि पहिलेकी भांति स्थिर और प्रसन्न तो है? हे त्रिविक्रम भगवान! तुम्हारी कृपासे ही हम लोगोंने फिर राज्य पाया तथा सब पृथ्वी भी हमारे वशमें हुई है; तुम्हारे प्रसादसे ही हम लोग क्षत्रिय धर्म्मसे भ्रष्ट नहीं हुए, तुम्हारी कृपासे ही हमारी युद्धमें विजय हुई और उत्तम यश प्राप्त हुआ है। शत्रुनाशन युधिष्ठिर इसी भांति स्तुति कर रहे थे, तोभी श्रीकृष्ण भगवानने कुछ भी उत्तर नहीं दिया; क्यों कि उस समय वह ध्यानमें प्रवृत्त थे।

४५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे अमित पराक्रमी! आज मैं यह कैसा आश्चर्य्य देख रहा हूं, तुम ध्यानमें प्रवृत्त हुए हो? हे देव! तुम तुरीय ध्यानपथ (जाग्रत स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत स्वरूप अवस्था) अवलम्बन करके स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंसे अपक्रान्ति होकर स्थित होरहे हो, उसे देखके मेरा मन विस्मित होता है। देख रहा हूं कि तुमने प्राण आदि पञ्च कर्म्म निर्व्वाहक शरीरस्थ प्राणवायुको निरोध किया (रोका) है; हे गोविन्द! तुमने सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करके मनके बीच स्थापित किया है और वाक्य तथा मनको बुद्धिमें लीन किया है। शब्द आदि पञ्च-विषय अपने अपने आधारके आसरे स्थित हैं। तुम्हारे शरीरके सब रोएं और मन बुद्धि स्थिर भावसे स्थित हैं, इससे तुम काष्ठ वा शिलाकी भांति चेष्टारहित होरहे हो। हे भगवन! जैसे दीपशिखा वायुरहित स्थानमें स्थिरताके सहित जलती रहती है, अथवा जैसे पत्थर एक ही स्थलमें पड़ा रहता है, वैसे ही तुम भी आज चेष्टा रहितके समान दीख पड़ते हो। हे देव! यदि यह गोपनीय न होवे और मैं सुननेका पात्र होऊं, तो यह प्रार्थना है, कि आप मुझ शरणागतके इस संशयको दूर कीजिये। हे धार्म्मिकप्रवर! हे पुरुषोत्तम! तुम चर, अचर कर्त्ता और अकर्त्ता हो। तुम अनादि और मृत्युसे रहित हो, और तुम ही आदि पुरुष हो। मैं तुम्हारा शरणागत भक्त शिर झुकाके तुम्हें प्रणाम करता हूं, कि आप इस ध्यानके यथार्थ कारणको मेरे समीप प्रकाशित कीजिये; उस समय इन्द्रके भ्राता श्रीकृष्ण भगवान् मन बुद्धि और इन्द्रियोंको पहिलेकी भांति निज निज स्थलोंमें स्थापित करके हंसकर धर्म्मराज युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! शान्त होनेवाली अग्निकी भांति तेजस्वी शरशय्यापर स्थित पुरुषसिंह भीष्म मेरा ध्यान कर रहे हैं, उसी कारण मैं भी उनके ध्यानमें प्रवृत्त था। जिन्होंने स्वयम्बरके बीच अपने तेजके प्रभावसे सब राजाओंको पराजित करके तीनों कन्याओंको हरण किया, जिसके वज्र समान धनुषटङ्कार और तलवाणके शब्दको इन्द्र भी नहीं सह सकते थे; जिन्होंने तेईस दिनोंतक भृगुकुल शिरोमणि परशुरामके सङ्ग युद्ध किया था; परशुराम जिसे किसी प्रकार पराजित करनेमें समर्थ नहीं हुए; जिसे गङ्गादेवीने निज-गर्भमें धारण किया और वशिष्ठ मुनिने अपना शिष्य बनाया था, जिस महातेजस्वीने बुद्धिप्रभावसे सब दिव्य अस्त्रोंकी विद्या और सांगोपांग चारों वेदोंको पढ़ा था। हे महाराज!

वही परशुरामके प्रिय शिष्य सब विद्याके आधार स्वरूप भीष्म मन और सब इन्द्रियोंको संयम करके एकाग्रचित्तसे मेरे शरणागत हुए हैं; उसी कारण मैं भी उनके ध्यानमें प्रवृत्त हुआ था। उस धर्म्मात्मा भीष्मको भूत-भविष्य और वर्त्तमान कालके सब विषयोंका ज्ञाता समझियेगा। महाराज ! पुरुषशार्दूल भीष्म जब अपने कर्म्मके प्रभावसे शरीरको त्याग कर स्वर्ग लोकमें गमन करेंगे, तब यही पृथ्वी चन्द्रमासे हीन होकर रात्रिके समान बोध होगी; इससे आप महापराक्रमी गङ्गानन्दन भीष्मके समीप उपस्थित होके धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यज्ञादिक और चारों आश्रमोंके धर्म्म तथा निखिल राजधर्म्म और इसके अतिरिक्त जो कुछ पूछनेकी इच्छा हो, वह सब पूछिये। महाराज ! कौरवकुल धुरन्धर भीष्मके परलोक गमन करनेके अनन्तर पृथ्वीसे सब ज्ञान शास्त्र इकबारगी लुप्त हो जायेंगे, इसी कारण मैं आपको उन महात्माके समीप जानेके वास्ते कहता हूं।

धर्म्म जाननेवाले युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके सारगर्भ उत्तम वचन सुनके धीमे स्वरसे बोले, हे कृष्ण ! आपने भीष्मके प्रभाव विषयक जो कुछ वचन कहे उसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है, मैंने भीष्मके प्रारब्ध और प्रभावकी कथा पहिले महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे अनेक बार सुनी है, विशेष करके सब लोगोंके कर्त्ता होकर जब तुम भी उनकी प्रशंसा कर रहे हो; तब उसमें सन्देह ही क्या है। हे मधुसूदन ! यदि मेरे ऊपर आपकी अत्यन्त कृपा प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई हो, तो तुम स्वयं हमको अपने सङ्ग भीष्मके समीप ले चलो। हे यदुनन्दन ! कुरुकुल शिरोमणि भीष्म सूर्य्यके उत्तरायण होने पर शरीर त्याग करेंगे, इससे उन्हें दर्शन देना आपका कर्त्तव्य है। हे भगवन् ! तुम आदि देव, क्षर; अक्षर ब्रह्ममय और परमनिधि हो, इस आसन्नमृत्युके समय पितामह एकबार तुम्हारा दर्शन करें, यही मेरी इच्छा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, मधुसूदन कृष्णने धर्म्मराज युधिष्ठिरके वचनको सुनके समीपमें ही स्थित सात्यकिसे कहा तुम शीघ्र ही मेरे रथको सज्जित करो; इतना वचन सुनते ही सात्यकि उसी समय वहांसे उठके दारुक सारथीके निकट जाके यह वचन बोले, तुम शीघ्र ही श्रीकृष्णके रथको सज्जित करो। अनन्तर दारुकने सात्यकिके वचनको सुनते ही सुवर्णभूषित बहुतसे मरकत, चन्द्रकान्त, सूर्य्यकान्त मणिमय सुवर्ण भूषित चक्र-सहित सूर्य्य किरणके समान प्रकाशमान शीघ्रगामी, मध्यभागमें अनेक भांतिके मणि रत्न सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित, शत्रुओंको दुःखित करनेवाले, मनके समान वेगपूर्व्वक गमन करनेवाले शैव्य और सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त अनेक भांतिकी पताका और गरुड़ ध्वजासे शोभित उत्तम रथको सज्जित करके हाथ जोड़के श्रीकृष्णचन्द्रसे निवेदन किया।

४६ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे ऋषिवर ! पितामह भीष्मदेवने शरशय्या पर स्थित होके किस प्रकार योग अवलम्बन करके शरीर त्याग किया था, आप उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज ! तुम पवित्र और एकाग्र चित्त होकर भीष्मके शरीर त्यागनेके विषयको श्रवण करो। जब सूर्य्य दक्षिणायन मार्गसे उत्तरायण गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। तभी भीष्म पितामहने स्थिर होके अपना चित्त, आत्मामें लगाया। महाराज ! उस समय भीष्मदेव महात्मा ब्राह्मणोंके बीचमें स्थित और अनेक बाणोंसे परिपूरित शरीरसे इस प्रकार शोभित हुए, जैसे किरण-

धारी भगवान सूर्य्य शोभित होते हैं। उस समय वेद जाननेवाले व्यासदेव, देवऋषि नारद महात्मा देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्त, जैमिनि महात्मा पैल्वशाण्डिल्य, देवरात, धीमान् मैत्र, अमित वशिष्ठ, महात्मा कौशिक हारीत, लोमश, बुद्धिमान अत्रिय, बृहस्पति, शुक्राचार्य्य, महामुनि च्यवन, सनत्कुमार, कपिल वाल्मीक, तुम्बुरु, कुरु, मौद्गल्य भृगुनन्दन परशुराम, महामुनि तृण विन्दु, पिप्पलाद, वायु, सम्वर्त्त पुलह, कठ, काश्यप; पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, काश्य, गौतमकुलमें उत्पन्न हुए महामुनि, गालव, धौम्य, विभाण्ड, माण्डव्य धौम्र कृष्णानुभौतिक, महर्षि उलूक, महामुनि मारकण्डेय, भास्करी, पूरण, कृष्ण, परम धार्म्मिक सूत,—ये सम्पूर्ण ऋषि तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे श्रद्धा दम और शमसे युक्त महा तपस्वी महात्मा मुनियोंसे घिरकर पुरुषसिंह भीष्म इस प्रकार शोभित हुए, जैसे नक्षत्रोंके बीच भगवान चन्द्रमाकी शोभा दीख पड़ती है। अनन्तर वह पवित्र भावसे हाथ जोड़के कर्म्म, मन और वचनसे एकाग्रचित्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करने लगे; और हृष्ट-पुष्ट स्वरसे मधुसूदन कृष्णकी स्तुति करने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! बोलनेवालोंमें मुख्य परम धर्म्मात्मा भीष्मने जिस प्रकार हाथ जोड़के पद्मनाभ योगीश्वर विष्णु, जिष्णु, जगत्पति श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुतिकी थी। मैं उसे वर्णन करता हूं, आप सुनिये।

भीष्म बोले, हे पुरोषत्तम! तुम पवित्र और शुचिपद हो, तुम पारमेष्टपद, प्रजापति और आत्मस्वरूप हो, इससे मैं अब तुम्हारेमें चित्त समर्पण करके एकान्त भावसे तुम्हारी उपासनाका अभिलाषी होकर जो कुछ कहनेकी इच्छा करता हूं; आप उस संक्षेप और विस्तार युक्त मेरे कहे हुए वचनोंके दोषोंको त्यागके मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये। आदि अन्त रहित परब्रह्मके स्वरूपको ठीक सब लोकोंके रचनेवाले भगवान विधाता नारायण हरि ही जानते हैं; इनके अतिरिक्त देवता वा ऋषि कोई भी उनके रूपको नहीं जान सकते। नारायणकी कृपासे ही देव गन्धर्व्व, यक्ष, राक्षस सर्प, सिद्ध और देवऋषि लोग उस सनातन परमेश्वरको परम अव्यय मानते हैं; परन्तु कोई भी यह नहीं जानते कि "ये कौन हैं, कहांसे किस प्रकार ये भगवान हुए है!" जिस अविनाशी ब्रह्ममें जगत्के सम्पूर्ण प्राणी प्रलय कालके समय इस प्रकार लीन होजाते हैं, जैसे धागेमें मालाकी मणियें गुथी रहती हैं; यह जगत् जिस विश्वाङ्ग जगत् कर्त्ता नित्यपुरुषके रूपमें स्थित है, ऋषि लोग जिसे सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष, सहस्र चरण सहस्र बाहु, सहस्र मुकुट, सहस्र शरीरोंसे प्रकाशमान, जगदाधार नारायण देव, सब सूक्ष्म वस्तुओंसे सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, गुरु पदार्थोंसे भी गुरुतर और उत्तम वस्तुओंसे भी श्रेष्ठ कहके वर्णन करते हैं। जो वाक्, अनुवाक् निषत्, उपनिषत् और सत्य स्वरूप है; जिसको सामवेदके बीच सत्य और सत्यकर्म्मा आदि नामोंसे स्तुति होती है। साधक लोग ब्रह्म, जीव, मन, अहंकार इन चारों अध्यात्मतत्वोंके वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार परमगुह्य दिव्य नामोंको उच्चारण करके सदा बुद्धिसे अभिव्यक्त और भक्तोंके ईश्वर जानके जिनकी पूजा अर्चा किया करते हैं; तथा तिसकी प्रीतिके निमित्त स्वधर्म्मरूपी तपस्याका अनुष्ठान करते हैं; जिनकी कृपासे आचरित तपका प्रभाव चित्तमें आके उपस्थित होता है; मैं उस चैतन्य स्वरूप, सर्व्वेश, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्व्वेश्वर भगवानका शरणागत हुआ हूं। जो अरणीकी अग्निकी भांति जो भगवान पृथ्वी, ब्राह्मण, वेद और यज्ञ रक्षाके निमित्त वसुदेव देवकीसे उत्पन्न हुए हैं;

और योगी लोग एकाग्रचित्त होकर सब वासना त्यागके एक मात्र मोक्षपदके निमित्त जिसकी उपासना करते हुए निज आत्मामें ही जिस स्वरूपका दर्शन करते हैं, मैं उसही निर्म्मल ज्योतिस्वरूप सर्व्वेश्वर गोविन्द कृष्णको शरण हूं। जो निज तेज प्रभावसे सूर्य्य, अग्निसे वायु और इन्द्रको अतिक्रम करके विद्यमान है; मैं उसही बुद्धि तथा मन आदि इन्द्रियोंसे अतीत परमात्माको शरण हूं, जो पुराणमें पुरुष, युगादिकोंमें ब्रह्म और प्रलय समयमें सङ्कर्षण नामसे वर्णित हैं, मैं उसी उपास्य देवकी उपासनामें प्रवृत्त हुआ हूं। जो एक होकर भी अनेक रूप दीख पड़ते हैं, और कर्म्म योगी पुरुष अनन्य भक्तिसेयुक्त होकर जिसकी उपासना करते रहते हैं; मैं उसी सर्व्व कामप्रद भगवानकी शरण हूं ज्ञानी लोग जिसे जगत्‌कोष कहते हैं, यह सब प्रजा जिसकी रूपमें स्थित है और जलमें तैरनेवाले हंस तथा कारण्डव आदि पक्षियोंकी भांति सब प्राणी जिसकी चैतन्य सत्तासे चेष्टमान होते हैं, देवता और ऋषि लोग भी जिसके स्वरूपको नहीं जान सकते; मैंने उसी आदि अन्त; मध्य अवस्था और सत् असत्‌से रहित सत्य स्वरूप, एकाक्षर परब्रह्म परमेश्वरका आसरा ग्रहण किया है। देवता, असुर, सिद्ध, गन्धर्व्व, सर्प और ऋषि लोग सदा स्थिरभावसे जिसकी उपासना किया करते हैं; जो भव रोगके छुड़ानेमें परम वैद्यस्वरूप है; मैं उसी अनादि अविनाशी, नेत्र आदि इन्द्रियोंके अगोचर सर्व्वकारण, सनातन, परमात्म स्वरूप सर्व्व शक्तिमान नारायण हरिके शरणागत हुआ हूं। वेद जिसको जगत्‌कर्त्ता, स्थावर जङ्गमात्मक जगत्‌के पालक, सर्व्वाध्यक्ष, अक्षर और परमाधार करके वर्णन करते हैं; जिन्होंने एक होकर भी दैत्योंको नाश करनेके वास्ते अदिति गर्भसे बारह अंशोंमें विभक्त होकर अवतार किया था; उस हिरण्यवर्ण सूर्य्यमूर्त्ति परमात्माको नमस्कार करता हूं। जो महाअन्धकारसे अतीत स्वयं ज्योतिस्वरूप तथा सब स्थानोंमें पूर्ण हैं; जिसे जाननेसे ही साधक लोग जन्म मृत्युसे छूटकर परम पद पाते हैं, उस ज्ञेयरूप परमात्माको नमस्कार है। जो अमृतसे शुक्लपक्षमें देवतों और कृष्णपक्षमें पितरोंको तृप्त करता है और जगत्‌में द्विजराज नामसे प्रसिद्ध है; उस सोममूर्त्ति परमात्माको नमस्कार है। ऋषिलोग जिसे उक्थके बीच बृहत और अग्निहोत्र आदिक महायज्ञोंमें अध्वर्य्यु नामसे वर्णन करके सामगान करते हैं; उस वेदात्मक पुरुषको नमस्कार है। ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद ही जिसके धाम है, जो जव, दधियुक्त सत्तू, परिवाप, पुरोडाश और दूध यही पञ्च हविरात्मक हैं जो वेदके बीच गायत्री आदि सात छन्दोंसे विस्तृत हुआ है, उस यज्ञात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो "आश्रावय" आदि सप्त दश अक्षरोंसे अग्निमें होम होता है, उस होमात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो वेद पुरुष और यजु नामसे विख्यात है, गायत्री आदिक छन्द ही जिसके हाथोंके अवयव हैं, ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदोंसे युक्त यज्ञ ही जिसका मस्तक है और बृहत् रथान्तर ही जिसकी प्रीतिस्वरूप है; उस स्तोत्रात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो सर्व्वज्ञ पुरुष प्रजापति आदिकोंके सहस्र वर्ष यज्ञ करनेके अनन्तर यज्ञसे हिरण्मपक्ष युक्त हंसरूपसे उत्पन्न हुए थे; उस हंसरूपी परमात्माको नमस्कार है। वैदिक पद ही जिसके अङ्ग, सन्धि आदिक अंगुली स्वर और व्यञ्जन ही जिसके भूषण हैं, तथा वेदके बीच जो दिव्य अक्षर कहके वर्णित हुआ है; उस वागाधिष्ठात्री परम देवताको नमस्कार है। जिन्होंने तीनों लोकोंके हितकी अभिलाषासे यज्ञमें वाराहमूर्त्ति धारण करके रसातलमें गई हुई पृथ्वीका उद्धार किया था, उस वीर्य्यात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो योगनिद्रा

अवलम्बन करके सहस्र फणोंसे युक्त नाग भूषित शय्यापर शयन करते हैं ; उस निद्रात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो वाक् आदि इन्द्रियोंको जीतकर मोक्षके कारण वेदमें कहे हुए उपायसे साधुओंको संसारके दुःखोंसे छुड़ाके मुक्त करता है ; उस सत्यात्माको नमस्कार है। हर एक पृथक् पृथक् धर्म्म अवलम्बन करनेवाले पुरुष इच्छानुसार विविध फलोंकी अभिलाषासे जिसकी पूजा किया करते हैं, उस धर्म्मात्माको नमस्कार है। जिससे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और जो सबके शरीरमें स्थित काममय देह अर्थात् मनके उन्मादजनक है ; उस कामात्मा पुरुषको नमस्कार है। महर्षि लोगोंने जिस अव्यक्त पुरुषको देहके बीच स्थित चेतन कहके निश्चय किया है ; उस क्षेत्रात्माको नमस्कार है। चैतन्य और नित्य स्वरूपसे स्थित रहनेपर भी साङ्ख्यवादी जिसे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्था, एकादश इन्द्रिय और पञ्च महाभूत आदि सोलह गुणोंसे युक्त, उदारतनु, सबक सङ्ख्यात्मक कहके वर्णन करते हैं ; उस संख्यात्मा पुरुषको नमस्कार है। जितेन्द्रीयोगी पुरुष निद्रा और श्वासवायुको जीतके जिस ज्योतिरूपका हृदयमें दर्शन करते हैं ; उस योगात्माको नमस्कार है। पाप पुण्यसे पर, शान्त सन्न्यासी लोग आवागमनसे छूटकर जिसे पाते हैं, उस मोक्षात्माको नमस्कार है। जो दिव्य परिमाणसे सहस्र युगोंके अन्तमें जलती हुई शिखासे युक्त अग्निरूपसे सब भूतोंको भक्षण करता है, उस घोरात्माको प्रणाम है। जो सब वस्तुओंको भक्षण और जगत्‌को एक समुद्रमय करके एक मात्र बालक रूपसे निद्रित होता है ; उस मायात्मक पुरुषको प्रणाम है। पुष्कर लोचन अजेय नाभिस्थानसे जो कमल उत्पन्न होता है, जिससे जगत् प्रतिष्ठित हुआ है, उस पद्मात्माको प्रणाम है। समुद्रके समान चार भांतिके काम जिसके प्रभावसे नष्ट होते हैं, उस अनगिनत सिर और असंख्य योगात्मक पुरुषको नमस्कार है। जिसके केशोंमें सम्पूर्ण बादलोंके समूह, अङ्गसन्धियोंमें नदियां और हृदयमें चार समुद्र स्थित हैं, उस जलमय पुरुषको प्रणाम है। जिससे प्राणियोंकी उत्पत्ति और मृत्युरूपी विकार उत्पन्न होता है, और महाप्रलयके समय जिसमें सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणी लीन होते हैं, उस कारणात्माको नमस्कार है। जो प्राणियोंकी निद्रित अवस्थामें भी जागता रहता है ; और कर्त्ता न होनेपर भी स्वप्नावस्थामें कर्त्ताकी भांति बोध होता है ; परन्तु यथार्थमें वह प्राणियोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंका द्रष्टामात्र है ; उस साक्षीस्वरूप चैतन्य पुरुषको नमस्कार है। जो किसी कार्य्यमें शोकित नहीं होता और धर्म्म-कार्य्यके निमित्त उद्यत रहता है, उस सर्व्वत्र पूर्ण वैकुण्ठरूपी कार्य्यात्मक पुरुषको प्रणाम है। जिसने क्रुद्ध होकर इक्कीस बार युद्धभूमिमें धर्म्म-मर्य्यादा उलङ्घन करनेवाले क्षत्रियोंका नाश किया था, उस क्रूरात्माको प्रणाम है। जो प्राण आदि पांच अंशोंमें विभक्त होके शरीरस्थ वायुरूपसे प्राणियोंको चैतन्य करता है ; उस वायुमय पुरुषको प्रणाम है। जो युग युगमें योगमायासे मत्स्य, कूर्म्म, बराह आदि रूपोंको धारण करके अवतार लेता है और महीना, ऋतु, अयन तथा बर्ष आदि रूपसे उत्पत्ति, स्थित और प्रलयके कार्य्योंको पूर्ण करता है, उस कालरूपी पुरुषको नमस्कार है। ब्राह्मण जिसके मुख, क्षत्रिय जिसकी दोनों भुजा, वैश्य जिसके उरुस्थल और शूद्र जिसके दोनों चरणोंके आसरेसे प्रकट होके स्थित हैं, उस वर्णात्मा पुरुषको प्रणाम है। स्वर्ग जिसका सिर, अग्नि, मुख, आकाश नाभी, सूर्य्य नेत्र, दिशा कान और पृथ्वी जिसका चरण है, उस सम्पूर्ण लोकमय पुरुषको प्रणाम है। जो कालसे भिन्न सम्पूर्ण यज्ञोंके अधिष्ठाती हुए

हिरण्यगर्भसे भी श्रेष्ठ हैं, जो स्वयं अनादि और जगतका आदि पुरुष है; उस विश्वात्माको नमस्कार है। राग द्वेषसे युक्त अज्ञानी लोग शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें वर्त्तमान श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका अनादर करके, जिसे विषय गोप्ता समझते हैं; उस गोप्तृस्वरूपी परमात्माको नमस्कार है। जो अन्न, पान और इन्धनस्वरूपसे शारीरिक रस और बलको बढ़ाता है, तथा जो सब प्राणियोंको धारण कर रहा है; उस प्राणमय पुरुषको नमस्कार है। जो प्राणियोंके प्राणधारणके निमित्त चारों प्रकारके अन्नोंको भोजन करता है, और शरीरके भीतर प्रवेश करके उन भोजन किये हुए चारों भांतिके अन्नोंको परिपाक करता है; उस पाकात्मक पुरुषको नमस्कार है। जिसके जटा और नेत्र पिंगलवर्ण और दांत तथा नख जिसके अस्त्र हैं; उस दुर्ज्जय दैत्यनाशक नृसिंह रूपधारी परमात्माको नमस्कार है। जिसे देवता दानव, यक्ष गन्धर्व्व आदि कोई भी यथार्थ रूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, उस सूक्ष्मात्माको प्रणाम है। जो सर्व्वशक्तिमान सर्व्वव्यापक भगवान रसातलमें प्रवेश करके सम्पूर्ण जगत्को धारण कर रहे हैं; उस वीर्य्यात्माको नमस्कार है। जो सृष्टिरचाके वास्ते जगत्के सब प्राणियोंको स्नेह पाशसे मोहित कर रहा है; उस मोहात्मा परम पुरुषको प्रणाम है। योगी लोग ज्ञान साधनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पांचों विषयोंसे ज्ञानको पृथक् करके पवित्र ज्ञान भावसे आत्म स्वरूप जानके जिसे प्राप्त करते हैं उस ज्ञानस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जिसके ज्ञानरूपी नेत्र सर्व्व वर्त्तमान हैं, जो अगोचर स्वरूप है; और जिसमें ये सम्पूर्ण विषय स्थित रहते हैं; उस दिव्यात्माको नमस्कार है। जो सदा जटा और दण्डधारी है, लम्बोदर शरीर युक्त कमण्डलु ही जिसका तूणीर है; उस ब्रह्मात्माको नमस्कार है। जो सदा शरीरमें खाक लगाये हुए शूल धारण करके विराजमान रहता है; उस त्रिदशनाथ, त्रिनेत्र ऊर्द्धलिंग रुद्रात्माको नमस्कार है। अर्द्धचन्द्र जिसके माथेका भूषण और सर्प जिसके यज्ञोपवीत हैं, उस शूल और पिनाकधारी उग्रात्माको नमस्कार है। जो सब प्राणियोंका आत्मस्वरूप है, जो अहंकारको नाश करनेवाला है; उस क्रोध, मोह और द्रोहसे रहित शान्तात्माको नमस्कार है। यह संसार जिसके प्रभावसे स्थित है, जिससे जगत्की उत्पत्ति होती है, जो सब स्थानोंमें विराजमान है, जो स्वयं विश्वरूप और सब प्राणियोंका आत्मा स्वरूप हैं; उस नित्यस्वरूप सर्व्वमय परम पुरुषको प्रणाम है।

हे विश्वकर्म्मन्! हे जगत्के उत्पन्न करनेवाले! तुम पञ्च भूतोंसे पृथक् और नित्य मुक्ति स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तीनों लोकों सब दिशाओं और तीनों कालोंमें समभावसे विद्यमान हो, तुम ही सर्व्वमय और निधिस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। हे भगवन! हे विष्णु! तुम इस जगत्को उत्पन्न करनेवाले और अव्यय स्वरूप हो? इससे तुम्हें प्रणाम है। हे हृषीकेश! तुम जगतकर्त्ता, संहर्त्ता और अपराजय हो; इससे तुम्हें प्रणाम है। हे भगवन! यद्यपि मैं तुम्हारे वर्त्तमान आदि त्रिकालस्थित दिव्यभावके दर्शनमें समर्थ नहीं हूं, तथापि तुम्हारा जो सनातन स्वरूप है, उसे तत्वज्ञानसे दर्शन कर रहा हूं। तुम्हारे मस्तकसे द्युलोक, चरणसे भूलोक और तुम्हारे पराक्रमसे तीनों लोक व्याप्त हैं; तुम्हीं साक्षात् सनातन पुरुष हो। सम्पूर्ण दिशा तुम्हारी भुजा, सूर्य्य तुम्हारे नेत्र और पापरहित प्रजापति ही तुम्हारे वीर्य्य स्वरूप हैं; तुम महातेजमय वायुरूपसे ऊपरके सप्तर्षियोंको रोकके स्थित हो।

अलसी पुष्पके समान रूपवाले पीताम्बर-

धारी अच्युत गोविन्दको जो प्रणाम करते हैं, उन लोगोंको कुछ भी भय उपस्थित नहीं होता। दश अश्वमेध यज्ञोंके समाप्तिमें अवभृत स्नान करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, वह श्रीकृष्ण भगवानके एक बारके प्रणाम की समानता भी नहीं कर सकता। क्योंकि उन दश अश्वमेध यज्ञोंके करनेवाले पुरुषोंको फिर जन्म लेना होता है, परन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवालोंको जन्म मरण रूपी दुःखोंको नहीं भोगना पड़ता। कृष्ण ही जिसके व्रत हैं, और सोते, उठते जो लोग श्रीकृष्णका स्मरण करते हैं, तथा योगपूर्व्वक उनके ध्यानमें रत होते हैं, वे इस प्रकार उनके स्वरूपमें लीन होजाते हैं, जैसे मन्त्रसे युक्त घृत अग्निमें प्रवेश करता है। जो नरक भयके छोड़ानेवाले और संसार सागरसे पार करनेके निमित्त नौका स्वरूप हैं; उस विष्णु भगवानको बार बार प्रणाम है। जो गऊ ब्राह्मण और सब जगत्के हितकारी हैं, उस जगत् त्राणकर्त्ता ब्रह्मण्यदेव कृष्ण भगवानको बारम्बार प्रणाम है। "हरि"—इन दो अचरोंसे युक्त नाम प्राणियोंको कठिन मार्गोंसे भी पार करता है, यह संसार सागरके तरनेका उपाय और शोक दुःखको नाश करनेवाला है। जब कि सत्य विष्णुमय जगत् विष्णुमय और सब वस्तु विष्णुमय हैं तब मेरा चित्त भी विष्णुमय होके पापरहित होवे। हे पुण्डरीकाक्ष! हे सुरसत्तम! यह भक्त अभिलषित गति पानेको इच्छासे सब भांतिसे एकमात्र तुम्हारा ही शरणागत हुआ है, इस समय जिसमें मङ्गल हो; आप उसी का विचार कीजिये।

हे जनार्द्दन! तुम विद्या और तपस्याके कारणस्वरूप विष्णु हो, आप मेरे स्तुति-वचनरूपी यज्ञसे पूजित होके तृप्त तथा प्रसन्न हूजिये; वेद, तपस्या और देवता इत्यादि जो कुछ वस्तु है, वह सबही नित्य-नारायण रूप हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुकुल शिरोमणि भीष्मने इतना वचन कहके उनमें चित्त लगाके श्रीकृष्णको प्रणाम किया। तब उस समय श्रीकृष्ण भगवानने योगप्रभावसे भीष्मके शरीरके भीतर प्रवेश कर उन्हें भक्ति और त्रिकाल दर्शन ज्ञान प्रदान करके फिर निज शरीरमें आगमन किया। महाबुद्धिमान भीष्मके वचन समाप्त होनेपर मुख्य मुख्य ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोगोंने वचनसे उनकी पूजाकी। अनन्तर वे लोग पुरुषोत्तम कृष्णकी स्तुति करके मृदु स्वरसे बार बार भीष्मकी प्रशंसा करने लगे।

इधर पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र योगबलसे भीष्मकी भक्तिके विषयको जानके अत्यन्त आनन्दके सहित सहसा उठके रथपर चढ़े। यदुवीर सात्यकि कृष्णके रथपर चढ़के उनके सङ्ग गमन करनेमें प्रवृत हुए। महात्मा युधिष्ठिर और अर्ज्जुन एक रथपर और भीमसेन तथा माद्रीपुत्र नकुल सहदेव एक दूसरे रथपर चढ़के गमन करने लगे। पुरुषश्रेष्ठ शत्रुनाशन कृपाचार्य्य, युयुत्सु, और सूतकुलमें उत्पन्न हुए सञ्जयने एक बहुत बड़े रथपर चढ़के रथ शब्दसे पृथ्वीको कंपाते हुए प्रस्थान किया। मधुसूदन पुरुषसिंह कृष्णने गमन करनेके समय मार्गमें कितने ही ब्राह्मणोंके अनेक भांतिके स्तुतियुक्त वचनको सुनके तथा कितने ही पुरुषोंको विनीतभावसे स्थित देखकर आनन्दके सहित उन लोगोंको प्रसन्न किया।

४७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! इसी भांति श्रीकृष्णचन्द्र, भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिर और कृपाचार्य्य आदि सब कोई शीघ्रगामी घोड़ों और ध्वजा पताकाओंसे युक्त नगरके समान रथोंपर चढ़के कुरुक्षेत्रकी ओर गमन करने लगे। युधिष्ठिर आदि महारथी लोग जहांपर महात्मा क्षत्रियोंने युद्धमें प्राण-

त्याग किया था; उस प्रेत-राक्षसोंसे सेवित, यमराजके स्थान तथा श्मशानभूमिके समान कुरुक्षेत्रमें पहुंचके किसी किसी स्थानोंमें ढेरके ढेर केश, मज्जा और हड्डी आदिक तथा कहीं कहीं मरे हुए हाथी घोड़ोंके शरीर और हड्डियोंको पर्व्वतके समूहके समान देखने लगे; और कहीं वर्म्म और टूटे शस्त्रोंके समूह तथा कहींपर सहस्रों चिता दीख पड़ती थीं; और कहींपर शङ्खके समान मनुष्योंके सिरकी सफेद खोपड़ियोंको देखते हुए शीघ्रताके सहित आगे गमन करने लगे। मार्गमें जाते हुए यदुनन्दन कृष्णने युधिष्ठिरसे जमदग्निपुत्र परशुरामके पराक्रमका विषय वर्णन करना आरम्भ किया।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाराज! भृगुनन्दन परशुरामने जिस स्थानपर युद्धमें क्षत्रियोंके रुधिरसे पाच तालाबोंको भरके पितरोंका तर्पण किया था। ये वेही पाचो रामह्रद दूरसे दीख पड़ते हैं। महात्मा परशुराम इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके अब इस क्रूर कर्म्मसे विरक्त हुए हैं।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे यदुकुलश्रेष्ठ! हे अमित पराक्रमी! तुमने जो परशुरामजीके इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेकी कथा कही; उससे मुझे अत्यन्त ही संशय उत्पन्न हुआ है। यदि परशुरामने अपने शस्त्ररूपी अग्निमें सब क्षत्रिय बीज ही भस्म कर दिया, तो फिर किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई? और करोड़ों क्षत्रियोंने महाघोर रथ युद्धमें मरके अपने मृत शरीरोंसे पृथ्वीको परिपूरित किया, महात्मा परशुरामं भगवानने अकेले ही किस प्रकार क्षत्रियकुलका नाश किया; और फिर किस भांति उनकी वृद्धि हुई? हे कृष्ण! भृगुनन्दन परशुरामने कुरुक्षेत्रके बीच किस कारणसे क्षत्रियकुलका नाश किया? हे वार्ष्णेय! हे गरुड़ध्वज! तुम मेरे इन सब संशयोंको दूर करो; तुम्हारा वचन मैं वेदसे भी श्रेष्ठ समझता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सर्व्वशक्तिमान गदा पद्मधारी भगवान कृष्णने जिस प्रकार पृथ्वी क्षत्रियोंके मृत शरीरोंसे परिपूर्ण हुई थी, उस वृत्तान्तको महाबलवान धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप यथार्थ रूपसे वर्णन करनेमें प्रवृत्त हुए।

४८ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! मैंने महर्षियोंके मुखसे भृगुनन्दन परशुरामके जन्म और उनके पराक्रम विषयक कथाको जिस भांति सुनी है; वह सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो। "उन महात्मा परशुरामजीने जिस प्रकार करोड़ों क्षत्रियोंका बध किया था और ये सब क्षत्रिय जिस भांति फिर राजवंशमें उत्पन्न हुए अर्थात् जो लोग उस समय भारतयुद्धमें मरे थे, उनकी पुनरुत्पत्तिका वृत्तान्त भी कहूंगा। पहिले समयमें जन्हु नाम एक राजा थे; अज नाम उनके एक पुत्र हुआ; अजके पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्वके कुशिक नाम एक धर्म्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ कालके अनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी महात्मा कुशिकने विचारा, कि मेरे सब प्राणियोंसे अजेय त्रिलोकेश्वरके समान एक पुत्र उत्पन्न हो,—ऐसी इच्छा करके महाराज महात्मा कुशिक तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। सहस्र नेत्रवाले भगवान इन्द्रने महात्मा कुशिककी कठोर तपस्या देखकर तथा उन्हें अभिलषित पुत्र लाभके यथार्थ अधिकारी समझके स्वयं ही उनका पुत्र होना स्वीकार किया। महाराज! देवोंके राजा भगवान इन्द्र महात्मा कुशिकके पुत्ररूपसे जन्म लेकर गाधि नामसे विख्यात हुए। कुछ समयके अनन्तर महात्मा गाधिके सत्यवती नाम

की एक कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याको उन्होंने भृगुनन्दन महात्मा ऋचीकको प्रदान किया। महात्मा ऋचीकने निज भार्य्याके शुद्ध व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर उसके और गाधिराजके पुत्र उत्पन्न होनेके वास्ते यत्नसे दो चरु उत्पन्न किये। अनन्तर अपनी स्त्रीको समीप बुलाके उससे बोले, हे कल्याणी! इन दोनों चरुओंको ग्रहण करो। इसमेंसे यह चरु अपनी माताको देना और इस चरुको तुम भक्षण करना। ऐसा होनेसे तुम्हारी माताके सब शस्त्रधारी प्राणियोंसे अजेय, क्षत्रियोंमें अग्रगण्य अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा; वह पुत्र पृथ्वीके सब क्षत्रियोंको दमन करनेवाला होगा। और इस दूसरे चरुके प्रभावसे तुम्हारे भी धृतिमान शान्तस्वभाववाला महातपस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा।

भृगुनन्दन ऋचीकने भार्य्यासे इतनी कथा कहके तपस्या करनेके वास्ते वनके बीच गमन किया। उसी समय गाधिराज तीर्थयात्रा करते हुए स्त्री सहित महात्मा ऋचीकके आश्रममें उपस्थित हुए। उन दोनोंको निज आश्रममें आया हुआ देखके ऋचीक-पत्नी सत्यवतीने दोनों चरुओंको लेकर हर्ष पूर्व्वक माताके समीप गमन करके दोनों ही भाग उसके हाथमें देकर स्वामीके कहे हुए सब वृत्तान्तको वर्णन किया। गाधिराजकी स्त्रीने भ्रमसे अपना चरु कन्याको देकर उसके चरुको आप भक्षण किया। अनन्तर सत्यवतीने क्षत्रियोंको नाश करनेवाला, अग्निके समान प्रकाशमान अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र गर्भमें धारण किया। उस समय भृगुशार्दूल भगवान ऋचीक वहांपर आके उपस्थित हुए और योग प्रभावसे निज-भार्य्या देवरूपिणी सत्यवतीके गर्भस्थ पुत्रको देखके उससे कहने लगे,—हे भद्रे! चरु अदल बदल होनेके कारण तुम अपनी मातासे ठगी गई; इस कारण तुम्हारा पुत्र क्रूर स्वभाव और क्रूरकर्म्मोंका करनेवाला होगा और तुम्हारी माताके गर्भसे अत्यन्त तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। इसका कारण यह है कि तुम्हारा चरु ब्रह्मतेजसे परिपूर्ण था, और तुम्हारी माताके चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रिय तेज परिपूरित था; परन्तु उसके उलट फेर होनेसे पुत्रभी तुम दोनोंके बिपरीत होंगे अर्थात् तुम्हारे गर्भसे क्षत्रिय और तुम्हारी माताके गर्भसे ब्राह्मण लक्षण युक्त पुत्र उत्पन्न होगा। तब सत्यवती स्वामीके मुखसे ऐसा वचन सुनके पृथ्वीमें गिर पड़ी और कांपती हुई विनय पूर्व्वक उनसे यह वचन बोली। हे भगवन् "तुम्हारे ब्राह्मणाधम पुत्र उत्पन्न होगा।" आप मेरे विषयमें ऐसा वचन न प्रयोग करिये; क्यों कि आप तपके प्रभावसे सब विषयोंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं।

ऋचीक मुनि बोले, हे भद्रे! तुम यह मत समझो, कि मैंने पहिलेसे ही तुम्हारे वास्ते ऐसा सङ्कल्प किया था; केवल चरु बदलनेसे ही तुम्हारे गर्भसे कठोर कर्म्म करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा।

सत्यवती बोली, हे भगवन्! उत्तम पुत्र उत्पन्न होनेकी बात ही क्या है! आप इच्छा करनेसे तीनों लोकोंको फिरसे उत्पन्न कर सकते हैं; इससे कृपा करके मेरे गर्भसे एक शम परायण शान्त स्वभाव युक्त पुत्र उत्पन्न करिये।

ऋचीक मुनि बोले, हे कल्याणि! यज्ञकी अग्निसे चरु प्राप्त करनेकी बात तो बहुत दूर है, मैंने कभी परिहासके मिससे भी मिथ्या वचन नहीं कहा है। विशेष करके तुम्हारे पिताके कुलमें जो शम परायण ब्रह्मज्ञ पुत्र उत्पन्न होके अपने सब कुलको ब्राह्मण धर्म्मावलम्बी करेगा; उसे मैंने पहिलेसे ही तपस्याके प्रभावसे जान लिया था।

सत्यवती बोली, हे भगवन् आपने जो कभी भी मिथ्या वचन नहीं कहे, इसे मैं स्वीकार

करता हूं परन्तु पुत्र और पौत्रमें कुछ भी विशेष अनन्तर नहीं है; इससे आपकी कृपासे मेरा पौत्र क्षत्रियधर्म्म युक्त क्रूर-कर्म्मोंका करनेवाला और मेरा पुत्र शमपरायण ब्रह्मनिष्ठ होवे।

महात्मा ऋचीक मुनि बोले, हे वरवर्णिनि! पुत्र और पौत्रमें जो विशेष अनन्तर नहीं है, मैं इस वचनको स्वीकार करता हूं; इससे तुमने जैसी अभिलाषाकी है, वैसा ही होगा।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! समय पूरा होने पर ऋचीकपत्नी सत्यवतीके जमदग्नि नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पुत्र तपस्यामें रत इन्द्रिय जीतनेवाला और शान्त प्रकृतिवाला हुआ था, इधर कुशिकपुत्र महात्मा गाधिराजके भी ब्राह्मणलक्षण युक्त विश्वामित्र नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कुछ दिनोंके अनन्तर क्रमसे ब्रह्मत्व प्राप्त करके सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच ब्रह्मर्षि कहके विख्यात हुए थे।

तिसके अनन्तर ऋचीक-पुत्र तपस्वी जमदग्निके एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। युवा अवस्था प्राप्त होनेपर वह अग्निके समान अत्यन्त तेजस्वी होकर धनुर्व्वेद आदि सर्व्वविद्या पढ़के क्षत्रियनाशक राम नामसे सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच विख्यात हुए, उन्होंने गन्धमादन पर्व्वत पर जाके कठिन तपस्यासे महादेवको प्रसन्न करके तीक्ष्ण धारसे युक्त परशु और दूसरे सब अस्त्र शस्त्रोंको प्राप्त किया; और जलती हुई अग्निके समान तीक्ष्ण धारवाले प्रचण्ड फरसेसेही वह सब लोकोंके बीच अद्वितीय वीर योद्धा कहके विख्यात हुए। उस समय हैहय देशमें कृतवीर्य्यपुत्र सहस्रबाहु अर्ज्जुन नाम एक महाबली राजा थे। उस धर्म्मात्मा महातेजस्वी अर्ज्जुनने महर्षि दत्तात्रेयकी कृपासे निज अस्त्र और बाहुबलके प्रभावसे सब पृथ्वी जय करके चक्रवर्त्ती राज्य प्राप्त किया और अश्वमेध यज्ञमें पर्व्वत वन और सात द्वीपवाली पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान की। किसी समयमें अग्निदेवने भूखे होकर तृण काष्ठ आदि वस्तुओंको भस्म करनेकी अभिलाषासे राजा सहस्रबाहु अर्ज्जुनके समीप आके प्रार्थना की; उन्होंने अग्निदेवको वन पर्व्वतोंके सहित ग्राम नगर और राज्य समर्पण किया; उससे अग्नि भगवानने अत्यन्त प्रसन्न होकर महातेजस्वी पुरुषेन्द्र कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनके प्रभावसे उनके बाणके अग्रभागसे प्रकट होके पर्व्वतोंके सहित सम्पूर्ण वनस्पतियोंको भस्म कर दिया। अग्निने हैहयराजकी सहायता पाके तथा वायुके प्रभावसे बढ़के निर्ज्जन स्थानमें स्थित महातेजस्वी महात्मा महर्षि वशिष्ठ मुनिके मनोहर आश्रम पर्य्यन्तको भी भस्म कर दिया। महाराज! इसी प्रकार कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनके प्रभावसे निज आश्रमको भस्म हुआ देखकर महातेजस्वी वशिष्ठ मुनिने उसे शाप दिया। हे अर्ज्जुन! तुमने जो मेरे इस वन और आश्रमको भस्म किया है; इस अपराधके कारण परशुराम तुम्हारे सब हाथोंको काटेंगे। महात्मा वशिष्ठ मुनिके शाप देनेपर भी महापराक्रमी शमपरायण, ब्रह्मनिष्ठ, शरणागत पालक, दानी महातेजस्वी बलवान सहस्रबाहु अर्ज्जुनने उनके शापकी कुछ भी परवाह न की। परन्तु, राजा सहस्रबाहु अर्ज्जुनके बलवान पुत्र ही उनके बधके कारण होगये, अर्थात् वे लोग शाप प्रभावसे अभिमानमें मत्त होकर दुष्टताके सहित परशुरामकी अनुपस्थितिमें महर्षि जमदग्निके होमकी गऊके बछड़े हर ले गये। परन्तु यह कार्य्य हैहयराजको अजानकारीमें हुआ था, तौभी महात्मा जमदग्नि मुनिके सङ्ग उनको महाघोर विरोध उपस्थित हुआ। उसी समय परशुराम युद्धमें प्रवृत्त होकर सहस्रबाहु अर्ज्जुनकी सब भुजाओंको काटके राजभवनके भीतर स्थित अपनी गौओंके बछड़ोंको लेकर अपनी कुटीपर लौट आये।

तिसके अनन्तर किसी समय यशस्वी परशु-राम कुश और काष्ठ लानेके निमित्त वनमें गये थे, उसी समयमें सहस्रबाहु अर्जुनके मूर्ख पुत्रोंने उनकी अवज्ञा की; और उनने एकत्रित होके महात्मा जमदग्नि ऋषिके आश्रममें गमन करके भालेसे उनका सिर काट डाला। भृगु-कुलसिंह महातेजस्वी परशुराम पिताके वधसे अत्यन्त कुपित हुए और क्रोधसे व्याकुल होकर उन्होंने प्रतिज्ञा करके अस्त्र ग्रहण किया, कि "मैं इस सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करूंगा।"—अनन्तर महात्मा परशुरामने अपना पराक्रम प्रकाशित करके युद्धमें कार्त्त-वीर्य्य अर्जुनके पुत्र और पौत्रोंको शीघ्र ही मार डाला। महाराज! अनन्तर भृगुनन्दन परशु-रामने क्रुद्ध होके युद्धमें हैहयवंशीय सहस्रों क्षत्रियोंका वध करके उनके रुधिरसे पृथ्वीको कीचड़मय कर दिया। तिसके अनन्तर महात्मा परशुराम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे सूनी करके अत्यन्त कृपायुक्त होकर वनमें चले गये; वनमें तपस्या करते हुए पर-शुरामको कई हजार वर्ष बीत गये। तब विश्वामित्र-पौत्र रैभ्यके पुत्र महातपस्वी परा-वसु जनसमाजके बीच परशुरामकी निन्दा करके उनसे यह वचन बोले, हे राम! स्वर्गसे पतित हुए ययाति राजाके निमित्त जो यज्ञ हुआ था, और उस यज्ञमें जो प्रतर्द्दन आदि राजा आके एकत्रित थे, वे क्या क्षत्रिय नहीं हैं? तुमने जो जनसमाजके बीच पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेकी प्रतिज्ञा करके अपनी बड़ाई की थी; तुम्हारी वह सब प्रतिज्ञा मिथ्या हुई! क्यों कि इस समय पृथ्वी फिर अनगिनत क्षत्रियोंसे परिपूर्ण है; हम लोगोंने समझा किया, कि तुम इन सब वीरोंके भयसे ही इस पर्वतपर आके निवास कर रहे हो। महाराज! क्रुद्ध स्वभाव वाले भगवान परशुरामने परावसुके ऐसे निन्दायुक्त वचनोंका सुनके अपना अपमान समझकर फिर शस्त्र ग्रहण किया। जो क्षत्रिय पहिली बारके युद्धमें किसी भांति जीवित बच गये थे, उन्हीं महाबलवान क्षत्रियोंसे ही क्षत्रिय वंश बढ़ा, और धीरे धीरे वेही सब क्षत्रिय सन्तान सारी पृथ्वीके राजा होगये थे। भृगुनन्दन परशु-रामने फिर शीघ्र ही युद्धभूमिमें उपस्थित होके बालकों तथा पुत्र पौत्रोंके सहित सब क्षत्रियोंको मारडाला।

तिसके अनन्तर जो बालक गर्भमें थे, उन्हीं सब क्षत्रियपुत्रोंसे पृथ्वी फिर परिपूरित होगई, परशुरामजीने इस वृत्तान्तको सुनते ही फिर आके उनका वध किया। महाराज! इसी भांति जब जब क्षत्रियोंके पुत्र गर्भसे उत्पन्न होके बढ़ते थे, तब तब परशुराम वनसे आके उनका संहार करते थे, परन्तु उस समय बहुतसे क्षत्रियोंकी स्त्रियोंने अति कौशलके सहित अपने गर्भकी रक्षा की थी। इधर महातेजस्वी भग-वान परशुरामने क्रमसे इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया और दक्षिणामें कश्यप मुनिको सारी पृथ्वी दान कर दी। महर्षि कश्यपने क्षत्रिय बालकोंकी रक्षाकरनेकी अभिलाषासे हाथमें स्रुवा लेकर पृथ्वीका दान ग्रहण करके परशु-रामसे कहा, हे राम! इस समय यह पृथ्वी मेरी हुई है; अब इस पृथ्वीपर वास करना तुम्हें उचित नहीं है, तुम शीघ्रही दक्षिण समु-द्रके तीर गमन करो। इधर समुद्रने महात्मा परशुरामके निमित्त पृथ्वी सीमाको त्यागके अपने उदरमें शूर्पारक नाम स्थान बना रक्खा। महर्षि कश्यप परशुरामसे सब पृथ्वी दान लेकर ब्राह्मणोंको समर्पण करके निज स्थानमें चले गये। महाराज! जब पृथ्वी राजासे रहित हो गई, तब बलवान पुरुष निर्बल पुरुषोंको दुःख देने लगे, शूद्र, वैश्य आदिक इच्छानुसार ब्राह्म-णोंकी स्त्रियोंसे अधर्म करने लगे, अधिक क्या

कहा जावे, उस समय डाकुओंके उपद्रवसे किसी को भी अपने धन पर अधिकार तथा प्रभुता न रही। इसी भांति समयकी गति विपरीत होनेपर पृथ्वी धर्म्म-पालक क्षत्रियोंसे यथारीति न रक्षित होनेके कारण दुष्टोंके भारसे अत्यन्त दुःखित होके पातालमें जानेके निमित्त उद्यत हुई। महातपस्वी कश्यप मुनिने पृथ्वीको पातालमें गमन करनेके वास्ते उद्यत देखकर उसे उरु पर धारण किया, पृथ्वी कश्यप मुनिके उरु पर धारण होनेके कारण उर्व्वी नामसे विख्यात हुई। अनन्तर पृथ्वीने अपनी रक्षाके वास्ते महात्मा कश्यपको प्रसन्न करके धर्म्मात्मा राजाकी प्रार्थना की। पृथ्वी बोली, हे ब्रह्मन्! कितनी ही स्त्रियोंसे क्षत्रिय सन्तान उत्पन्न होके मुझसे रक्षित होकर गुप्तरीतिसे निवास कर रहे हैं, मैं तुम्हारे समीप उनके कुल और गोत्रका वर्णन करती हूं आप सुनके मेरी रक्षाका उपाय करिये। कितने हो हैहयवंशीय धर्म्मात्मा क्षत्रिय जीवित है, पुरुवंशीय विदूरथ पुत्र ऋक्षवान पर्व्वत पर रीछोंसे रक्षित होकर वहां पर निवास कर रहा है। सौदास राजपुत्र जिसकी पराशर मुनिने कृपा करके रक्षाकी है; वह भी जीवित है; परन्तु उसके संस्कार आदि सब कर्म्म शूद्रजातिकी भांति किये गये है, इसीसे अब वह सर्व्व-कर्म्मा नामसे विख्यात है। शिविपुत्र महातेजस्वी गोपति वनके बीच गौवोंके दूधसे प्रतिपालित होकर जीवित है। प्रतर्द्दनपुत्र महाबलवान वत्स गौवोंके समूहमें बछड़ोंके साथ मिलके गौवोंका दूध पीके प्राण धारण करता है। गङ्गाके किनारे गौतम-वंशीय किसी ब्राह्मणने कृपा करके दधिवाहन-पौत्र दिविरथके पुत्रकी रक्षा की है। महर्षि भूरिभूतिने महातेजस्वी बृहद्रथका संस्कार आदि कर्म्म किया है, वह भाग्यवान बालक गृध्रकूट पर्व्वत पर गोलाङ्गूलोंसे रक्षित होकर प्राण धारण करता है। इन्द्रके समान पराक्रमी कितने ही मरुत्तवंशी क्षत्रिय भी जीवित हैं; समुद्रने उन लोगोंकी रक्षा की है। हे ब्रह्मन्! ये सब क्षत्रिय पुरुष आके दुष्ट डाकुओंसे मेरी रक्षा करें। हे विप्र! मैंने जिन क्षत्रियोंका वृत्तान्त कहा है, वे सब प्राणभयसे अपने कहे हुए स्थानोंमें गुप्त रीतिसे निवास कर रहे हैं; इसके अतिरिक्त कितनेही बढ़ई और सोनारोंके घरोंमें वेष बदलके बहुतसे क्षत्रिय पुरुष विद्यमान हैं। यदि ये सब श्रेष्ठ कुलोंमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय पुरुष आके मेरी रक्षा करें, तो मैं अवश्य ही स्थिरताके सहित स्थित होऊंगी। देखिये, इन क्षत्रियोंके पिता, पितामह आदि सब पुरुष मेरे ही निमित्त कठिन कर्म्मोंके करनेवाले परशुरामके हाथसे मारे गये हैं; इससे मैं अवश्य ही उनके कुलमे उत्पन्न हुए तथा मरनेसे बचे हुए और धुरीण पुत्र पौत्रोंको अपना स्वामी स्वीकार करके उन मृत राजाओंके ऋणसे मुक्त होऊंगी। हे महर्षि! अधिक क्या कहूं, मैंने जो कुछ वचन कहा यदि वैसा ही हो, तो मैं स्थिरताके सहित निवास कर सकती हूं; परन्तु मर्य्यादारहित दुष्ट पुरुषों तथा डाकुओंसे रक्षित होना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करूंगी; इससे आप शीघ्रताके सहित उन राजपुरुषोंको राज्यपद पर प्रतिष्ठित करनेका उपाय करिये।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! तिसके अनन्तर महात्मा कश्यप मुनिने पृथ्वीके वचनको सुनके उन बलवीर्य्यसे युक्त सब क्षत्रिय पुत्रोंको लाके राज्यपदपर अभिषिक्त किया। जिन राजाओंके पुत्र पौत्र आदि जीवित थे, इसी भांति उन लोगोंका वंश फिर राजपदपर प्रतिष्ठित हुआ। हे राजेन्द्र! तुमने मुझसे जो कुछ प्रश्न किये, मैंने वह सब वृत्तान्त यथारीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! इसी भांति यदुकुल श्रेष्ठ महात्मा श्रीकृष्ण-

अनन्तर धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रणी राजा युधिष्ठिरसे प्राचीन कथा कहते हुए सूर्य्य किरण समान प्रकाशमान रथसे सब दिशाओं प्रकाशित करते तथा वायुके समान वेगगामी रथपर चढ़े हुए गमन करने लगे।

४९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिर भृगुकुल शिरोमणि परशुरामजीके अद्भुत कर्म्मोंको सुनके अत्यन्त ही विस्मित हुए और जनार्द्दन कृष्णसे बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! मैं इन्द्रके समान अत्यन्त पराक्रमी परशुरामके पराक्रमकी कथा सुनके अत्यन्त ही आश्चर्य्य युक्त हुआ हूं, क्यों कि उन्होंने क्रुद्ध होकर अकेले ही सब पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर दिया था। यह भी अत्यन्त ही आश्चर्य्यका विषय है, कि मरनेसे बचे हुए क्षत्रिय सन्तानोंने परशुरामके भयसे व्याकुल होकर गऊ, गोलांगूल ऋच्छ, बन्दर और समुद्रके आसरेसे अपनी प्राणरक्षा की थी। अहा! इस जीव लोकको धन्य है और इस पृथ्वीके मनुष्योंको भी धन्य है। क्यों कि ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य महर्षि कश्यपने इस प्रकार धर्म्म कार्य्य किया है, अर्थात् कृपा करके राजपुत्रोंकी रक्षा करके पृथ्वीको धर्म्मपूर्व्वक रक्षित किया है। महाराज! श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर इसी भांति वार्त्तालाप करते हुए चलते चलते सात्यकि आदि वीरोंके सहित उस स्थानपर जा पहुंचे, जहां गङ्गानन्दन भीष्म शरसय्यापर शयन कर रहे थे। उन लोगोंने वहांपर पहुंचके देखा, कि बहती हुई नदीके किनारे परम पवित्र स्थानमें शरशय्यापर स्थित महात्मा भीष्म मानो अपने तेजसे सन्ध्या कालके सूर्य्य समान प्रकाशित होरहे हैं।

अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान, कृपाचार्य्य और भीम-अर्जुन आदि पुरुषश्रेष्ठ और भगवान इन्द्रकी उपासना करनेवाले देवतोंकी भांति मुनियोंसे पूजित भीष्मको दूरसे ही देखके सब कोई रथसे उतरे, और सब इन्द्रियों तथा चञ्चल चित्तको संयम करके पहिले मुख्य मुख्य मुनियों तथा व्यास आदिक ऋषियोंको प्रणाम करके फिर गङ्गानन्दन भीष्मकी उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए। तिसके अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ यादव और कौरव लोग महातपस्वी गङ्गानन्दन भीष्मका दर्शन करके उनके चारोंओर बैठ गये, तब यदुनन्दन कृष्ण शान्त होती हुई अग्निकी भांति भीष्मको क्रमशः शान्त भावसे देखकर किञ्चित् दीन चित्तसे बोले,—हे वक्तावरोंमें श्रेष्ठ! इस समय आपका चित्त पहिलेकी भांति प्रसन्न तो है? आपकी बुद्धि व्याकुल तो नहीं हुई है? बाणोंके चोटकी पीड़ासे आपका शरीर पीड़ित तो नहीं है? क्योंकि मानसिक दुःखोंसे भी शारीरिक क्लेश प्रबल होते हैं। मैं जानता हूं, कि आप निजपिता महाराज शान्तनुके वर-प्रभावसे इच्छानुयायी मृत्यु प्राप्त करनेमें समर्थ हुए हैं! अधिक क्या कहूं, आपने जिस प्रकार पिताको सन्तुष्ट करके इच्छामरण वर प्राप्त किया है; वैसा पितृसन्तोष रूपी कारण हम लोगोंमें विद्यमान नहीं है। तथापि जब कि मनुष्य शरीरमें एक कांटेके गड़जानेसे भी शरीरको क्लेश होता है तब अनगिनत बाणोंकी चोटसे जो आपके शरीरमें पीड़ा होगी इसमें क्या आश्चर्य्य है? परन्तु इसमें अवश्य ही स्वीकार करूंगा, कि ऊपर कहे हुए सुख दुःख साधारण पुरुषोंको ही आक्रमण कर सकते हैं; आप ऐसे पुरुषोंको क्लेश आदिक कदापि मोहित तथा दुःखित नहीं कर सकते; क्योंकि आप प्राणियोंकी उत्पत्ति और लय आदि सम्पूर्ण तत्वोंका देवताओंको भी उपदेश करनेमें समर्थ हैं। हे भरतर्षभ! आप इस पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। अधिक क्या कहूं, भूत, वर्त्तमान और भविष्य

इन तीनों कालोंके जो कुछ जानने योग्य विषय हैं, आप उन सब वृत्तान्तोंको जानते हैं। हे महाबुद्धिमान ! धर्म्मके फलोंकी प्राप्ति और प्राणियोंका संहार यह सब आपको विदित है; क्यों कि आप धर्म्मात्मा और धर्म्मके आधार स्वरूप हैं। हे कुरुश्रेष्ट ! दार-परित्याग रूपी प्रतिज्ञाके पहिले भी जब कि आप वैसे समृद्धि-युक्त राज्यके बीच सहस्रों स्त्रियोंके बीच घिरे रहते थे, उस समय भी मैंने आपको रोग रहित शरीरसे युक्त ऊर्द्ध्वरेता ब्रह्मचारी पुरुषके समान देखता था। धर्म्मपरायण सत्यनिष्ठ महाबली पराक्रमी शान्तनुपुत्र भीष्मके अतिरिक्त तीनों लोकके बीच दूसरे ऐसे किसी प्राणीका भी प्रभाव नहीं सुना गया, जो शरशय्यापर शयन करके तपके प्रभावसे मृत्युको इच्छानुसार निवारण कर रखे ? भरतकुल शिरोमणि ! सत्य, तपस्या, दान युद्ध, यज्ञ, धनुर्वेद, वेद और शरणागतको पालन करनेवाला आपके समान दूसरा कोई भी पुरुष नहीं है ; और अनृशंसता, पवित्र स्वभाव, इन्द्रिय-संयम, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाला और युद्धमें अद्वितीय रथी हो आपके समान इस पृथ्वीपर दूसरा कौन है ? आप जो अकेले ही युद्धमें देवता, गन्धर्व्व, असुर, यक्ष और राक्षसोंको पराजित करनेमें समर्थ हैं, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वसु अंशसे जन्म ग्रहण करनेसे यद्यपि ब्राह्मण लोग आपको गणना नवम वसुमें करते हैं, तौभी निज गुणोंके प्रभावसे आप सब वसुओंसे भी श्रेष्ठ होकर इन्द्रकी समानताको पहुंचे हैं। हे पुरुष सत्तम ! आप निज पराक्रमके प्रभावसे देवलोकमें भी विख्यात हुए हैं ; आपके ज्ञान और सामर्थ्यके विषय आदि मुझसे कुछ भी छिपे हुए नहीं हैं। हे पुरुषेन्द्र ! इस पृथ्वीपर आपके समान गुणशाली कोई पुरुष विद्यमान है, ऐसा न कहीं देखा गया और न कहींपर सुननेमें ही आया।

हे पुरुषोत्तम ! आप सब गुणोंमें देवताओंसे भी श्रेष्ठ हुए हैं और निज तपस्याके प्रभावसे चराचर प्राणियोंकी नयी सृष्टि भी करनेमें समर्थ हैं। ऐसे समयमें आप जो उत्तम गुणोंके प्रभावसे अपने गमन करने योग्य उत्तम लोकको प्राप्त करेंगे ; उसमें सन्देह ही क्या है। इससे आप इस समय निज उपदेशसे स्वजन-नाश शोकसे व्याकुल पाण्डवोंमें जेठे महाराज युधिष्ठिरका शोक दूर करिये। क्यों कि चारों वर्ण; चारों आश्रम, चारों विद्या, चातुर्होत्र, वेद, सांख्य, योग और शिष्टाचार आदि जो कुछ धर्म्म हैं, वे सब आपको विदित हैं ; अधिक क्या कहा जावे, जो चातुर्व्वर्णोंके विरुद्ध नहीं हैं, उन सब धर्म्मके गूढ़ तात्पर्य्य अर्थोंको व्याख्याके सहित आप जानते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिलोमजात वर्ण धर्म्म, जातिधर्म्म, देशधर्म्म और कुलधर्म्म आदि जो सब लक्षण वेद-शास्त्रोंमें वर्णित हैं, वे सब भी आपसे अविदित नहीं हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ ! अर्थ सहित निखिल धर्म्मशास्त्र और पुराण आदिकोंके सब तात्पर्य्य आपके मनमें विशेष करके इस संसारके बीच जिन विषयोंके अर्थोंमें संशय हैं ; उसे छेदन करनेवाला आपके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष होसक्ता है ? इससे आप अपने ज्ञानप्रभावसे धर्म्मराज युधिष्ठिरके मन उत्पन्न हुए शोकको दूर कीजिये, क्यों कि आपके समान ज्ञान वृद्ध पुरुषोंका जन्म केवल शोकादिकोंसे मोहित मनुष्योंके चित्तमें शान्ति स्थापित करानेके वास्ते होता है।

५० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज ! कुरु-कुल शिरोमणि भीष्म बुद्धिमान कृष्णके वचनको सुनके कुछ वदन झुकाके हाथ जोड़के उनसे बोले, हे भगवन् ! तुम ही इस जगत्‌को

उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले हो; इससे तुम्हें नमस्कार है। हे कृष्ण! हे विश्वकर्मन्! तुम्हीं इस जगत्‌की आत्मा हो, तुमसे ही यह संसार उत्पन्न हुआ है। हे हृषीकेश! तुम सम्पूर्ण लोकोंमें अजेय हो, तुम्ही सृष्टिकर्त्ता और संहर्त्ता हो। तुम, हो अपवर्ग अर्थात् नित्य मुक्त स्वरूप हो, तुम पञ्च महाभूतों और शब्द, स्पर्श, रूप रस गन्ध आदि पांचों गुणोंसे पृथक् हो। तुम स्वर्ग, मर्त्य लोक और पाताल इन तीनों लोकों और तीनों कालोंमें विद्यमान हो; तथापि इनसे भिन्न समझे जाते हो! इससे तुम्हें नमस्कार है। हे योगीश्वर! तुम सबके आश्रय स्वरूप हो, इसीसे तुम्हें प्रणाम है। हे पुरुषोत्तम! तुमने प्रसन्न होकर मेरे गुणोंका वर्णन किया है, उससेमुझे दिव्य-नेत्र प्राप्त हुआ है; जिसके प्रभावसे मैं त्रिलोक स्थित दिव्य भाव और आपके सनातन रूपका दर्शन करनेमें समर्थ हुआ हूं! तुम अत्यन्त तेजस्वी वायुरूपसे सप्तछिद्रोंको निरोध करके सबके हृदयमें स्थित हो। तुम्हारे शिरसे आकाश और चरणसे पृथ्वी व्याप्त है, दिशा तुम्हारी भुजा, सूर्य्य नेत्र और इन्द्र तुम्हारे पराक्रमके प्रभावसे प्रतिष्ठित हैं। हे अच्युत! तुम्हारा शरीर अतसीपुष्पके समान है, वह पीतवस्त्रोंसे युक्त होकर इस प्रकार शोभित होरहा है, जैसे आकाशमण्डलमें बिजलीसे युक्त बादलोंकी शोभा होती है! हे देवोंमें श्रेष्ठ! हे पुण्डरीकाक्ष! मैं तुम्हारा शरणागत भक्त हूं, मैं उत्तम गति पानेकी अभिलाषासे तुमसे प्रार्थना कर रहा हूं; इससे जिस प्रकार मेरा कल्याण होवे, आप उसीका विधान करिये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे कुरुनाथ! तुम जो कपटरहित होकर मेरी भक्तिमें तत्पर रहते हो, उसी कारण तुमने मेरी दिव्य मूर्त्तिका दर्शन किया है! भक्तिरहित, कपटी भक्त और शान्ति रहित पुरुष मेरी दिव्य मूर्त्तिका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होसकते; परन्तु तुम मेरे अत्यन्त ही भक्त और विनय सम्पन्न हो। विशेष करके तुम तपस्या, दया और दान आदि कर्म्मोंमें सदासर्व्वदा रत रहते हो; तुम्हारा स्वभाव अत्यन्त निर्म्मल है; तुम निज तपस्याके प्रभावसे मेरी दिव्य मूर्त्ति दर्शनके योग्यपात्र हो। हे भीष्म! जिस स्थानमें गमन करनेसे जीवोंकी पुनरावृत्ति नहीं होती, तुम्हें उसी स्थानमें मैं भेजूंगा परन्तु इस समय अभी तीस दिवस तुम्हारे जीवनका समय बाकी है; कार्य्योंको कर सकते हैं, आप तीस ही दिनोंमें उससे अधिक कर्त्तव्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करके उसे पूर्ण करनेमें समर्थ होंगे। इसके अनन्तर शरीर त्यागके अपने अभिलषित स्थानमें गमन कीजियेगा। यह देखिये, जलती हुई अग्निके समान वसु और देवता लोग विमानोंपर चढ़के अलक्षित भावसे सूर्य्यके उत्तरायण कालकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! तत्वज्ञानी पुरुष जिस लोकमें जाके फिर मर्त्यलोकमें नहीं आते; भगवान सूर्य्यके उत्तरायण होनेपर तुम शरीर त्यागनेके उपरान्त उस ही स्थानमें गमन करोगे। हे भीष्म! जब तुम इस लोकसे गमन करोगे, तब उस समय ज्ञान लुप्त प्राय होजायगा, उसी कारणसे ये सब कोई धर्म्म-जिज्ञासु होकर तुम्हारे समीप आके उपस्थित हुए हैं; उससे स्वजन-नाशरूपी शोकसे दुःखित सत्यवादी युधिष्ठिरको आप धर्म्म, अर्थ और समाधि, तथा योगयुक्त सत्य वचनोंका उपदेश करके इनका शोक दूर करिये।

५१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्मने श्रीकृष्णचन्द्रके धर्म्म अर्थ-युक्त लोक हितकर वचनको सुनके हाथ जोड़के उन्हें उत्तर दिया, हे जगन्नाथ! तुम साक्षात्

शिवस्वरूप अव्यय पुरुष नारायण हो; तुम्हारे वचनोंको सुनके मेरा हृदय आनन्दसे पुलकित होरहा है। जब कि इन एक विषयोंमें कहने योग्य जो कुछ वचन हैं, वे सब पहिलेसे ही तुम्हारे वचनरूपी वेदोंमें विद्यमान हैं; तब मैं तुम्हारे सम्मुख किस कथाका उपदेश करनेमें समर्थ होसकता हूं इस लोक और परलोकमें कल्याणकी अभिलाषा करके बुद्धिमान पुरुष जो कुछ कर्म्म करते हैं, और इस संसारमें जो कुछ करने योग्य कार्य्य हैं, वह सब तुमसे ही प्रकट हुए हैं; इससे जो पुरुष देवराज इन्द्रके समीप देवलोकका भी वृत्तान्त कहनेमें समर्थ है। वही पुरुष तुम्हारे सम्मुख धर्म्म अर्थ, काम और मोक्षके यथार्थ वृत्तान्तको कह सकेगा। हे मधुसूदन! मेरा शरीर बाणोंकी चोटसे अत्यन्त पीड़ित है, उससे मेरा चित्त व्याकुल होरहा है, मेरा सम्पूर्ण शरीर शिथिल होरहा है, मेरी बुद्धि चञ्चल है। हे गोविन्द! विष तथा वज्रके समान बाणोंकी चोटसे मेरे सब अङ्ग अत्यन्त ही पीड़ित होरहे हैं, इसी कारण मेरी बुद्धि इस प्रकार प्रतिभा-रहित होरही है, कि वचन कहनेमें प्रवृत्ति नहीं होती हैं। मेरा शरीर धीरे धीरे बलहीन हुआ जाता है,' प्राण शरीरसे बाहर हुआ चाहता है और मेरे मर्म्मस्थल इस प्रकार पीड़ित होरहे हैं, कि उससे बारम्बार मेरा चित्त भ्रमित होता है। जब कि निर्व्वलताके कारण मेरे मुखसे वचन भी बार बार नहीं बाहर होते हैं; तब मैं धर्म्म उपदेश करनेका किस प्रकार उत्साह कर सकता हूं? हे दाशार्ह कुलवर्द्धन कृष्ण! मैं तुमसे क्षमा प्रार्थना करता हूं, आप कृपा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये; मैं कुछ भी नहीं कह सकूंगा? विशेष करके तुम्हारे समीप उपदेश करनेमें वृहस्पति भी अवसन्न हो सकते हैं! हे मधुसूदन! मेरा चित्त इस प्रकार भ्रान्त हो रहा है, कि आकाश, पृथ्वी और दिशा भी मुझे विशेष रूपसे नहीं मालूम होती है; केवल तुम्हारे तेजके प्रभावसे जीवन धारण कर रहा हूं, इससे धर्म्मराज युधिष्ठिरका जिसमें हित हो; तुम स्वयं ही उस विषयका उपदेश करो; क्योंकि तुम वेद-शास्त्रोंके नियन्ता हो। हे कृष्ण! सब लोकोंके कर्त्ता नित्यपुरुषस्वरूप तुम निकटमें हो उप-स्थित हो, ऐसी अवस्थामें मेरे समान पुरुष किस प्रकार धर्म्मका वक्ता होसक्ता है? ऐसा होनेसे जैसे गुरुके उपस्थित रहते कोई शिष्य उपदेष्टा बने, मेरा उपदेश करना भी तुम्हारे समीप वैसा ही समझा जावेगा।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे गङ्गानन्दन भीष्म! तुमने जो कुछ वचन कहा, वह सब वचन स्वार्थदर्शी, स्थिर-प्रतिज्ञ, महापराक्रमशाली कौरव-शिरोमणि महात्मा भीष्मके योग्य ही है। तुमने जो बाणोंकी पीड़ाका वर्णन किया, उसके वास्ते मैं प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देता हूं,—अबसे शारीरक पीड़ा तथा दाह मूर्च्छा आदि किसी प्रकारकी पीड़ा और भूख प्यास आदिके क्लेश तुम्हारे चित्तको कदापि दुःखित न कर सकेंगे। हे पापरहित! इस समय तुम्हारे ज्ञानकी प्रतिभा पूरी रीतिसे प्रकाशित होगी; तुम्हारी बुद्धि अबसे किसी विषयमें भी भ्रमित न होगी। आजसे तुम्हारा चित्त रज और तमोगुणसे रहित होकर केवल सतोगुणमें, इस प्रकार स्थित होगा, जैसे चन्द्रमा मेघमण्डलसे मुक्त हो निर्म्मल ज्योतिसे युक्त होकर आकाशमें स्थित होता है। तुम जिस धर्म्म वा अर्थका विचार करोगे, वह विषय तुम्हारी बुद्धिमें पूर्ण रीतिसे प्रकाशित होगा। हे महापराक्रमी! तुम दिव्य चक्षुके सहारे चार प्रकारके प्राणियोंके सूक्ष्म सत्वोंको जान सकोगे, और वे सब निर्म्मल जलमें स्थित मछ-लियोंकी भांति जिस प्रकार इस संसारमें विच-रण कर रहे हैं; उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको भी

तुम भाग भेदके सहारे यथार्थ रूपसे देख सकोगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्ण भगवानने जब भीष्मको ऐसा वरदान किया, तब व्यासदेव आदिक ऋषियोंने ऋक् यजु और सामवेदके मन्त्रोंसे उनकी पूजा की; उस समय आकाशसे श्रीकृष्ण, गङ्गानन्दन भीष्म और धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऊपर सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फूलोंके समूहों की वर्षा होने लगी, नाना भांतिके बाजे बजने लगे और अप्सरा गीत गाती हुई नृत्य करने लगीं। उस समय वहांपर किसी प्रकारके अनिष्ट विषय नहीं दीख पड़े! सब प्रकारसे सुख जनक शीतल, मन्द और सुगन्ध युक्त वायु बहने लगा; सम्पूर्ण दिशा निर्म्मल हो गईं, मृग आदि पशु-पक्षी आनन्दित होके शान्त भावसे चारोंओर भ्रमण करने लगे। तिसके अनन्तर जैसे अग्नि भगवान बहुत बड़े वनको भस्म करके जङ्गलके एक भागमें दीख पड़ते हैं वैसे ही सहस्र किरणधारी भगवान सूर्य अपने प्रचण्ड तेजसे जगत्‌को तपाके पश्चिम दिशामें दीख पड़े। सूर्यको पश्चिम दिशामें देखकर महर्षि लोगोंने सन्ध्योपासना करनेके निमित्त सहसा उठके जनार्द्दन कृष्ण, गङ्गानन्दन भीष्म और धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप विदा होनेकी प्रार्थना की। महात्मा कृष्ण, पाण्डव लोग, सात्यकि, सञ्जय और कृपाचार्य्य आदि पुरुषोंने उन ऋषि मुनियोंको प्रणाम किया। धर्म्मात्मा ऋषि लोग कृष्ण आदि महात्मा पुरुषोंसे पूर्ण रीतिसे पूजित और सत्कृत होकर कलह हम लोग फिर आवेंगे, ऐसा वचन कहके निज निज अभिलषित स्थानोंपर चले गये। तब महात्मा कृष्ण और पाण्डव लोगोंने भीष्मको सम्बोधन करके उनकी प्रदक्षिणा की और फिर अपने उत्तम रथोंपर चढ़के प्रस्थान करनेके निमित्त तैयार हुए। उस समय सुवर्णमय सुन्दर ध्वजा पताकाओंसे शोभित रथ, गरुड़के समान शीघ्र गमन करनेवाले घोड़े और पर्व्वतके समान बड़े शरीर वाले हाथियोंके समूह सज्जित होनेपर गजसवार, रथी घुड़सवार निज वाहनपर और पैदल सेनाके योद्धालोग हाथमें धनुष ग्रहण करके उनके सङ्ग चलनेको तय्यार हुए। अनन्तर वह चतुरङ्गिनी सेना सज्जित होकर दो भागोंमें विभक्त हुई और भगवान कृष्ण तथा धर्म्मराज युधिष्ठिरके आगे पीछे होकर इस प्रकार गमन करने लगी, जैसे ऋक्षवान पर्व्वतके आगे पीछेसे परिक्रमा करती हुई महानदी नर्मदा गमन करती है। इधर भगवान चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे उस व्यूहबद्ध सेनाके पुरुषोंके चित्तको आनन्दित और प्रचण्ड प्रभाकर औषधियोंमें रस प्रदान करते हुए पूर्व्वदिशामें उदय हुए। तिसके अनन्तर यदुपति कृष्ण, सात्यकि और पाण्डव लोग इन्द्रपुरीके समान लक्ष्मीसे युक्त हस्तिना नगरीमें उपस्थित हुए; और जैसे थका हुआ सिंह पर्व्वतकी कन्दरामें प्रविष्ट होता है वैसे ही उन महात्मा पुरुषोंने उस राज-नगरीमें प्रवेश किया।

५२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर मधुसूदन कृष्णने राजभवनमें गमन करके उत्तम पलङ्गके ऊपर जाके शयन किया, और आधी रात बाकी रहते ही उठके पहिले इन्द्रियों और बुद्धिको स्थिर करके परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान किया। कुछ समयके अनन्तर मनोहर कण्ठ और स्वरोंसे युक्त शास्त्र और पुराणोंके जानने वाले वन्दीजन प्रजापति, विश्वकर्म्मा श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुति करने लगे। उस ही समय सहस्रों ढोल, मृदङ्ग शंख, बीन और बांसुरी आदि बाजे बजने लगे; गीत गानेवाले कोमल स्वरोंसे मीठे गीत गाने लगे। उस समय गीत और बाजोंके शब्दसे पूरित होकर भग-

वान कृष्णका शयनागार इस प्रकार बोध होता था, मानो ऊंचे स्वरसे हंस रहा है। इधर राजा युधिष्ठिरके निकट भी मङ्गल-जनक स्तुतिपाठ, बाजोंके शब्द और कोमल स्वरोंसे युक्त उत्तम गीत आदि सुनाई देने लगे। तिसके अनन्तर यदुकुल शिरोमणि महाबाहु श्रीकृष्ण-चन्द्र स्नान कर हाथ जोड़कर गुप्त मन्त्रोंका जप किया, और होम कार्य्य समाप्त करके राज मन्दिरके बाहर आये, उस समय चारों वेदोंके जाननेवाले एक हजार ब्राह्मण उनके समीप आकर उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण भगवानने उन हर एक ब्राह्मणोंको एक एक गऊ दान की; उन सम्पूर्ण ब्राह्मणोंने आनन्दित होकर दान ग्रहण करके उनका स्वस्तिवाचन किया। तब कृष्ण सम्पूर्ण मांगलिक वस्तुवोंको स्पर्श करके दर्पणमें अपने स्वरूपका दर्शन करके सात्यकिसे बोले, हे सात्यकि! महातेजस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिर भीष्मके दर्शनकी इच्छासे उनके समीप जानेके वास्ते तैयार हुए हैं, वा नहीं, तुम उनके मन्दिरमें जाके देख आओ।

सात्यकिने कृष्णकी आज्ञा सुनके धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप जाके यह बचन कहा, महाराज! बुद्धिमान कृष्णका रथ सज्जित है, वह गंगानन्दन भीष्मको देखनेकी इच्छासे तुम्हारी प्रतीक्षा करके स्थित हैं, इस समय जो कुछ कर्त्तव्य कार्य्य करना हो, उसे करिये।

धर्म्मराज युधिष्ठिर सात्यकिका बचन सुन कर अर्ज्जुनसे बोले, हे महा तेजस्वी अर्ज्जुन! तुम मेरे वास्ते उत्तम रथ सज्जित करनेकी आज्ञा दो। आज केवल हम लोग ही कई एक पुरुष महात्मा भीष्मके निकट जावेंगे, सेना ले चलनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि धर्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी महात्मा भीष्म पितामहको सेनाके कोलाहलसे क्लेश देना उचित नहीं है; इससे आज तुम सेनाको सङ्ग चलनेके वास्ते निषेध करो। भीष्म पितामह आजसे अत्यन्त गुप्त धर्म्मकथाका उपदेश करेंगे, इससे मैं उस स्थानपर अन्य साधारण पुरुषोंके भीड़की इच्छा नहीं करता हूं।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कुन्तीपुत्र महाबाहु अर्ज्जुनने धर्म्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनके शीघ्रही रथ सज्जित कराके उनके समीप आके निवेदन किया। तब धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव पांचों भाई मिलके कृष्णके समीप गये। महात्मा पाण्डवोंके आगमन करते ही श्रीकृष्ण भगवान सात्यकिके सहित अपने रथ पर चढ़े। वे सब पुरुष श्रेष्ठ और लोग आपसमें "तुम्हारी सुखपूर्व्वक रात्रि व्यतीत हुई?" इत्यादि कुशल प्रश्न करते हुए बादलके शब्द समान अपने रथोंके शब्दसे पृथ्वीको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे। अनन्तर श्रीकृष्णके मेघपुष्प, बलाहक, शैव्य और सुग्रीव नामक चारों घोड़े दारुक सारथीके चलानेपर इस प्रकार वेगपूर्व्वक गमन करने लगे, मानो आकाश मार्गसे उड़ जाते हैं। इसी भांति महात्मा पाण्डवोंके रथ भी शीघ्रताके सहित गमन करने लगे, अधिक क्या कहा जावे? क्षणभरमें वे सब रथ कुरुक्षेत्र नामक धर्म्मक्षेत्रमें आके उपस्थित हुए और क्रमसे जिस स्थानमें देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माकी भांति भीष्म महर्षियोंसे घिरे हुए शरशय्यापर शयन कर रहे थे, उनके समीप आके स्थित हुए। तब श्रीकृष्ण, धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, गाण्डीवधारी अर्ज्जुन, नकुल, सहदेव और सात्यकि आदि महातेजस्वी पुरुष रथसे उतरे और दहिने हाथसे ऋषियोंकी पूजा की। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने तारामण्डलसे युक्त चन्द्रमाकी भांति भाइयोंके बीच विराजकर उपदेश ग्रहणकी अभिलाषासे इस प्रकार गङ्गानन्दन भीष्मके समीप गमन किया, जैसे इन्द्र देवतोंके सहित ब्रह्माके निकट गमन करते हैं। उन्होंने

उस स्थानमें स्थित होकर भययुक्त चित्तसे स्वर्ग भ्रष्ट आदित्यके समान शरशय्यापर महाबाहु भीष्म पितामहका दर्शन किया।

५२ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे महाप्राज्ञ! उस भयङ्कर घोर समागममें सम्पूर्ण सेनाके नष्ट होनेके अनन्तर वीर-शय्यारूपी शरशय्यापर शयन करते हुए सत्यवादी, जितेन्द्रिय, महापराक्रमी, पुरुषसिंह गङ्गादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए शान्तनुपुत्र महातेजस्वी धर्मात्मा भीष्म पितामहने पाण्डवोंसे उपासित होकर जिन कथाओंका प्रसंग किया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नारद आदि सिद्ध महर्षि लोग और अन्धराज धृतराष्ट्र, धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजा लोग दूसरे दिन सवेरा होते ही कुरु पाण्डवोंके पितामह कुलधुरन्धर गंगानन्दन भीष्मके समीप गमन करके उन्हें आकाशभ्रष्ट सूर्य्यकी भांति शरशय्यापर शयन करते देखकर आक्षेप करने लगे अनन्तर देवर्षि नारद मुनिने मुहूर्त्त भर तक चिन्ता करके युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजाओं और पाण्डवोंसे बोले, देखो सूर्य्यके अस्त होनेकी भांति गंगानन्दन भीष्मका मृत्युकाल निकटवर्त्ती हुआ है; इससे तुम लोगोंका जो कुछ पूछना हो, उसे इस ही समय पूछ लो; क्योंकि इस समय महात्मा भीष्मने प्राण त्यागनेका सङ्कल्प किया है; इससे तुम लोग धर्म जिज्ञासामें प्रवृत्त होओ; ये चारों वर्णोंके धर्म विविध रूपसे जानते हैं। हे राजा लोगों! तुम लोग मेरा वचन चित्तलगाके सुनो, यह ज्ञान वृद्ध भीष्म अवश्य ही शरीर त्यागके परलोकमें गमन करेंगे; तुम लोगोंको जिस विषयमें संशय हो, वह इनसे पूछके अपनी शङ्का निवारण करो। राजा लोग नारद मुनिके वचनोंको सुनके सब कोई भीष्मके निकट उपस्थित हुए। परन्तु किसी विषयमें कुछ प्रश्न करनेमें समर्थ न हुए, वे सब कोई आपसमें एक दूसरेके मुखकी ओर देखने लगे। उस समय पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर हृषीकेश कृष्णसे बोले, हे देवकीनन्दन! हे मधुसूदन! हे यदुकुल भूषण! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष पितामहके निकट प्रश्न करनेमें समर्थ होगा? हे भ्राता! हम सब लोगोंके बीच तुम ही पूर्णरीतिसे धर्म विषयके जाननेवाले हो; इससे पहिले तुम्हीं पितामहके समीप प्रश्न करो।

अनन्तर उस समय श्रीकृष्ण भगवान युधिष्ठिरके वचनको सुनके महात्मा भीष्मके निकट गमन करके यह वचन बोले, हे राजसत्तम! गत रात्रि तुमने सुखसे व्यतीत की है न? तुम्हारी बुद्धि भली भांति स्थिर तो है? हे पाप रहित! तुम्हारा ज्ञान अच्छी प्रकार प्रकाशित तो है? तुम्हारा चित्त पीड़ासे कातर होकर व्याकुल तो नहीं है?

भीष्म बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! कल्ह जो तुमने प्रसन्न होकर मुझे वरदान दिया, तभीसे मेरे शरीरसे मोह, थकावट, दाह खिन्नता, ग्लानि और सम्पूर्ण पीड़ा दूर होगई है। हे अच्युत! हे महातेजस्वी! तुम्हारे वरदानके प्रभावसे मैं भूत, वर्त्तमान और भविष्यत इन तीनों कालोंके सम्पूर्ण विषयोंको हाथमें स्थित फलकी भांति और वेदशास्त्रोंमें जो कुछ धर्म आदिक विषय वर्णित हुए हैं, उसे प्रत्यक्षकी भांति अवलोकनकर रहा हूं। हे जनार्द्दन! देश, जाति और कुलविषयक तथा महात्मा पुरुषोंके कहे हुए जो कुछ धर्म हैं, वह मेरे अन्तःकरणमें स्थित हैं। हे जनार्द्दन! तुम्हारी कृपासे मेरा मन कल्याण करनेवाली बुद्धिसे युक्त हुआ है; इससे सम्पूर्ण राजधर्म, आपद्धर्म,

गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्न्यास आदि चारों आश्रम सम्बन्धीय धर्म्मोंके जो कुछ उद्देश्य हैं, वे सब मुझे मालूम हुए हैं। जिन स्थलोंमें जो कुछ कहना उचित है, मैं उसे कहूंगा। अधिक क्या कहूं, तुम्हारे ध्यानके प्रभावसे मेरे शरीरमें फिर युवा अवस्थाके समान बल प्राप्त हुआ है; उससे अब मैं लोकहितकर धर्म्मकथाको कहनेमें समर्थ होऊंगा; परन्तु तुम किस कारणसे धर्म्मराज युधिष्ठिरको धर्म्मोपदेश नहीं करते हो! इस विषयमें तुम्हारा क्या विचार है, उसे शीघ्र मेरे समीप प्रकाशित करो।

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र भीष्मका वचन सुनके उनसे बोले, हे कौरव! तुम कल्याण और कीर्त्तिका मूल कारण मुझे ही समझो, सत् और असत् भाव मुझसे ही प्रकट हुए हैं। देखिये यदि कोई चन्द्रमाको शीत-किरणवाला कहके प्रशंसा करे, तो कोई पुरुष इसमें आश्चर्य नहीं कर सक्ता। इसी भांति कृष्ण "कीर्त्तिपूर्ण हैं" कहके यदि कोई पुरुष मेरा गुण वर्णन करे तो इसमें कोई भी आश्चर्ययुक्त नहीं हो सक्ता। हे महातेजस्वी! मैंने इस पृथ्वीपर तुम्हारे यशको अधिक विस्तार करनेकी अभिलाषासे तुम्हें निर्म्मल बुद्धि प्रदान की है। जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक तुम्हारी यह अक्षय कीर्त्ति जगत्के बीच प्रकाशित रहेगी। हे भीष्म! तुम प्रश्नके अनुसार धर्म्मराज युधिष्ठिरको जो कुछ धर्म्मका उपदेश करोगे, वे सब तुम्हारे उपदेश वचन वेदवाक्यके समान जगतके बीच प्रमाणिक होंगे। जो पुरुष उस प्रमाणके अनुसार लोकयात्रा निर्व्वाह करेंगे, वे परलोकमें सम्पूर्ण पुण्यफलोंको भोगनेमें समर्थ होंगे। हे भीष्म! पृथ्वीमें किस प्रकार तुम्हारा यश विस्तार होगा इस विषयको विचार कर मैंने तुम्हें दिव्य बुद्धि प्रदान की है। इस पृथ्वीपर जबतक लोग किसी पुरुषके यशको गाया करते हैं, तबतक वह यश मान ही उसकी अक्षय कीर्त्तिका मूल समझा जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! कुरुक्षेत्रकी युद्धमें मरनेसे बचेहुए राजा लोग धर्म्म जिज्ञासु होकर तुम्हारे चारों ओर स्थित हैं; तुम इन लोगोंको राजधर्म्मोपदेश करो। तुम अवस्थामें सबसे वृद्ध वैदिक और लौकिक आचारोंसे युक्त और राजधर्म्म आदि सम्पूर्ण धर्म्मोंके जाननेवाले हो; जन्मसे आजपर्य्यन्त कोई पुरुष तुम्हारा कुछ भी पापाचरण नहीं देख सका; विशेष करके पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा लोग तुम्हें सब धर्म्मोंका जाननेवाला समझते हैं, क्यों कि बाल्यावस्थासे ही तुमने देवता और ऋषियोंकी उपासना करी है; इससे जैसे पिता पुत्रोंको उत्तम नीति उपदेश करता है, वैसे ही तुम भी इन राजाओंको धर्म्मका उपदेश करो प्राचीन पण्डितोंने धर्म्मविषय ऐसा कहा है, कि धर्म्म जिज्ञासु होकर प्रश्न करे, तो उसे धर्म्मोपदेश करना उचित है इससे धर्म्म विषय सुननेके अभिलाषी राजाओंको उपदेश करना तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य्य है। हे विद्वन्! धर्म्मजिज्ञासु पुरुषको उपदेश न करनेसे पापमें फंसना होता है; ऐसा ही शास्त्रोंमें वर्णित है; इससे तुम्हारे ये पुत्र तथा पौत्र लोग धर्म्मजिज्ञासु होकर जो कुछ प्रश्न करें, तुम प्रश्नके अनुसार ही उन लोगोंको धर्म्मोपदेश करो

५४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर कौरवोंमें मुख्य महातेजस्वी भीष्म यह वचन बोले, हे गोविन्द! तुम सब प्राणियोंके नित्य आत्मस्वरूप हो; तुम्हारी कृपासे मेरा वचन और मन दृढ़ हुआ है; इससे मैं प्रसन्नताके सहित धर्म्मकथा कहूंगा; परन्तु कोई धर्म्मात्मा पुरुष धर्म्मविषयमें मुझसे प्रश्न करे, तो मैं प्रीतिपूर्व्वक धर्म्मविषयको व्याख्या करूंगा। जिस धर्म्म-

भीष्म महात्मा पुरुषके शय्या शैलेपर सुखि लोग आनन्द सागरमें मग्न हुए थे; वह पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न करें। यशस्वी, धर्म्मचारी कौरवोंके बीच कोई भी जिसके समान नहीं है; धृति, दम, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धर्म, तेज, और बल जिसमें सदा विद्यमान रहता है; जो सम्बन्धी, सेवक, अतिथि और आश्रितोंको यथा-योग्य आदरके सहित सम्मानित करते हैं; सत्य, दान, तपस्या, शोरता, शान्ति, दक्षता और सावधानता आदि सम्पूर्ण धर्म जिसमें सदासर्व्वदा विराजमान रहते हैं, जो धर्म्मात्मा काम, क्रोध, भय, लोभ और अर्थके वशमें होकर कदापि अधर्म कार्य्योंमें प्रवृत्त नहीं होते; जो सत्य, क्षमा और ज्ञान विषयमें सदा दृढ़ताके सहित स्थित रहते हैं; जो यज्ञ, अध्ययन, धर्म और शान्तिमार्गमें सर्व्वदा रत रहते हैं, जिन्होंने धर्मके सम्पूर्ण रहस्योंको सुना है; वही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझसे धर्म विषयमें प्रश्न करें।

भीष्मका इतना वचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे कौरव शिरोमणि! धर्म्मराज युधिष्ठिरने गुरु आदि पूज्य पुरुषों और सेवक, सम्बन्धी, ब्रह्मवादी भक्त और माननीय पुरुषोंका कुरुक्षेत्रके युद्धमें वध किया है; इसी कारण अत्यन्त लज्जित होकर आपके भयसे भयभीत हुए हैं; इसीसे वह तुम्हारे सम्मुख आनेमें समर्थ नहीं होते हैं; क्यों कि जिन लोगोंका नाना भांतिकी वस्तुओंसे सम्मान करना उचित था, उनके शरीरको अस्त्रोंसे छेदन किया है; इस ही निमित्त धर्म्मराज युधिष्ठिर तुम्हारी दृष्टिके सम्मुख नहीं स्थित होसकते हैं।

भीष्म बोले, हे कृष्ण! जैसे ब्राह्मणोंके निमित्त दान, अध्ययन और तपस्या ही धर्म है वैसे ही क्षत्रियोंके निमित्त युद्धमें शत्रुओंके शरीरको अस्त्रोंसे छेदन करना ही धर्म है। पिता, पितामह, भ्राता, गुरु, सम्बन्धी आदिक कोई क्यों न हों यदि वे लोग निरर्थक भावसे युद्धमें प्रवृत्त हों, तो उस ही समय उनका वध करना उचित है, क्यों कि यही क्षत्रियोंका धर्म है, शास्त्रोंमें ऐसा ही वर्णित है। हे कृष्ण! जो नियम उल्लङ्घन करनेवाले, लोभी अत्याचारी गुरुका युद्धभूमिमें वध करते हैं, वेही धर्म्मात्मा क्षत्रिय हैं। जो पुरुष लोभके वशमें होकर सनातन धर्म मार्गको उल्लङ्घन करते हैं, उनको मारनेवाले क्षत्रिय ही धर्मात्मा कहे जाते हैं। जो युद्धमें प्रवृत्त होकर इस पृथ्वीको रुधिररूपी जल, केशरूपी तृण, हाथी रूपी पर्व्वत और ध्वजा पताका रूपी वृक्षोंसे परिपूरित करनेमें समर्थ हैं; वेही धर्मात्मा क्षत्रिय कहे जाते हैं। युद्धमें आह्वान करनेपर अपना आत्मीय और पराया विचार न करके श्रेष्ठ क्षत्रिय पुरुषोंको उनके संग युद्धमें प्रवृत्त होना उचित है; क्योंकि भगवान मनुने धर्म युद्धको क्षत्रियोंके निमित्त इस लोक और परलोकमें कल्याण दायक कहके वर्णन किया है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्मराज युधिष्ठिरने भीष्मका वचन सुनके अत्यन्त विनीत भावसे उनके दृष्टिके सम्मुख उपस्थित होकर उनके दोनों चरणोंको छूके उन्हें प्रणाम किया। तब सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी भीष्मने उनका मस्तक सूंघके उन्हें आनन्दित किया। अनन्तर महातेजस्वी भीष्म युधिष्ठिरको बैठनेकी आज्ञा देकर यह वचन बोले, हे कुरुकुल तिलक! हे तात! तुम कुछ भी शङ्का मत करो, तुम निर्भयताके सहित शुद्ध चित्तसे मेरे समीप प्रश्न करो।

५५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर धर्म्मराजयुधिष्ठिरने रूपीकेश कृष्ण और भीष्मको

प्रणाम करके उस स्थलमें स्थित गुरुजनोंको अनुमतिसे प्रश्न करना आरम्भ किया। हे पितामह! धर्म्म जाननेवाले पुरुष राजधर्म्मको ही परमधर्म्म समझते हैं और मैं भी उसके भारको ग्रहण करना अत्यन्त कठिन समझता हूं; इससे आप विशेष करके राजधर्म्मका ही वर्णन करिये राजधर्म्म ही सम्पूर्ण प्राणियोंके जीवनका अवलम्ब रूप है; क्यों कि धर्म्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग और मोक्षधर्म्म ये सब पूर्णरीतिसे राजधर्म्मसे ही सिद्ध होसकते हैं। जैसे घोड़ेको लगाम और हाथियोंको अङ्कुश नियममें स्थित रखता है, वैसे ही राज्यधर्म्म ही सम्पूर्ण प्राणियोंको यथायोग्य नियमोंमें स्थित रखता है। यदि राज-ऋषियोंसे सेवित राजधर्म्ममें पुरुषोंको मोह उपस्थित होवे, तो सम्पूर्ण नियम तितर बितर होजाते हैं और उससे सम्पूर्ण प्रजा दुःखसागरमें व्याकुल होजाती है। जैसे सूर्य्य उदय होकर महाघोर अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही राजधर्म्मसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी अशुभ गति निवारित होती है। हे पितामह! आप इस भरतकुलमें तथा सम्पूर्णधर्म्म जाननेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं; इससे पहिले मुझे राजधर्म्मका उपदेश कीजिये। हे शत्रुनाशन! जब कि श्रीकृष्ण भी आपको परमज्ञानी समझते हैं, तो आपके निकट धर्म्म उपदेश सुनना ही हम लोगोंके निमित्त कल्याणकारी है।

भीष्म बोले, मैं उस महत् धर्म्मको नमस्कार करके नित्य धर्म्मकी व्याख्या करूंगा। हे तात युधिष्ठिर! मैं सम्पूर्ण रूपसे राजधर्म्मका निश्चय करके कहता हूं, तुम चित्त लगाके पूर्ण रीतिसे राज्यधर्म्म तथा अन्य धर्म्म भी जिसके सुननेकी तुम्हारी इच्छा हो! मुझसे सुनो। राजा क्षत्रिय न होनेपर भी प्रजाके अनुरागपात्र होनेके निमित्त शास्त्रविधिके अनुसार देवता, ब्राह्मणोंमें श्रद्धा और भक्ति प्रकाश करे। राजा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे उनसे अऋणी होकर सम्पूर्ण प्रजाका श्रद्धाभाजन होता है। हे पुत्र युधिष्ठिर! तुम सदासर्व्वदा पुरुषार्थके निमित्त यत्न करना, पुरुषके उद्योगके बिना केवल दैवके आसरे राजाओंके कार्य्य नहीं सिद्ध होसकते; भाग्य और पुरुषार्थ समान होनेपर भी मैं पुरुषार्थको श्रेष्ठ समझता हूं; क्यों कि पुरुषार्थ लोगोंको प्रत्यक्षही फल देता है और भाग्य भी किये हुए पूर्व्व पुरुषार्थका फल मात्र है। पुरुषार्थ करनेसे यदि आरम्भ किये हुए कर्म्मोंके फल सिद्ध न होवें, तो पुरुष लोकापवादसे, और फल सिद्ध होनेसे दुःखोंसे मुक्त होसकता है। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! यदि दैवी संयोगसे आरम्भ किया हुआ कर्म्म निष्फल होजावे, तौभी मनमें कदापि दुःखित होना नहीं चाहिये; फिर द्विगुणित यत्नके सहित उसे सिद्ध करनेके निमित्त कार्य्यमें प्रवृत्त होना उचित है; क्यों कि यही राजाओंकी परम नीति है। परन्तु सत्य जिस प्रकार राजाओंके कार्य्यको सिद्ध करनेवाला है, वैसा दूसरे किसी यत्नसे भी राजाओंके कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते; सत्यमें तत्पर रहनेवाले राजा इस लोक और परलोकमें परम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। हे राजेन्द्र! सत्य ऋषियोंका भी परम धन है और राजाओंका भी विश्वास उत्पन्न करानेका कारण सत्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है, गुणवान, शीलयुक्त, दयावान, सत्यवादी धर्म्मनिष्ठ, जितेन्द्रिय, प्रजाके ऊपर प्रीति करनेवाले उदार राजा कदापि श्रीभ्रष्ट नहीं होते।

हे कुरुनन्दन! अपने छिद्रोंको छिपाना और पराये छिद्रको अन्वेषण करते हुए अपने विचारोंको गुप्त रखना और न्यायके अनुसार विचार पूर्व्वक समस्त कार्य्योंमें सरलता अवलम्बन करना चाहिये। राजाके मृदुभाव अवलम्बन करनेसे सम्पूर्ण प्रजा उसके नियमोंको अतिक्रम करती है और कठोर भाव

ग्रहण करनेसे सब कोई उसके भयसे व्याकुल होते हैं; इससे तुम्हें यथा योग्य कोमलता और कठोरता दोनों ही अवलम्बन करना उचित है। हे पाण्डुपुत्र उदारबुद्धि युधिष्ठिर! तुम कदापि ब्राह्मणोंको दण्ड विधान मत करना; क्यों कि इस लोकमें तपके प्रभावसे ब्राह्मण ही सम्पूर्ण पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। हे राजेन्द्र! मनुभगवानने इस विषयमें दो श्लोक कहे हैं, तुम्हें निज धर्म्मविषयमें उन दोनों श्लोकोंको हृदयङ्गम करना उचित है। "जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है; इससे उनका तेज सम्पूर्ण स्थानोंमें पूर्ण होनेपर भी सयोनिमें शान्त होजाता है। जिस समय लोह पत्थरको विदीर्ण करता है अग्नि जलको सुखाती है, क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं; उस समय वे शीघ्र ही तेजभ्रष्ट होके नष्ट होते हैं।" हे राजेन्द्र! इससे ब्राह्मण लोग सदा प्रणाम करने योग्य हैं; श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग पूर्ण रीतिसे पूजित होनेसे वेद और यज्ञोंको धारण करते हैं।

हे भरतर्षभ! जो पुरुष ब्राह्मणोंके योग्य सम्मान लाभकी अभिलाषा करे, उन्हें बाहु-बलके सहारे पराजित करके दण्ड देना उचित है। हे तात! पहिले समयमें महर्षि शुक्राचार्य्यने जो श्लोक कहा था, उसे तुम चित्त लगाके सुनो। "वेदवेदान्त जाननेवाला ब्राह्मण यदि शस्त्र ग्रहण करके युद्धभूमिमें आगमन करे, तो धर्म्मात्मा राजा शस्त्र आदिकोंके प्रभावसे उसे बांधके कैद करे, परन्तु कदापि उसका वध न करे, जो आततायी पुरुषोंसे नष्ट होते हुए धर्म्मकी सब भांतिसे रक्षा करते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले धर्म्मात्मा राजा कहाते हैं; आततायी पुरुषोंका वध करनेसे पाप नहीं होता। आततायीका क्रोध ही दूसरेको उत्तेजित करके अपना नाश कराता है, इससे आततायीके मारनेसे पाप नहीं होता। हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये, ब्राह्मण यदि अपराध करे, तो उसे राज्यसे बाहर करना चाहिये; परन्तु प्राण नाश करना उचित नहीं है। हे प्रजानाथ! ब्राह्मण यदि परस्त्रीके सङ्ग व्यभिचार दोषसे अपवाद युक्त होवे, तौभी उसके ऊपर कृपा प्रकाश करना कर्त्तव्य है। ब्रह्महत्या, विमाता सहवास और भ्रूणहत्या आदि तीन प्रकारके पापग्रस्त तथा राजद्रोही होने पर उसे निजराज्यसे बाहर करना उचित है; परन्तु बेत-कोड़ोंकी चोटसे उसके शरीरको पीड़ित करना वा शारीरक दण्ड देना उचित नहीं है। जो लोग ब्राह्मणोंमें भक्ति करते हैं, उन्हेंही प्रिय समझके निज कार्य्योंमें नियुक्त करना चाहिये, क्यों कि राजाओंके चाहे कितनाही धन रत्नसे युक्त खजाना क्यों न होवे, ब्राह्मण भक्त पुरुषोंके संग्रहकी अपेक्षा कोई भी कोष उत्तम नहीं कहे जा सकते! महाराज! पण्डित लोग मरु, (बालुकामय स्थान) जल, भूमि वन, पर्व्वत और मनुष्य आदि छः और बाकी सब भांतिके दुर्ग किलासे) मनुष्य दुर्गको ही श्रेष्ठ कहके वर्णन करते हैं, इससे बुद्धिमान राजाओंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंको प्रजाके ऊपर दया प्रकाशित करनी उचित है। राजाके धर्म्मात्मा और सत्यवादी होनेसे सम्पूर्ण प्रजा उस पर अनुरक्त होती है। हे पुत्र! तुम सब जातिकी प्रजा समूहके विषयमें क्षमा प्रकाशित न करना, क्यों कि राजा क्षमाशील हाथीके समान मृदुस्वभाव युक्त होनेसे धर्म्म विरोधी कहे जाते हैं। महाराज! इस विषयमें बृहस्पति प्रणीत शास्त्रमें जो श्लोक कथित है, उसे मैं वर्णन करता हूं, चित्त स्थिर करके सुनो! जैसे महावत क्षमाशील हाथीके मस्तकपर ही चढ़नेकी इच्छा करता है, वैसे ही राजाके क्षमाशील होनेपर नीच पुरुष उसकी आज्ञाको उल्लङ्घन करके मनमाना कार्य्य करते

हैं; इसी जैसे वसन्त ऋतुके सूर्य्य अत्यन्त शीतल और प्रचण्ड किरणधारी तथा बहुत तेजस्वी नहीं होते, वैसे ही राजाको भी सदा अत्यन्त कठोर भाव अवलम्बन करना उचित नहीं है। महाराज! प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम आदि प्रमाणोंसे शत्रु-मित्रोंकी सदा परीक्षा करनी उचित है। हे राजेन्द्र! तुम मृगया आदि सम्पूर्ण व्यसनोंको परित्याग करो; परन्तु एकबारगी परित्याग न करके केवल मात्र उसमें आसक्ति रहित होना ही उचित है। क्यों कि व्यसनोंमें फंसे हुए पुरुष सदा क्लेशित होते हैं। राजा यदि प्रजाद्रोही होवे, तो राजा प्रजामें विरोध बढ़ता है; इससे गर्भ धारण करनेवाली माता जैसे गर्भस्थित बालकके निमित्त व्यवहार करती है; वैसे ही राजाको भी प्रजाको पालन करना योग्य है। महाराज! जिस कारणसे ऐसी उपमा दीगई है, उसे सुनिये जैसे गर्भधारिणी माता अपने इच्छानुसार निज इष्ट वस्तुओंको त्यागके भी गर्भस्थ बालकके कल्याणकी चेष्टा करती है; उसी भांति प्रजा समूहके मङ्गलकी इच्छासे राजाको भी कार्य्य करना उचित है। हे कुरुनन्दन! जिन कार्य्योंके करनेसे प्रजाका कल्याण हो, अपने मनकी अभिलाषा त्यागके भी सदा उस ही धर्म्मका अनुगामी होना चाहिये। हे पाण्डुनन्दन! तुम कभी धीरज रहित मत होना, क्यों कि राजाके धीर और दण्डधारी होनेसे उसे कहीं भय उपस्थित नहीं होता। हे राजशार्दूल! सेवकोंके सङ्ग सदा परिहास करना उचित नहीं है; क्यों कि उससे जो दोष उत्पन्न होते हैं, मैं उन्हें वर्णन करता हूं। उपजीवी सेवकोंके सङ्ग सदा परिहास करनेसे वे लोग स्वामीका पूर्व्वरीतिसे सम्मान नहीं करते; मर्य्यादा अतिक्रम करके स्वामीकी आज्ञा उल्लङ्घन करते हैं; कार्य्योंके विचारके समय सम्पूर्ण कार्य्योंमें संशय उत्पन्न करते, गोपन करने योग्य छिद्रोंको प्रकाशित कर देते हैं; जो वस्तु मांगने योग्य नहीं हैं, उन्हें भी मांगते हैं; राजाके सम्मुखमें ही उसके भोजनकी वस्तुओंको खाते और उसके ऊपर क्रोध कर राजाको बुद्धिसे भी अपनी बुद्धिकी श्रेष्ठता प्रकाशित करते हैं। महाराज! अधिक क्या कहा जावे, वे लोग राजशासन अतिक्रम करके लोगोंसे घूस लेकर राजाके समीप उनके मिथ्या गुण दोषोंकी वर्णन करके सम्पूर्ण कार्य्योंको नष्ट कर देते हैं; कृत्रिम आज्ञापत्र बनाके राज अधिकृत देशोंको निःशेष करते हैं; राजा जैसा वस्त्र पहिनता है, वे लोग भी वैसे ही वस्त्रोंको पहनके राजाकी समानता करते और अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंके ऊपर आसक्त होकर क्रमसे अन्तःपुरके बीच प्रवेश करने की भी इच्छा करते हैं। हे राजशार्दूल! वैसे सेवक लोग ऐसे निर्लज्ज होजाते हैं, कि राजाके सम्मुखमें ही वायु करने योग्य वस्तुओंको ग्रहण करके अपने शरीरपर वायु करते और राजाके अत्यन्त गुप्त विषयोंको भी दूसरेके निकट प्रकाशित कर देते हैं। राजाके मृदु स्वभाव और परिहास युक्त होनेसे उपजीवी सेवक लोग राजाका अनादर करके उनके समान ही घोड़े, हाथी और रथोंपर चढ़नेकी अभिलाषा करते हैं। वे लोग सुहृद पुरुषोंसे युक्त सभाके बीचमें ही राजाको कहा करते हैं, हे राजन्! आप इस कार्य्यको करनेमें समर्थ न होंगे और यह आपका दुरभिसन्धि है। राजाके क्रोध करने पर वे लोग हंसा करते और यदि राजा सत्कार करे, तो उस समय वे लोग उसे गोपन करके अन्य कारणोंसे हर्षित होते हैं। वे लोग खिलवाड़की भांति राजाज्ञाकी अवज्ञा करके उसके दुष्कर्म्मोंको प्रकाशित करते और मन्त्रणा तथा विचारको भेदकर दूसरेके निकट प्रकाशित कर देते हैं।

५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! राजाको सदा उद्यमशील होना उचित है ; क्योंकि राजा स्त्रियोंकी भांति उद्यम रहित होनेसे प्रशंसा प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। हे सब धर्मयुक्त महाराज ! इस विषयमें भगवान भृगु-नन्दनने जो श्लोक कहा है, उसे मैं कहता हूं। जैसे सर्प बिलमें रहनेवाले चूहे आदि जन्तुओंको ग्रास करता है, वैसे ही भूमि विरोध रहित राजाको और जो वेदाध्ययनके निमित्त देशान्तरोंमें गमन नहीं करते, वैसे ब्राह्मण वा यतीको ग्रास करती है ; अर्थात् वैसे राजा और ब्राह्मण शीघ्र ही नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं हे पुरुषसिंह ! मेरा यह उपदेश तुम्हारे अन्तःकरणमें सदा विराजमान रहे, अर्थात् जिसके सङ्ग सन्धि करना उचित है, उसके सङ्ग सन्धि करे और जिसके साथ विरोध करना योग्य है, उससे विरोध करे। जो स्वामी, अनुयायी सेवक सुहृदमित्र कोष राष्ट्र, किला और बल इन सप्ताङ्ग युक्त राज्य अथवा इसमें किसी एक अङ्गके सङ्ग विरुद्ध आचरण करे, तो मित्र अथवा गुरु होने पर भी उसका प्राणनाश करना उचित है। हे राजेन्द्र ! इस विषयमें बृहस्पतिमतके अनुसार मरुतराजने राजाओंके कर्त्तव्य कर्ममें एक श्लोक कहा था, उसे सुनो। गुरु कार्य्याकार्य्य विवेकसे हीन, गर्व्वित और कुमार्गी हो, तो उसे राज्यसे निकाल देना चाहिये। महाराज ! पहिले समयमें सगर पुत्र असमञ्जा पुरवासियोंके बालकोंको बल पूर्व्वक सरयू नदीमें डुबा देता था, इसी कारण साधुपुत्र बुद्धिमान सगरने पुरवासियोंके हितकी अभिलाषासे अपने जेष्ट पुत्र असमञ्जाको निन्दा करके उसे राज्यसे निकाल दिया था। महातपस्वी श्वेतकेतु अतिथि सत्कार करूंगा कहके वृथा निमन्त्रण कर आता था, इस ही कारण पिताके प्रियपात्र होनेपर भी उसके पिता उद्दालक मुनिने उसे परित्याग किया था। इससे सदा प्रजा रक्षणमें प्रवृत्त रहना, सत्यकी रक्षा और प्रजापालन ही राजाओंका सनातन धर्म है। पराये धनके हरनेमें लोभ करना राजाको योग्य नहीं, सेवकोंको यथा समय पर वेतन प्रदान करना उचित है। महाराज ! राजा लोग सत्यवादी क्षमाशील और पराक्रम युक्त होनेसे ही निर्दिष्टमार्गसे विचलित नहीं होते। जिसने क्रोध और मनकी वृत्तियोंको वशीभूत किया है, शास्त्रमें कहे हुए वचनोंमें जिसे अविश्वास नहीं है ; जो सदा धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुवर्गोंमें रत रहते हैं, जिनके विचारको दूसरे पुरुष नहीं जान सकते ; ऐसी त्रिविध शक्तिसे युक्त पुरुष ही राजा होने योग्य हैं। हे राजन ! साधारण पुरुषोंके निकट मन्त्रणा प्रकाशित होनेकी अपेक्षा राजाओंको इससे बढ़के और दूसरा कोई भी सङ्कट नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके धर्म्मकी रक्षा करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है ; क्योंकि धर्म्म सङ्कर होनेसे प्रजाको बचाना ही राजाओंका सनातन धर्म्म है। यद्यपि किसीका विश्वास न करके स्वजनोंका विश्वास करना ही राजाओंको उचित है, तथापि उन लोगोंके विषयमें भी पूर्ण रीतिसे विश्वास करना अनुचित है। राजा निज बुद्धिसे बलवानके सङ्ग सन्धि करे, अपने समान पुरुषके साथ विग्रह, अपनेसे निर्ब्बल राजाओंके दुर्ग आदिको आक्रमण करना और स्वयं निर्ब्बल होनेसे निज दुर्गके आसरे निवास करना इत्यादि राजनीतिके परिणाम रूपी फल जय और पराजयका विचार करके कार्य्य करे, जो राजा अपने छिद्रोंको गोपन करके शत्रुओंके छिद्रोंको देखता है, वह धर्म्म, अर्थ और काम इन त्रिवर्गोंके यथार्थ तत्त्वको जानता है। जो यथा योग्य स्थानोंमें जासूसोंको नियुक्त करके शत्रुपक्षीय सेवकोंके बीच धन देकर भी उन लोगोंके बीच भेद उत्पन्न करा

सकता है ; वह सबके निकट प्रशंसा पानेके योग्य है । यमराजके समान प्रभावशाली, और सद्विचारक, कुवेरके तुल्य कोष सञ्चयमें रत नाश और उद्दिजनक कार्य्योंके अवस्था विशेषके गुण दोषोंको मालूम करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है । राजा भूखोंको भोजन देनेवाला, सुखो पुरुषोंके तत्वोंको जाननेवाला, वृद्धोंका उपासक, आलसरहित, लोभहीन और प्रसन्न चित्तवाला होवे । महाराज ! सदा प्रसन्न रहना साधु पुरुषोंके गमन करने योग्य मार्गसे विचरण करना और प्रजासमूहके संग हंसके प्रसन्नता सहित उन्हें आनन्दित करना राजाका कर्त्तव्य कर्म्म है । साधु पुरुषोंसे कर लेना उचित नहीं है, वरन दुष्ट पुरुषोंके धनको छोनके साधुओंको दान करना उचित है । राजाको युद्धविद्यामें निपुण, यथा समयमें दान देनेवाला, शुद्धाचारी जितेन्द्रिय, यथा समयपर भोजन करनेवाला तथा मनोहर भूषणोंको धारण करनेवाला होना चाहिये, जो सब मनुष्य शूरवोर, स्वामी-भक्त, रोगहीन उत्तम शिष्टाचार और परिवार-युक्त, विद्वान, धार्म्मिक, साधु और स्थिरस्वभाव वाले हैं ; जो दूसरेसे प्रतारित नहीं होते, किसीको अवमानना नहीं करते, सब लोगोंके चरित्रोंको जानते परलोकको मानते और ऐश्वर्य्यको अभिलाषा करते हैं ; राजा वैसे हो पुरुषोंको अपना सहायक बनाकर उनके संग समान भावसे विषयादिकोंको भोगे ; केवल मात्र छत्रधारण और राजाज्ञाप्रचार करनेमें हो राजाको उन लोगोंसे अधिकता रहती है। महाराज ! प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकारकी वृत्तिका समभावसे परीक्षा करके कार्य्यमें प्रवृत्त होनेसे राजाको दुखभागी नहीं होना पड़ता। राजा यदि किसीका भो विश्वास न करे, अथवा लोभके वशमें होकर दूसरेको वृत्तिमें व्यर्थ दोष लगाके उसके धनका हरण करे, तो उसके स्वजन पुरुष थोड़े हो समयमें उसका नाश कर देते हैं, जो शुद्धचरित्रवाले राजा सदासर्व्वदा प्रजा-समूहको आनन्दित करनेमें प्रवृत्त रहते हैं, वह कभी भी शत्रुओंसे पराजित होके स्थान-भ्रष्ट नहीं होते ; यदि शत्रुओंसे पराजित भी होवें, तौभी वह शीघ्र हो निज पदपर फिर प्रतिष्ठित होते हैं । राजा यदि क्रोधहीन मृदु दण्ड देनेवाला, जितेन्द्रिय होके मृगयादिक व्यसनोंमें आसक्त न होवे, तो वह हिमालयके समान स्थिर होकर सम्पूर्ण प्रजाका विश्वास पात्र होता है । जो राजा बुद्धिमान, दानशील, धर्म्मात्मा, पराये छिद्रोंका अनुसन्धान करनेवाला प्रसन्नमुख, चारों वर्णोंको यथा नियमोंमें स्थित करनेवाला, क्रोधरहित, मनस्वी, क्रियावान, आत्मश्लाघा रहित होकर योगाभ्यासमें रत रहता है; और जिसके सेवक लोग भी क्रोधरहित चित्तसे राजकार्य्यमें तत्पर रहते तथा जिसके अनुष्ठित कार्य्य निर्व्विघ्नताके सहित समाप्त होते हैं, वह राजसत्तम कहाता है । जैसे पुत्र पिताके गृहमें निर्भयचित्तसे निवास करते हैं, वैसे हो जिसके राज्य में सम्पूर्ण मनुष्य निर्भयताके सहित सब स्थानोंमें भ्रमण करते हैं ; वही भो राजसत्तम कहा जाता है । जिसके पुरवासी प्रजा ऐश्वर्य्यशाली और निज धर्म्मोंमें तत्पर रहती है, उसे हो राजोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ कहा जाता है । और जिसके राज्यभरको सब प्रजा राजाके वशमें स्थिर, नीतिनिपुण राजाज्ञाको पालन करनेवाली ऐश्वर्य्ययुक्त और दान धर्म्ममें रत रहके यथा रीतिसे पालित और शासित होकर आपसमें विरोध न करके निज निज कर्त्तव्य कर्म्मोंमें तत्पर रहती है, वही राजा श्रेष्ठ गिना जाता है । जिस राजाके राज्यमें चोरी, डकैती, माया, मत्सर और अधर्म्म आदि नहीं होते, वह सनातन धर्म्मका पालन करनेवाला राजा उत्तम फलोंको प्राप्त करता है । जो ज्ञानवान पण्डितोंका आदर करते, शास्त्रोंको पढ़ते और पुरवासी तथा

सम्पूर्ण प्रजाके हितमें तत्पर रहते हैं, वैसे श्रेष्ठ मार्गसे गमन करनेवाले दानशील पुरुष ही राजा होनेके योग्य हैं, प्रजालोग जिसके दूतोंकी मिलाके राजाके विचारोंको नहीं जान सकते, वह राजा ही राजलाभ करनेके योग्य है। हे राजेन्द्र! महात्मा भृगुनन्दन शुक्राचार्य्यने पहिले समयमें रामचरित्रोंको वर्णन करते हुए एक श्लोक कहा था, "प्रजाको चाहिये कि राजाको ही सबसे श्रेष्ठ समझके उसकी रक्षा करें, तिसके अनन्तर भार्य्या और धनकी रक्षामें यत्नवान होवे; क्यों कि राजाके न रहने पर उसकी भार्य्या कहां रहेगी, और धनकी रक्षा भी किस प्रकार हो सकती है; इससे सब लोगोंको सब भांतिसे राजाको रक्षा करना ही कर्त्तव्य है, इसी प्रकार राज्यको अभिलाषा करनेवाले राजाको भी प्रजाको रक्षाके अतिरिक्त सनातन धर्म्म दूसरा नहीं है; क्योंकि उनको रक्षा ही प्रजाको प्रसन्न करनेका मूल कारण है।" हे राजेन्द्र! राजधर्म्मके विषयमें प्राचेतस मनुने जो दो श्लोक कहे हैं; मैं उन दोनों श्लोकोंको उदाहरण स्वरूपसे वर्णन करता हूं,— मनुष्योंको उचित है, कि उपदेश न करनेवाले गुरु, वेदपाठ तथा अध्ययन हीन पुरोहित, रक्षा न करनेवाले राजा, अप्रिय वचन बोलने वाली भार्य्या, ग्रामकी अभिलाषा करनेवाले अहीर और वनवासकी इच्छावाले नाईको इस प्रकार त्याग देवे, जैसे नावपर चढ़नेवाले पुरुष टूटी नौकाका त्याग देते हैं।

५७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! दुग्धरक्षित को भांति प्रजाकी रक्षा करना ही राजधर्म्मका सार है, क्योंकि भगवान् बृहस्पतिने इसके अतिरिक्त दूसरे किसी धर्म्मकी प्रशंसा नहीं की है। हे धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रणी युधिष्ठिर! भगवान् विशालाक्ष, महा तपस्वी शुक्राचार्य्य सहस्र नेत्रवाले इन्द्र, भगवान् भरद्वाज और गौरशिरा मुनि आदि धार्म्मिक पुरुष लोक रक्षारूपी राजधर्म्म की ही प्रशंसा किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! इस समय लोकरक्षा विषयक सम्पूर्ण युक्तियोंको सुनो। यथा नियम पूर्व्वक आप्तलोंको नियत करना, दूत भेजना समयानुसार दान और मत्सर रहित पुरुषोंसे उत्तम युक्ति ग्रहण करना, दुष्ट उपायके सहारे प्रजासे कर संग्रह न करना, सत्यवादी होना समयके अनुसार वीरता और कार्य्यदक्षता प्रकाशित करनी, प्रजाके हित साधनमें तत्पर रहना, सरल वा कुटिल उपायको अवलम्बन करके शत्रुपक्षके मनुष्योंके बीच मतभेद कराना, साधु पुरुषोंको संग्रह करना, पुराने और टूटने योग्य मकानोंको निरीक्षण करके उन्हें दृढ़ करनेका यत्न, शारीरक और अर्थदण्डको यथासमय पर प्रयोग करना, साधु और उत्तम कुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुषोंको परित्याग न करके उन्हें यथा योग्य कार्य्योंपर नियुक्त करना, जिन्हें संग्रह करना, योग्य है उन पुरुषोंको संग्रह करना, बुद्धिमानोंकी सेवा, सेनाके पुरुषोंको उत्साहित करना, सदा प्रजाकी अवस्थाको देखते रहना, कोष बढ़ाना; कार्य्यमें ढीलापन न करना, प्रहरियोंका विश्वास न करके स्वयं निज राज्यको प्रजाओंका अनुसन्धान लेते रहना, अन्य पुरुषोंसे पुरवासी प्रजा और राजसेवकोंके बीच भेद उत्पन्न करा देना, गुप्तरोतिसे शत्रुओंके निकटमें स्थित मित्रोंके यथार्थ तत्वको निश्चय करना स्वयं अन्तःपुरकी ओर दृष्टि रखना, भृत्योंका एकबारगी विश्वास न करना, शत्रुओंको धीरज देना और उनकी अवज्ञा न करनी, दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग न करना; और सदा उद्योगी होकर नीतिमार्गका अनुगामी होना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य हैं। बृहस्पतिराजाओंके निमित्त उद्योगको ही राजधर्म्मकामूल

कहा, है । हे युधिष्ठिर ! इस विषयोंमें मैं एक प्राचीन श्लोक कहता हूं उसे सुनो, देवताओंने उद्योगसे अमृत लाभ करके असुरोंको मारा था ; और इन्द्र अपने उद्योगहीसे तीनों लोकोंके बीच विख्यात होके स्वर्गलोकके राजा हुए हैं । उद्योगी पुरुष पण्डितोंके ऊपर भी आधिपत्य करते और पण्डित लोग स्तुति आदि वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए उनकी उपासना किया करते हैं । राजा बुद्धिमान होनेपर भी उद्योगरहित होनेके कारण विषरहित सर्पकी भांति अपने शत्रुओंसे पराजित होता है । और निर्ब्बल शत्रुको भी अवज्ञा करनी बलवान पुरुषको कदापि उचित नहीं है, क्योंकि अग्नि तनिक भी होनेसे भस्म करती और थोड़ा सा विष भी प्राण नाश कर सकता है । शत्रु हाथी घोड़े आदि सब अङ्गोंमेंसे एक अंग मात्र लेकर ही दुर्गमें आश्रय ग्रहण करनेपर और समृद्धिमान श्रेष्ठ राजाके सम्पूर्ण देशोंको पीड़ित कर सकता है । राजाको उचित है, कि अपने गोपनीय वचन, शत्रु विजयके निमित्त सेना संग्रह, शारीरक और मानसिक कुटिलता तथा जो कुछ हीन कार्य्य करे, सम्पूर्ण मनुष्योंके निकट सरलता प्रकाशित करके उन कर्म्मोंको यत्नपूर्व्वक गोप न करे । मनुष्य संग्रह करनेवाला राजा सदा धर्म्माचरणमें प्रवृत्त रहे ; क्योंकि दुष्टस्वभाववाले पुरुष कदापि विशाल राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते । हे युधिष्ठिर ! इसी प्रकार अत्यन्त दयालु पुरुष भी राज्यकी रक्षा नहीं कर सक्ता और सरल प्रकृति अवलम्बन करनेसे भी राज्यकी रक्षा नहीं होसकती । इसके सरलता और कठोरता युक्त दोनों ही वृत्तियोंको अवलम्बन करना चाहिये । यदि इस नियमसे प्रजाकी रक्षा करनेमें राजाका विपत्ति भी उपस्थित होवे, तोभी इस ही नीतिसे गमन करना उसका सनातन धर्म्म है, क्योंकि ऐसी वृत्ति अवलम्बन करना ही राजाका कर्त्तव्य कर्म्म है । हे कुरुनन्दन ! यह सामान्य रूपसे राजधर्म्मका कुछ अंश वर्णित हुआ है ; अब तुम्हें जिन विषयोंमें सन्देह होवे, उसे मेरे समीप प्रकाशित करो ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर भगवान व्यासदेव, देवस्थान, अश्व, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य्य, सात्यकि और सञ्जय धर्म्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी पुरुषसिंह भीष्मकी धन्य धन्य कहके उनकी स्तुति करने लगे । महाराज ! उस समय वे सब कोई इस प्रकार आनन्दित होकर प्रसन्न हुए थे, जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे कमलका पुष्प खिलता है । अनन्तर राजा युधिष्ठिर दुखित चित्तसे आंखोंमें आंसू भरकर भीष्मके दोनों चरणोंको स्पर्श करके बोले, हे पितामह ! मुझे जिन विषयोंमें सन्देह है उसे कल्ह आपके निकट प्रकाशित करूंगा ; क्योंकि अब सूर्य्यदेव अस्त हुआ चाहते हैं । तिसके अनन्तर शत्रुनाशन यशस्वी कृष्ण, कृपाचार्य्य और राजा युधिष्ठिर आदि सब पुरुषोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम करके गङ्गानन्दन भीष्मको प्रदक्षिणा की ; फिर दृषद्वती नदीमें यथारीतिसे माङ्गलिक जप, सन्ध्योपासन और तर्पण आदि कर्म्मोंको समाप्त करके पश्चात् हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ।

५८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पाण्डव और यादवोंने दूसरे दिन प्रातःकालके नित्यकर्म्मोंको समाप्त करके रथमें चढ़कर फिर भीष्मके समीप जानेके वास्ते हस्तिनापुरसे प्रस्थान किया, उस समय पाण्डव और यादवोंके रथ मार्गमें गमन करते हुए नगरके समान बोध होते थे । अनन्तर वे सब कोई कुरुक्षेत्रमें पहुंचकर पापरहित गङ्गानन्दन भीष्मके

इसप्रकार कुशल प्रश्न करने लगे, कि "आपने सुखपूर्व्वक रात्रि व्यतीत की है न ?" फिर व्यास आदि महर्षियोंको नमस्कार करके सब कोई पुरुषश्रेष्ठ भीष्मके चारों ओर बैठ गये। तिसके अनन्तर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर भीष्मकी यथारीतिसे पूजा करके हाथ जोड़के कहने लगे।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन भरत-नन्दन! इस पृथ्वीपर "राजा" शब्द प्रचलित है, इसकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई है ; आप इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये इस पृथ्वी-पर हाथ, पांव, मुख, उदर, ग्रीवा, शुक्र, हड्डी मांस, मज्जा, रुधिर, बुद्धि, इन्द्रिय, आत्मा, सुख, इच्छा, विश्वास, प्राण, शरीर, जन्म, मृत्यु और अन्य गुण मनुष्योंमें समान होनेपर भी किस कारणसे एक ही पुरुष बुद्धिमान और शूरवीर पुरुषोंके ऊपर आधिपत्य करता है ? एक पुरुष ही इस शूरवीर और श्रेष्ठ पुरुषोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीकी रक्षा करता है, और सब कोई उसके प्रसन्न करनेकी अभिलाषा करते हैं ? हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भरतर्षभ! उस एक पुरुषके प्रसन्न होनेसे सब कोई प्रसन्न और उसके व्याकुल होनेसे सम्पूर्ण पुरुष व्याकुल होते हैं ; यह रीति जो सदासे प्रचलित है, मैं उसके सुननेकी इच्छा करता हूं ; इससे आप विस्तार पूर्व्वक इस वृत्तान्तको वर्णन कीजिये। हे नर नाथ! सब मनुष्य जो एक ही पुरुषकी आज्ञामें चलते हैं ; इसका कारण भी सामान्य न होगा।

भीष्म बोले, हे पुरुषसिंह युधिष्ठिर! पहिले सतयुगमें जिस प्रकार प्रथम राजत्व स्थापित हुआ था, उसे मैं कहता हूं, चित्त लगाके सुनो। पहिले राजा वा राज्य, तथा दण्डकर्त्ता और दण्ड कुछ भी नहीं था, प्रजा ही धर्म्मकी अनुगामिनी होकर आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करती थी। हे भारत! इसी भांति एक दूसरेकी रक्षा करते हुए वे सब कोई क्रमसे थक गये और उनका चित्त भ्रमित होने लगा। हे पुरुषश्रेष्ठ! इसी भांति चित्त विभ्रम उपस्थित होनेपर ज्ञान लोप होनेसे उनके धर्म्म कार्य्य नष्ट होने लगे। हे भरतर्षभ क्रमसे मोह और लोभ उपस्थित होनेपर वे लोग अप्राप्त वस्तुओंकी भी इच्छा करने लगे ; इससे विषयवासना और इन्द्रिय सुख आदि कामना-ओंने उनके चित्तको आक्रमण किया। हे युधि-ष्ठिर! इसी भांति भोगाभिलाष उपस्थित होने पर वे लोग उसमें इस प्रकार अनुरक्त हुए, कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञान और अनेक सद्वचनोंसे रहित होगये। हे राजेन्द्र! इसी कारण उन लोगोंमें अगम्य गमन, भक्ष्याभक्ष्य और दोष अदोषका कुछ भी विचार न रहा। हे राजन्! मनुष्य लोग इस प्रकार ज्ञानहीन होके विष-योंमें आसक्त हुए, तो वेद आदिक नष्टभ्रष्ट होने लगे और यज्ञादिक कर्म्म धर्म्म भी लुप्त होगये। हे पुरुषसिंह! इसी भांति जब वेदादिक धर्म्म लुप्त होगये, तब देवता लोग भयभीत होकर जगत् पितामह ब्रह्माकी शरणमें उपस्थित होकर उनकी स्तुति करने लगे ; और दुःखित चित्तसे हाथ जोड़के यह वचन बोले, हे भगवन्! मनुष्योंमें लोभ और मोह आदिक भावोंके उदय होनेसे सनातन वेदधर्म्म लुप्त हुआ है, इस ही कारण हम लोगोंको भय उपस्थित हुआ है। हे त्रिलोकी नाथ! ब्रह्मण वेदोंके लुप्त होनेसे यज्ञ आदिक धर्म्म कर्म्म भी नष्ट हुए हैं ; इससे हम लोग इस समय मर्त्यलोक वासी मनुष्योंकी समानताको प्राप्त हुए हैं। मनुष्य लोग हम लोगोंके निमित्त यज्ञमें आहुति प्रदान करते थे, और यज्ञसे तृप्त होकर हम लोग जलकी वर्षा करके मनुष्योंको आनन्दित करते थे ; परन्तु इस समय सम्पूर्ण कर्म्मोंके लुप्त होनेसे हम लोग भी नष्ट प्राय होगये हैं। हे पिता-मह! आपकी कृपासे हम लोगोंको जो कुछ ऐश्वर्य्य प्राप्त हुए थे, वह सब नष्ट हो रहे हैं ; इससे इस समयमें जिस भांति हम लोगोंका

कल्याण होवे, आप अनुग्रहकर उसीका विधान करिये ।

तिसके अनन्तर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा उन देवताओंसे बोले, हे देवता लोगो ! तुम लोग भय मत करो, जिससे तुम लोगोंका मङ्गल होगा, मैं वही उपाय करूंगा । अनन्तर पितामह ब्रह्माने निज बुद्धिके प्रभावसे एक सौ हजार अध्यायोंसे युक्त एक शास्त्र बनाके उसमें धर्म्म, अर्थ और कामका विस्तार पूर्व्वक वर्णन किया, ब्रह्माने धर्म्म अर्थ और कामको त्रिवर्ग कहके विख्यात किया, और त्रिवर्गसे विपरीत फलदायक पृथक् गुणविशिष्ट मोक्षनाम चतुर्थ पदका उस ही शास्त्रमें वर्णन किया । मोक्षको भी सकाम कर्म्म भेदसे सत्व, रज और तमरूपी त्रिवर्ग और निष्काम भेदसे उससे पृथक् अन्य एकवर्ग वर्णन किया । हे भरतश्रेष्ठ ! वणिकोंके धनकी रक्षा, तपस्वियोंकी बढ़ती और चोरोंके नष्ट करनेके वास्ते त्रिवर्ग आत्मा, देश, काल, उपाय प्रयोजन और सहाय नीतिसे उत्पन्न हुए, ये षड्वर्ग कर्म्म-काण्ड, ज्ञान-काण्ड, कृषि, वाणिज्य, जीविकाकाण्ड और विशाल दण्डनीति, ये सब विषय जगत् पितामह ब्रह्माके बनाये हुए एक लक्ष अध्यायोंमें पूर्ण रीतिसे वर्णित हैं । हे राजन् ! सेवकोंकी रक्षा ब्राह्मण और राजपुत्रोंके लक्षण, अनेक उपायके सहित जासूसोंको नियुक्त करना, ब्रह्मचारी आदि वेषधारी गुप्त चरोंको पृथक् पृथक् रूपसे नियत करना और साम, दान, भेद, दण्ड और उपेक्षा ये सब विषय उस शास्त्रमें विस्तार पूर्व्वक वर्णित हुए हैं । मन्त्र, भेदार्थ, मन्त्रविभ्रम और सिद्ध असिद्धिके फल भी उसमें कहे गये हैं । भययुक्त सत्कार सहित और अनग्रहण रूपी उत्तम, मध्यम और अधम सन्धि भी उसमें वर्णित है । चतुर्व्विध यात्रा काल, त्रिवर्ग विस्तार, धर्म्मयुक्त विजय, अर्थ विजय और अन्याय पूर्व्वक कर्म्मोंसे असुरविजय पूर्ण रीतिसे उस शास्त्रोंमें वर्णित है । उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे सेवक, राष्ट्र, किला, बल और कोष इन पञ्चवर्गोंके सब लक्षण वर्णित हुए हैं । प्रकाश्य और गुप्त दोनों भांतिकी सेना उसमें कही गई हैं ; और दोनोंका अष्टविध विस्तार वर्णित हुआ है । हे पाण्डुनन्दन ! रथ, हाथी, घोड़े, पत्ति, विष्टि, नाविक, भार उठानेवाले दूत और उपदेष्टा ये आठ प्रकाश्य बलके अङ्ग हैं । वस्त्रादिक, अन्न आदि भोजनकी वस्तु और अभिचारिक कार्य्योंमें जङ्गम अजङ्गम अर्थात् विषादिक चूर्ण योग रूप दण्ड वर्णित है । हे भरतर्षभ ! उस शास्त्रमें मित्र, शत्रु और उदासीन पुरुषोंके लक्षण भी वर्णित हुए हैं । ग्रह नक्षत्र आदिके मार्गगुण, भूमिगुण, मन्त्र और यन्त्रोंसे आत्मरक्षा, धैर्य्य और रथ निर्माण आदि कार्य्योंको अवलोकन करना, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके बलपुष्टिके अनेक भांतिके यत्न, योग, नाना भांतिके व्यूह, विचित्र युद्ध कौशल, धूमकेतु प्रभृति उत्पात, उल्कापात, शस्त्रोंको तीक्ष्ण करनेकी विधि और उनके चलाने तथा निवारण करनेकी विधि पूर्ण रीतिसे वर्णित है । हे पाण्डुपुत्र सब बलोंकी बढ़ती क्षय, और पीड़ा ; आपत कालमें सेनाके गुण दोषोंका ज्ञान, नगारे आदि बाजोंके शब्द सहित यात्रा कालमें गमन करनेका विधान, ध्वजा पताकासे युक्त रथ आदि वाहन, मन्त्रादिकोंसे शत्रुओंको मोहित करनेकी विधि इत्यादि ये सब विषय उस शास्त्रमें वर्णित हुए हैं । चोर, डकैत, जङ्गली भील-किरात, अग्नि, विष और कृत्रिम पत्र बनानेवाले पुरुषोंसे बलवान शत्रुओंमें भेद कराना, खेती कटवाना मन्त्र और औषधियोंके प्रयोगसे हाथी, घोड़ोंको दूषित करना, प्रजाको भय दिखाना, अनुयायियोंका आदर और सबके मनमें विश्वास उत्पन्न कराके शत्रुराज्यको पीड़ित करनेकी विधि उस

शास्त्रमें विशेष रूपसे वर्णन की गई है। और सप्तांग राज्यकी बढ़ती ह्रास, शान्ति स्थापन, राज्यको बढ़ाना, बलवान पुरुषोंको संग्रह करना इत्यादि ये सब विषय उसमें वर्णित हैं। शत्रुके निकटमें रहनेवाले मित्रोंमें भेद, बलवान शत्रुको बलपूर्व्वक पीड़ित करना, सूक्ष्म विचार कर्मोंका नाश, मल्लयुद्ध, शस्त्र चलाना, दान धन संग्रह, भूखोंको भोजन, सेवकोंके कार्य्योंका निश्चय, समयके अनुसार धनव्यय, मृगया आदि व्यसनोंमें अनिच्छा, सावधानता आदि राजगुण शूरता वीरता और धीरता आदि सेनापतिके गुण और त्रिवर्गके गुण दोष तथा कारण उस शास्त्रमें विस्तार पूर्व्वक वर्णित हुए हैं। नाना भांति की दुरभिसन्धि, अनुयायी और सेवकोंकी यथा योग्य वृत्ति, सब भांतके प्रमादोंकी शक्ति, तत्व, निवारण विधि, अप्राप्त अर्थका लाभ, प्राप्त अर्थ की बढ़ती, और बढ़ाये हुए धनको विधिपूर्व्वक सत्पात्रोंको दान करना, यज्ञादि धर्म्म कर्म्मोंमें दान, काम्यदान और विपद उपस्थित होनेपर धन दान करनेकी विधि भी उस लक्ष श्लोकवाले शास्त्रमें वर्णित है। हे कुरु-श्रेष्ठ! लक्ष अध्यायवाले शास्त्रके बीच क्रोध और कामसे उत्पन्न हुए दश प्रकारके व्यसनोंका भी वर्णन है।

हे भरतर्षभ! तिसके बीच पितामह ब्रह्माने कहा है, जूआ, मृगया, सुरापान और स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति ये चारों व्यसन कामसे उत्पन्न होते हैं। कठोर वचन, क्रुद्धस्वभाव, कठोर दण्ड, निग्रह, क्रोधके वशमें होकर आत्महत्या करनी और अर्थ दूषण ये छःहो व्यसन क्रोधसे प्रकट होते हैं। उस शास्त्रमें यन्त्र बनानेके निमित्त नाना भांतिके कौशल और उसकी क्रियाका वर्णन है। शत्रुओंको पीड़ित करना युद्ध-मार्गोंको ठीक करना, कांटोंसे युक्त लता-ओंका विनाश, कृषिकर्म्मकी रक्षा, आवश्यकीय वस्तुओंका संग्रह, वर्ण और वर्म्म निर्म्माणको युक्तियोंका भी उस शास्त्रमें वर्णन हुआ है। हे युधिष्ठिर! उसमें ढोल, मृदङ्ग शङ्ख, भेरी आदि बाजोंके बजाना और मणि, पशु, भूमि, वस्त्र, दासी और सुवर्ण आदि छः प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह, रक्षा, दान, साधुओंका पूजन, पण्डितोंका सत्कार, दान और होमके नियमोंका ज्ञान, सुवर्ण आदि माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श, शरीरको अलंकृत करना, भोजनके नियम और आस्तिकता आदि सम्पूर्ण विषय कहे गये हैं। हे भरतर्षभ! विषय उत्थापित करना, वचनको सत्यता सभा और उत्सवोंके बीच वचनकी मधुरता, ध्वजारोहणादिक गृह-कार्य्य, साधारण पुरुष जिन स्थानोंमें बैठते हैं; उन स्थानोंमें प्रत्यक्ष और परोक्षमें जिन कार्य्योंके अनुष्ठान होते हैं उसका अनुसन्धान, ब्राह्मणोंको अदण्डित करना, युक्तिपूर्व्वक दण्ड विधि, अनुजीवी और स्वजातिके पुरुषोंके गुण अनुसार उनकी मर्य्यादा स्थापित करनी, पुर-वासियोंकी रक्षा, और राज्य बढ़ानेकी विधि पूरी रीतिसे उस शास्त्रमें वर्णित है। हे राजेन्द्र! शत्रु, मित्र और उदासीन प्रत्येकमें चार चार भेदोंसे द्वादश राजमण्डल विषयक युक्ति, वेद-शास्त्रोंमें कही हुई पवित्रता, बहत्तर प्रकारके शरीर संस्कार और देश, जाति तथा कुल भेदसे पृथक् पृथक् धर्म्म भी उसमें कहे गये हैं। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले! उसमें धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, अनेक भांतिके उपाय और अर्थ-लिप्साके विषय सम्पूर्ण रूपसे वर्णित हुए हैं। कोष बढ़ानेकी विधि कृषि आदि कार्य्य, माया-योग और बंधे हुए सोतके जलके समस्त दोष कहे गये हैं। हे राजशार्दूल! जिन जिन उपायोंको अवलम्बन करनेसे मनुष्य लोग आर्य्य पुरुषोंके अवलम्बित मार्गसे विचलित नहीं होते, वे सब विषय पितामहके बनाये हुए नीति शास्त्रमें वर्णित हैं। भगवान लोकनाथ पितामह इस मंगलजनक शास्त्र बनाके प्रसन्न चित्तसे

इन्द्रादिक देवताओंसे बोले, कि मैंने सम्पूर्ण लोकोंके उपकार और त्रिवर्ग संस्थापनके वास्ते दूधके नवनीत समान समस्त वाक्योंके साररूपी यह युक्ति प्रकाशकी है। लोकरक्षा करनेवाली इस युक्तिको दण्डके सहित प्रयोग करनेसे यह सम्पूर्ण प्राणियोंके निग्रहमें समर्थ होकर पृथ्वीपर प्रचारित होगी। यह जगत् दण्डसे बना है, अथवा जगत्से ही दण्ड प्रकट हुआ है; इसीसे यह नीति तीनों लोकके बीच दण्डनीति कहके विख्यात होगी। समस्त षाड्गुण्यगुणोंका सारभूत यह शास्त्र सदा महात्माओंके आगे स्थित रहेगा; क्यों कि धर्म्म, अर्थ काम और मोक्ष ये सब इसके बीच वर्णित हुए हैं। तिसके अनन्तर वहुरूप, विशालाक्ष, स्थाणु भगवान उमापति शङ्करने पहिले ही उस नीतिशास्त्रको ग्रहण किया। भगवान् शिवने सब प्रजाके आयुका समय घटा हुआ जानके पितामह कृत उस महार्थ शास्त्रको संक्षिप्त किया। महातपस्वी ब्राह्मण श्रेष्ठ इन्द्रने दस हजार अध्याय वाले उस वैशालाक्ष नाम नीतिशास्त्रको ग्रहण कर संक्षेप करके पांच हजार अध्याय किया और वह शास्त्र बाहुदन्तन नामसे विख्यात हुआ, हे तात! वह इस समय बार्हस्पत्य शास्त्र कहके पुकारा जाता है। अत्यन्त बुद्धिमान् योगाचार्य्य महायशस्वी शुक्रने उसे संक्षेप करके एक हजार अध्याय किया। इसी भांति सम्पूर्ण प्राणियोंके आयुष्काल की अल्पताके अनुसार महर्षियोंने अपनी अपनी बुद्धिके प्रभावसे उस शास्त्रको संक्षेप किया। अनन्तर देवताओंने प्रजापति विष्णुके निकट उपस्थित होके कहा,—"जो सम्पूर्ण मर्त्यलोकवासी प्राणियोंके ऊपर प्रभुता कर सके, आप वैसे किसी एक पुरुषको आज्ञा करिये।" अनन्तर देवोंके प्रभु भगवान नारायणने तैजस और विरजा नाम दो मानसपुत्र उत्पन्न किये। हे पाण्डु-पुत्र! उनमें महाभाग विरजाने भूमण्डल पर प्रभुता करनेकी इच्छा नहीं की; क्यों कि उनकी बुद्धि सन्न्यासवृत्तिमें अनुरक्त हुई। उनके कीर्त्तिमान नाम जो पुत्र उत्पन्न हुआ था; वह भी पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। कीर्त्तिमानके पुत्र कर्द्दमने भी अत्यन्त तपस्या की। प्रजापति कर्द्दमके दण्डनीति जाननेवाला अनंग नाम पुत्र हुआ था, वही प्रजाकी रक्षा करनेलगा, तिसके अनन्तर अनंग पुत्र नीतिमान् अतिबल राज्य पाके इन्द्रिय परायण हुए। तीनों लोकमें विख्यात सुनीथा नाम्नी मृत्युकी जो मानसी कन्या थी, उसीसे वेणुका जन्म हुआ। अतिबल-पुत्र वेणु राग, द्वेषके वशमें होकर प्रजाके ऊपर अधर्म्म आचरण करनेलगे; तब ब्रह्मवादी ऋषियोंने मन्त्र-पूरित कुशोंसे उन्हें मार डाला। तिसके अनन्तर उन ऋषियोंने मन्त्र पढ़के वेणुकी दहिनी जङ्घाको मथा, उससे पृथ्वीपर कुरूप-वेष जलते हुए स्थूण समान लाल नेत्र, बिखरे केश और छोटे अङ्ग वाला एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उन ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे "निषीद" अर्थात् पतित हो,—ऐसा ही कहा, इससे उस पुरुषसे जो क्रूर मनुष्य उत्पन्न भये, उन सबोंने "निषाद" नामसे विख्यात होके पहाड़ तथा वनोंका आसरा ग्रहण किया। हे राजन्! इस समय जो सब विन्ध्याचल पर्व्वतपर वास करते हैं, और दूसरे जो अनगिनत म्लेच्छ हैं; ये सब उन्हीं निषादोंसे उत्पन्न हुए हैं। अनन्तर महर्षियोंने फिर वेणुका दहिना हाथ मथा, उससे कवचधारी, बद्धनिस्त्रिंश धनुष बाणसे युक्त, वेद वेदांग और धनुर्व्वेद जाननेवाला द्वितीय इन्द्रके समान एक दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ। महाराज! दण्डनीतिने मानो मूर्त्तिमयी होके उसका आसरा ग्रहण किया। तिसके अनन्तर वेणु-पुत्र हाथ जोड़के महर्षियोंसे बोले, मुझे जो अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि उत्पन्न हुई है, उससे मैं किन कार्य्योंका अनुष्ठान करूंगा, वह आप लोग मुझसे सत्य ही कहिये। आप लोग मुझसे जो

धर्मयुक्त कार्य्य करनेको कहेंगी, मैं शीघ्र ही उसे पूर्ण करूंगा, उसमें कुछ सन्देह नहीं है।

अनन्तर देवताओं और परमर्षियोंने उससे कहा, "तुम नियमपूर्वक निर्भय-चित्तसे धर्मयुक्त कार्योंका आचरण करो। तुम काम, क्रोध, लोभ और अभिमान त्यागके और प्रिय अप्रियका विचार न करके सब जन्तुओंमें समभाव प्रकाशित करना। पृथ्वीपर जो कोई मनुष्य धर्ममार्गसे विचलित होगा, तुम धर्मको ओर दृष्टि रखके अपने बाहुबलसे उसे दण्ड देना। हे शत्रुतापन। तुम मन, और वचनसे ऐसी प्रतिज्ञा करो, कि अखिल भौम पदार्थको ब्रह्मस्वरूप जानके पालन करूंगा; स्वेच्छाचारी होकर, दण्डनीतिके नियम अनुसार जो सब धर्म कहे गये हैं, निर्भयचित्तसे उन्हींका आचरण करूंगा; द्विजातिगण मुझसे अदण्ड और मैं सब प्राणियोंको शङ्कटसे रक्षा करूंगा। तिसके अनन्तर वेणपुत्र उन ऋषियों तथा देवताओंसे बोले, पुरुषश्रेष्ठ महाभाग ब्राह्मण लोग मेरे नमस्य होंगे। उन ब्रह्मवादी ऋषियोंने "ऐसा ही होगा" कहके अंगोकार किया, तब ब्रह्ममय निधिस्वरूप भगवान शुक्र उनके पुरोहित हुए। सारस्वत्य और वालिखिल्य गण उनके मन्त्री और महर्षि गर्ग भगवान ज्योतिर्व्विद हुए। इसी भांति शरीर भेदमें विष्णुसे अष्टम पर्य्याय वेणपुत्र पृथुने पृथ्वीपर राज्य स्थापित किया, ऐसे ही अनश्रुति है। इसके पहिले ही सूत और मागध नामक उनके दो बन्दी उत्पन्न हुए थे, प्रतापी वेणपुत्र पृथुने उन दोनोंके ऊपर प्रसन्न होकर सूतको अनूपदेश और मागधको मगध देश प्रदान किया। महाराज! हमने सुना है पहिले भूमिमें अत्यन्त ही वैषम्यदोष था, क्यों कि प्रति मन्वन्तरोंमें पृथ्वी सर्व्वत्र ही विषम हुई थी, उस ही कारण वेणपुत्रने धनुषसे पत्थरोंको शिला उठाके वर्द्धित करते हुए पृथ्वीको समतल सम्पादन किया। हे पाण्डुपुत्र! इसी भांति पृथु इन्द्र आदिक देवताओं, विष्णु प्रजापालक और ब्राह्मणोंसे अभिषिक्त हुए; रत्नपूरित वसुन्धरा मानो मूर्त्तिमयी होकर उनकी प्रणयिनी हुई। हे युधिष्ठिर। सरितापति समुद्र, पर्व्वतोंमें उत्तम हिमवान और देवराज इन्द्रने उन्हें अविनाशी धन प्रदान किया। कनकपर्व्वत सुमेरुने स्वयं आके सुवर्ण प्रदान किया। यक्ष और राक्षसोंके स्वामी नरवाहन भगवान कुवेरने धर्म, अर्थ काम इन त्रिवर्ग साधनमें समर्थ धन प्रदान किया। हे पाण्डुनन्दन! उस पृथुके चिन्तन करते ही अनगिनत रथ, हाथी और पुरुष उत्पन्न होने लगे। उनके राज्य शासनके समयमें जरा, दुर्भिक्ष, आधि अथवा व्याधि कुछ भी नहीं थी। उनके शासनके समयमें सर्प अथवा चोरोंसे भी दूसरेको भय नहीं उपस्थित होता था, वह जब समुद्रमें गमन करते थे; उस समय तरङ्ग मालासे युक्त समुद्रका जल स्तम्भित होजाता; सम्पूर्ण पर्व्वत दो भागोंमें बंटके उन्हें मार्ग प्रदान करते थे। अधिक क्या कहें उनको कहीं भी गतिरोध वा ध्वजा-भङ्ग आदि अशकुन नहीं उपस्थित होते थे। उन्होंने शस्यके वास्ते इस पृथ्वीको सत्तरह बार दोहन किया था; उससे यक्ष, राक्षस और सर्पोंने अपनी समस्त अभिलषित वस्तुओंको पाया था। इसी भांति उस महात्मा पृथुने भूलोकमें धर्म स्थापित करके प्रजापुञ्जके मनको रञ्जन किया, उसी समयसे पृथ्वीमें "राजा" शब्द प्रचलित हुआ। ब्राह्मणोंको क्षतसे परित्राण करनेसे क्षत्रिय कहलाये; पृथुने धर्मपूर्व्वक मेदिनीको प्रथित किया था, उसी कारण यह धरा पृथिवी नामसे विख्यात हुई। हे भारत! सनातन विष्णुने स्वयं उनकी यह मर्य्यादा स्थापित की, कि "हे राजन्! तुम्हें कोई भी अतिक्रम न कर सकेगा।" भगवान विष्णुने तपके प्रभावसे भूपतिके शरीरमें प्रवेश किया। महाराज!

अखिल जगत् देव-सदृश उस नरदेवके समीप नत होता रहता है। हे नरनाथ ! जिसमें चार-वृत्ति अवलोकन द्वारा कोई नष्ट करनेमें समर्थ न होसके ; उसी भांतिकी दण्ड-नीतिसे नियमानुसार राज्य रक्षा करनी उचित है। हे राजेन्द्र ! राजा की चित्तवृत्ति और कर्म्मोंके समतानुसार उसके किये हुए शुभ कार्य्यादिकोंके फल शुभरूपसे परिणत होते हैं। हे युधिष्ठिर ! सब प्राणी जो एक ही पुरुषके वशीभूत होते हैं, यह दैव निर्व्वन्ध ही उसका कारण है, दूसरा कोई भी कारण नहीं है।

हे पाण्डुनन्दन ! उसी समय विष्णुके मस्तकसे एक सुनहला कमल प्रकट हुआ, उसीसे बुद्धिमान धर्म्मकी पत्नी अर्थात् पालयित्री स्त्री उत्पन्न हुई। धर्म्मत श्रीसे ही सब अर्थ उत्पन्न हुए। तभी से राज्यमें श्री, अर्थ और धर्म्म ये तीनों ही प्रतिष्ठित हुए। मनुष्य पूर्व्व जन्मके किये हुए सुकृतके क्षय होनेपर स्वर्ग लोकसे पृथ्वीपर आगमन करके सतोगुणावलम्बी, बुद्धिमान, दण्डनीति जाननेवाले भूपति होकर जन्म ग्रहण करते और तिसके अनन्तर देवताओंसे अभिषित होकर असीम महात्म्यको प्राप्त होते हैं। महाराज ! अखिल जगत् जो एक ही पुरुषके वशीभूत होता है और उसके शासनका अतिक्रम नहीं करता, उसका यही कारण है, परन्तु वह जगत्विधान कर्त्ता है,—ऐसा जानके नहीं। हे राजेन्द्र ! शुभ कर्म्मोंके फल शुभ रूपसे ही परिणत होते हैं, देखिये हाथ पाव आदि अवयव सबके समान ही होते हैं, तौभी सब कोई एक ही की आज्ञामें चलते हैं। जो उसके मनोहर मुखको देखता है, वही उसके वशमें होजाता है; मङ्गलमय रूपवान और धनुवान ही उसका दर्शन करते है। हे युधिष्ठिर ! उसका महा दण्ड ही पृथ्वीमें धर्म्म संस्थापनका मूल, स्पष्ट वचनवाली नीति और सुन्दर रीतिका प्रचार दीख पड़ता है। हे युधिष्ठिर ! इसी भांति पितामहके बनाये हुए शास्त्रके बीच पुराणोंके आगम, महर्षियोंके सम्भव, तीर्थ और नक्षत्रों की उत्पत्ति गार्हस्थ्य आदि चारों आश्रमोंके नियम, चातुर्होत्र, चारोंवर्ण और चारों विद्या प्रभृति सब ही वर्णित है। इतिहास, वेद, न्याय, तपस्या, ज्ञान, अहिंसा, सत्य, मिथ्या और उत्तम नीति सब विस्तारके सहित वर्णित हैं। वृद्धोंकी सेवा, दान, पवित्रता, उत्थान और सब प्राणियोंके ऊपर दया प्रकाश करना, ये सब उस शास्त्रमें वर्णित हैं। हे पाण्डुपुत्र ! अधिक क्या कहूं, इस पृथ्वीपर जो कार्य्य हैं, वह सब पितामहके बनाये हुए उस शास्त्रमें निःसन्देह रूपसे वर्णित हुए हैं। हे राजेन्द्र ! उस ही समयसे पण्डित लोग "देव और नरदेव समान है,"—ऐसा ही कहा करते हैं। हे भरत श्रेष्ठ महाराज ! ये ही सब राजाओंके कर्त्तव्य विषय सब भांतिसे कहे गये, अब कहिये दूसरा कौनसा विषय कहूं ?

५९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर नियमशील युधिष्ठिरने गङ्गानन्दन भीष्म पितामहको प्रणाम करके फिर पूंछा, हे कुरुश्रेष्ठ पितामह ! अनुलोम और विलोम जात वर्णोंके साधारण धर्म्म क्या है ? ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके चारोंवर्णोंसे पृथक् धर्म्म और आश्रम क्या है ? कौन धर्म्म राजधर्म्म करके माना जाता है ? किस भांति राज्य बढ़ता है और कौनसा उपाय अवलम्बन करनेसे राजा और पुरवासियोंकी उन्नत अवस्था हो सकती है ? राजा कैसे कोष, दण्ड, किला, सहाय, मन्त्री, ऋत्विक, पुरोहित और गुरुको परित्याग करे ? पितामह ! किस भांतिकी आपद उपस्थित होनेपर कैसे मनुष्यका विश्वास करना उचित है ? और किस विषयसे आत्माको सब

भांतिसे रक्षा करनी उचित है? आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, मैं उस महत् धर्म्म, पूर्णब्रह्म कृष्ण भगवानको, प्रणाम करके नित्य धर्म्म की व्याख्या करूंगा। हे युधिष्ठिर! क्रोध न करना, सत्यवचन सम्बिभाग, क्षमा, निज स्त्रीमें सन्तोष, पवित्रता किसीसे वैर न करना, विनीतता और सेवकोंका पालन ये नव अनुलोम और विलोम जात वर्णोंके साधारण धर्म्म हैं। और इसके अतिरिक्त जो सनातन धर्म्म केवल ब्राह्मणोंके ही आचरित हैं, उसे कहता हूं सुनो, महाराज! दम अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, तपके क्लेशोंमें सहनशीलता और जिससे दूसरे सब सांसारिक कार्य्योंको समाप्ति होती है, वैसे वेदको अध्ययन करना ही ब्राह्मणोंका सनातन धर्म्म है। इसी भांति शान्त प्रकृतिवाले बुद्धिमान ब्राह्मण दुष्कर्म्मोंमें रत न होके निज कर्म्मोंमें तत्पर रहने पर यदि अर्थ स्वयं ही उसके समीप उपस्थित होवे, तो सन्तान उत्पन्न होनेकी अभिलाषासे दार परिग्रह करके वह सदा ध्यान और यज्ञ आदि सत्कर्म्म करे। और भी पण्डितोंने कहा है, कि उस अर्थको स्वजनोंके सहित समभावसे भोग करे। वेदाध्ययनके सङ्ग ही ब्राह्मणोंके सब कार्य्य समाप्त होते हैं, इसके अनन्तर और कोई कर्म्म करे, वा न करे, वह सब प्राणियोंका प्रियपात्र ब्राह्मण कहके विख्यात होता है।

हे भारत! क्षत्रियोंके जो पृथक् धर्म्म हैं, वह भी तुमसे कहता हूं, सुनो। महाराज! क्षत्रिय दान करे परन्तु किसीसे मांगे नहीं यज्ञ आदि करे, परन्तु याजकता न करे; अध्ययन करे, पर किसीको पढ़ावे नहीं; प्रजापुञ्जको सब भांतिसे पालन करे, सदा डाकुओंके बधमें नियुक्त रहे और रणभूमिमें पराक्रम प्रकाशित करे। जो राजा अश्वमेध आदि यज्ञोंको करके पृथ्वी मण्डलपर महत् कीर्त्ति स्थापित करते और जो युद्धक्षेत्रमें विजय प्राप्त करते हैं; वेही त्रिलोकवासी सब प्राणियोंको अपने वशमें कर सकते हैं। क्षत्रियोंकी अक्षत शरीरसे युद्धसे निवृत्त होने पर दीर्घदर्शी पण्डित लोग उनके वैसे कर्म्मको प्रशंसा नहीं करते; इससे धर्म्मकी अभिलाष करने वाला राजा विशेष यत्नके सहित युद्ध करे। क्षत्रबन्धु अर्थात् अधम क्षत्रियोंको मुख्य करके यही मार्ग अवलम्बन करना उचित है; परन्तु डाकुओंको दमन करनेके अतिरिक्त दूसरे कोई भी कर्म्म उनके कर्त्तव्य कार्य्य कहके नहीं बोध होते। दान, अध्ययन और यज्ञ ही राजाओंके निमित्त मङ्गलकारी हैं; राजा प्रजा समूहको उनके निज धर्म्म स्थित करके धर्म्म पूर्व्वक समभावसे सब कार्य्योंको सिद्ध करे। इसी भांति प्रजापालन करनेसे राजाओंके सब कार्य्य समाप्त होते हैं। इसके अनन्तर वे कोई कार्य्य करें, वा न करें; सब प्राणियोंके मुख्य राजा कहके प्रसिद्ध होते हैं।

हे युधिष्ठिर! वैश्योंका भी जो सब नित्यधर्म्म है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो। वैश्य दान, अध्ययन, यज्ञ उत्तम उपायके सहारे धन सञ्चय और अनुराग पूर्व्वक पिताकी भांति पशुओंका पालन करे, दूसरा कुछ भी कार्य्य न करे; क्यों कि इसके अतिरिक्त दूसरे सब कार्य्य ही उसके अकर्त्तव्य कहके वर्णित हुए हैं। प्रजापतिने सृष्टिके अनन्तर ब्राह्मणोंको, बनाया है, राजाओंको सब जाति वाली प्रजा और वैश्योंको समस्त पशु प्रदान किया है; इससे वैश्य उस ही रीतिके अनुसार पशु रक्षामें नियुक्त रहनेसे महत् सुख प्राप्त करता है। इसके अनन्तर वह जिस वृत्तिको अवलम्बन करेगा तथा जिस उपायके सहारे जीविका निर्व्वाह करेगा, वह भी कहता हूं। जो वैश्य छः गऊ पालन करे, वह निज वेतन रूपी एक गऊका दूध पीवे। सौ गऊकी रक्षा करनेवाला

निज वार्षिक वेतनस्वरूप एक गो-मिथुन पावेगा। सींग और खुरके अतिरिक्त द्रव्यके वाणिज्यसे प्राप्त हुआ और सब भांतिके शस्य तथा बीजका सातवां भाग उसका अंश कहके वर्णित हुआ है; और यही उसका एक सौ वर्षका वेतन है। वैश्य पशुओंके पालनमें अनिच्छा प्रकाशित न करे, और उसके इच्छा करनेपर दूसरे किसी वर्णवालेको ही सब पशुओंको रक्षा करना कर्त्तव्य नहीं है।

हे भारत! शूद्रोंके भी जो सब पृथक् धर्म्म हैं, उसे कहता हूं, सुनो। प्रजापतिने शूद्रको अन्य सब वर्णोंका दास कहके वर्णन किया है, इससे सब वर्णवालोंको सेवा करना ही शूद्रका कर्त्तव्य है, उनकी सेवा करनेसे ही शूद्रको महत् सुख प्राप्त होता है। शूद्र पर्य्याय क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहे, परन्तु कभी भी धन सञ्चय न करे, क्योंकि वह धनवान होनेसे अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंको वशीभूत और कार्य्योंके करनेमे प्रवृत्त होगा; परन्तु राजाकी आज्ञानुसार लोभके वशमें न होकर धर्म्म प्रधान कार्य्योंको करनेके वास्ते थोड़ा धन सञ्चय कर सकेगा। शूद्र जिस वृत्तिको अवलम्बन करेगा और जिस उपायके सहारे जीविका निर्व्वाह करेगा; वह भी कहता हूं। शूद्र, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंका अवश्य ही पालनीय है, उष्णीष वेष्टन, पुराना छत्र, जूता और व्यजन आदि परिचारक शूद्रको प्रदान करना योग्य है। न पहरने योग्य पुराने वस्त्र शूद्रको देना उचित है, क्यों कि वह उसका ही धर्म्म-धन है। धर्म्मात्मा मनुष्य कहा करते हैं, कि शूद्र सेवा करनेकी इच्छासे द्विजातियोंके बीच यदि किसीके पास जाय, तो वह उसके उपयुक्त वृत्तिको उसे प्रदान करे। प्रतिपालक द्विजातिके अपत्य हीन होने पर शूद्र उसे पिण्डदान करे और वृद्ध तथा दुर्व्वल होनेपर उसका पालन भी करे। अधिक क्या तक कहें चाहे कैसी ही विपत् क्यों न उपस्थित होवे, किसी अवस्थामें भी स्वामीको परित्याग करना शूद्रका कर्त्तव्य नहीं है। स्वामी की दीन दशा उपस्थित होनेपर अपने परिवारसे भी अधिक उसका पालन करना शूद्रका कर्त्तव्य है; क्योंकि शूद्रका जो कुछ धन आदि रहता है, वह सब उसके स्वामीका है, उसमें उसे कुछ अधिकार नहीं है।

हे भरतनन्दन! ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके वास्ते धर्म्म और यज्ञ आदि वर्णित हुए हैं, परन्तु शूद्रोंको स्वाहाकार वषट्कार और अन्य वैदिक मन्त्रोंमें अधिकार नहीं है; इससे वे लोग स्वयं श्रौतव्रतसे रहित होकर ग्रहशान्ति और वैश्वदेवादि छोटे यज्ञोंको करते हुए शास्त्रोक्त पूर्णपात्रमयी दक्षिणा प्रदान करें। महाराज! मैंने सुना है, पहिले पैजवन नाम शूद्रने ऐन्द्राग्न-विधानसे यज्ञ करके दक्षिणा स्वरूप एक लाख गऊ दान किया था। हे भारत! ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण जो कुछ यज्ञ आदि करते हैं, उनके सेवक शूद्र भी उसके फल भागी होते हैं। महाराज! सब यज्ञोंसे श्रद्धा यज्ञ ही श्रेष्ठ है और यजमानोंका पवित्र महत् देवता है। ब्राह्मण भी निज निज सेवक शूद्रोंके महत् देवता हैं, इससे वे लोग श्रद्धाके सहित उनकी आराधना करनेसे अवश्य ही स्वामीकृत यज्ञादिकोंके फलभागी होंगे। ब्राह्मणोंसे ही इतर तीनों वर्णोंकी सृष्टि हुई है, इससे वे लोग स्थिर होके कामनाके सहित यज्ञादि न करने पर भी अवश्य ही ब्राह्मणोंके किये हुए यज्ञादिकोंके फलभागी हुआ करते हैं। जो देवताओंके भी देवता हैं, वे ब्राह्मण लोग जो कुछ कहें, वही मङ्गलजनक है। इसही कारण शूद्र आदि वर्ण श्रौत वा स्मार्त्त यज्ञोंको न करें, ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य्योंमें प्रवृत्त होवें। ऋक्, यजु और साम वेद जाननेवाले ब्राह्मण शूद्रोंके निकट देवताके समान पूजनीय

होते हैं, और दासरूपसे परिगणित शूद्र त्रिवर्णातिरिक्त होकर भी प्रजापति-दैवत कहके गिना जाता है। हे तात भारत! सङ्कल्प करके देवताओंके निमित्त द्रव्यत्यागरूपी यज्ञमें सब वर्णवालोंको अधिकार है; अधम वर्ण शूद्र भी यदि वैसा यज्ञ करे, तो देवता लोग तथा उत्तम वर्णवाले भी उसके यज्ञभागको ग्रहण करते हैं। महाराज! इस ही कारण सब वर्णोंके वास्ते श्रद्धायज्ञकी विधि वर्णित हुई है। ब्राह्मण लोग क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके असाधारण देवता हैं, इससे वे आत्मीय ब्राह्मण उन लोगोंसे घिरके उनके फललाभकी अभिलाषसे यज्ञादि नहीं करते, यह अत्यन्त ही असम्भव है। परन्तु "मैं अमुक कामनासे अमुक पुरुषसे वृत होकर अमुक यज्ञ करता हूं" इसी उद्देश्यसे सदा यज्ञादि किया करते हैं इसी भांति वैश्य-गणसे लाया हुआ मन्त्र संसृष्ट यज्ञ नीच वर्णवालोंमें दीखता है। हे युधिष्ठिर! यह सब देखके निश्चय बोध होता है, ब्राह्मणोंसे ही क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई है। जब कि ब्राह्मण ही क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके यज्ञस्रष्टा हैं और उनके विकारसे ही क्षत्रिय आदिकी कन्याओंसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है, इससे क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण साधु और ब्राह्मणोंके ज्ञातिवर्ण हैं; क्योंकि एक मात्र ब्रह्मसे ही पहिले ब्राह्मण जातिकी उत्पत्ति हुई, और उस ब्राह्मणसे ही क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीनों वर्ण उत्पन्न हुए हैं। जैसे एक मात्र अकारसे ही साम, ऋक् और यजु ये तीनों वेद उत्पन्न हुए हैं, और वे वेद उससे भिन्न नहीं हैं; वैसे ही एक ब्रह्मसे ही ब्राह्मणादिक चारों वर्ण उत्पन्न होके भी परस्पर समान हैं। हे राजेन्द्र! पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस प्रस्तावके उदाहरण स्वरूप यियक्षु वैखानस मुनियोंके यज्ञ समयमें विष्णु-गीत यज्ञ-स्तुति विषयक जो कई एक श्लोक कहा करते हैं, उसे सुनो। सबेरे, मध्याह्न और सन्ध्याके समय श्रद्धावान जितेन्द्रिय पुरुष जो अग्निमें होम किया करते हैं, श्रद्धा ही उसमें मुख्य कारण है। ब्राह्मणोंमें जो षोड़श प्रकारके अग्निहोत्र कहे गये हैं, उसमें जो अस्कन्न अर्थात् मरुत-दैवत है, वह निकृष्ट और अस्कन्न अर्थात् यथा विधिसे होम होता है, वही सबसे उत्तम है। जो उन षोड़श भांतिके अग्निहोत्र, अनेक भांतिके यज्ञोंके रूप तथा कई प्रकारके कर्म और उनके फलोंकी जानते हैं, वेही ज्ञानी श्रद्धावान द्विजाति ही यज्ञ कर सकते हैं। जो यज्ञादिकोंसे यज्ञस्वरूप विष्णुके आराधनाकी इच्छा करता है, वह पुरुष यदि चोर पापी वा महापापी हो, तौभी पण्डित लोग उसे साधु ही कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! जब कि यही उत्तम है और महर्षि लोग इसीकी प्रशंसा किया करते हैं, तब सब वर्णोंको ही सर्व्वदा सब भांतिसे यज्ञ करना कर्त्तव्य है, यही निर्णय हुआ है। तीनों लोकमें यज्ञके समान दूसरा कोई भी कर्म नहीं है, इससे सबको ही असूया-रहित और श्रद्धावान होकर शक्ति तथा इच्छानुसार यज्ञ करना उचित है।

६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाबाहो सत्यपराक्रमी युधिष्ठिर! अब चारों आश्रमोंके नाम और कर्म्मोंको सुनो। शास्त्रकारोंने वाणप्रस्थ, भैक्षचर्य्य, महत् गार्हस्थ्य और चौथा ब्राह्मणोंसे परिवृत्त ब्रह्मचर्य्य,—यही चार प्रकारके आश्रमोंका वर्णन किया है। द्विजकुलमें जन्म लेकर जटाधारण संस्कार और अग्न्याधान आदि कार्य्योंको समाप्त करके वेद पढ़ते हुए आत्मवान और जितेन्द्रिय होकर सस्त्रीक हो, चाहे स्त्रीरहित होकर ही गृहस्थाश्रममें कृत-कृत्य

होकर फिर वाणप्रस्थ आश्रममें गमन करे। इसी भांति वाणप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करके वहीं पर वनवासी वाणप्रस्थ पुरुषोंके अनुशासनको यथारीतिसे अनुष्ठान कर ऊर्द्धरेता होकर प्रव्रज्या करते हुए मोक्षपद पुरुष पाते हैं। हे राजन्! यही सब ऊर्द्धरेता मुनियोंके मोक्षका कारण है, इससे विद्वान ब्राह्मणोंको पहिले यही सब कार्य्य करना उचित है। हे महाराज! मोक्षकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंको इस ब्रह्मचर्य्य आश्रमके कर्त्तव्य कर्म्मोंका आचरण करनेके अनन्तर उन्हें भैक्षचर्य्यरूप चौथे आश्रममें अधिकार होता है। ब्राह्मण इस आश्रममें प्रवेश करके अस्तमितशायी अर्थात् दिनमें निद्रारहित, आत्म-शुभ इच्छासे हीन, गृहरहित, मननशील, धार्म्मिक और जितेन्द्रिय होकर जो कुछ भोजनकी वस्तु प्राप्त होवे, उससेही जीविका निर्व्वाह करे। आशारहित, सबमें समभावसे युक्त, निर्भोग और निर्व्विकार अर्थात् काम सङ्कल्प आदिसे रहित ब्राह्मण इस मङ्गलमय आश्रममें निवास करके मोक्षपद प्राप्त करते हैं। हे युधिष्ठिर! जो ब्राह्मण वेदाध्ययनके अनन्तर सब कर्त्तव्य कार्य्योंको समाप्त कर पुत्र उत्पन्न और अनेक भांतिके सुख भोग करते हुए योगयुक्त होकर मुनियोंसे सेवित दुष्कर गार्हस्थ्य धर्म्मका आचरण करते हैं, वे भी मोक्षपद पाते हैं। गृहस्थाश्रमवासी पुरुषोंको सदा निज स्त्रीमें सन्तुष्ट; ऋतुकालमें गमन करना, नियोगसेवी, धूर्त्ततारहित, कुटिलताहीन, मिताहारी, देवतोंमें रत, कृतज्ञ, सत्यवादी, सरलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान्, धर्म्म करनेवाले, हव्य-कव्यमें आलस रहित, द्विजोंको सदा—सर्व्वदा अन्नदान करनेवाले, मत्सरता हीन, लिङ्गयुक्त, सब आश्रमोंके अन्नदाता और वेदविहित कर्म्मोंमें निष्ठावान होना उचित है। हे तात युधिष्ठिर! इस प्रस्तावमें महात्मा महर्षिलोग जो मधु अर्थ, तपयुक्त और सारभूत नारायणगीत श्लोकका प्रमाण देते हैं, उसे कहता हूं, सुनो। "हमारे मतमें इस लोक और परलोकमें सत्य, कोमलता, अतिथिपूजा, धर्म्म, अर्थ, निज स्त्रीसे रति और दूसरे अनेक भांतिके सुखोंको भोगना कर्त्तव्य है।" परमर्षि लोग गृहस्थाश्रमवासी पुरुषोंके वास्ते स्त्री-पुत्रोंका पालन और वेदोंको धारण अर्थात् पढ़ना और पढ़ाना रूप कार्य्यको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं। इसी भांति जो यज्ञशील ब्राह्मण गृहस्थवृत्तिको सब भांतिसे परिशोधित करके न्यायसे प्राप्त हुए धनसे जीविका निर्व्वाह करता हुआ गार्हस्थ्य आश्रममें वास करता है, वह स्वर्ग लोकमें शुद्ध फललाभ करता है। देह त्यागनेके अनन्तर उसकी सब इष्टकामना अक्षय होकर अनन्त काल पर्य्यन्त वेतन भोगी सेवककी भांति उसकी अनुगामिनी होती हैं। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मचारी लोग स्वयं मल-दिग्धाङ्ग होकर सदा गुरु सेवामें तत्पर होके कोई पढ़े हुए वेदोंको धारण करें, कोई निज मन्त्रोंका जप और कोई नित्य व्रतावलम्बी, सदा दीक्षामें तत्पर और जितेन्द्रिय होकर वेदान्त विचारके अनुसार ध्यान-योग आदि सब कर्त्तव्य कर्म्मोंको समाप्त करके ब्रह्मचर्य्याश्रममें वास करें। यजन आदि षट् कर्म्मोंसे निवृत्त होके तथा दूसरे किसी कर्म्ममें प्रवृत्त न होकर सदा गुरुकी सेवा करें और उनके निकट विनीत भावसे स्थित रहे; शत्रुओंकी सेवा वा किसीके ऊपर निग्रह प्रकाश करना उचित नहीं है। हे तात युधिष्ठिर! ब्रह्मचारियोंके वास्ते यही आश्रम पद निश्चित हुआ है।

६१ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, उत्तर कालमें सुखदायक, मङ्गलमय, अहिंसासे युक्त, लोक-सम्मत, सुखके उपायका कारण और मेरे समान अनु-

र्थोका सुख प्राप्त होनेके योग्य धर्म्मका वर्णन करिये!

भीष्म बोले, हे प्रभु भरत-सत्तम! ब्राह्मणोंको जो वानप्रस्थ आदि चार आश्रम कहे गये हैं, हिंसामें प्रवृत्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण उसके अनुवर्त्ती नहीं होते। क्षत्रियोंको जो युद्धमें विजय लाभ प्रभृति स्वर्ग प्राप्त होने योग्य अनेक भांतिके कार्य्य वर्णित हुए हैं; वह तुम्हारे पूछे हुए प्रश्नके उत्तरमें व्यवहृत नहीं होसकते; क्यों कि वे सब कर्म्म हिंसामें प्रवृत्त क्षत्रियोंके पक्षमें ही कहे गये हैं। ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर यदि कोई पुरुष क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके कर्त्तव्य कर्म्मोंका आचरण करे, तो वह मन्दबुद्धि इस लोकमें निन्दित और परलोकमें नरकगामी होता है। हे पाण्डु-नन्दन! पृथ्वीपर दास, कुत्ते, भेड़िये और अन्य पशुओंके विषयमें जो सब संज्ञा व्यवहृत होती है, ब्राह्मण यदि कुकर्म्मी हो तो उसके विषयमें भी वे ही सब संज्ञा व्यवहृत होती हैं। प्राणायाम आदि षट्कर्म्म और वानप्रस्थ आदि चारों आश्रमोंमें प्रवृत्त हिंसा रहित, चपलता हीन, स्थिरचित्त, पवित्र स्वभाववाले, तपस्यामें, रत, आत्म शुभ इच्छासे रहित और धार्म्मिक ब्राह्मण अक्षय लोकमें वास करते हैं। जो पुरुष जैसी अवस्थामें जिस स्थान पर जैसा कार्य्य करता है वह उस ही कर्म्मसे उसके अनुरूप फल पाता है। हे राजेन्द्र! महान् वेदव्यासको भी क्षत्रिय वृत्ति, कृषि कर्म्म, वाणिज्य और मृगयासे जीविका निर्व्वाहके समान ही समझना चाहिये। प्राग्भव वासना समूह ही काल-प्रेरित होकर उत्तम, मध्यम और अधम कार्य्योंको किया करती हैं, क्यों कि सब ही कालके वशमें हैं। शरीरके किये हुए प्राचीन पाप और पुण्यके फल सुख तथा दुःख आदि सब ही नाशमान हैं; परन्तु पर जन्ममें सुख आदि प्राप्त होनेके निमित्त जीव निज इच्छानुसार शुभ वा अशुभ निज कार्य्योंमें प्रवृत्त हुआ करता है।

६२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, धनुष चढ़ाना, शत्रुओंको मारना, कृषि, वाणिज्य, पशुओंका पालन और धन पानेकी इच्छासे दूसरे की सेवा करनी, ये सब ब्राह्मणोंके वास्ते अकार्य्य कहके वर्णित हुए हैं। बुद्धिमान गृहस्थको ब्रह्मविषयक षट्-कर्म्मोंका आचरण करते हुए कृत-कृत्य होकर वनमें प्रवेश करना ही उत्तम है ब्राह्मणको उचित है, कि राजाकी सेवकाई, कृषिसे प्राप्त हुए धन, वाणिज्यसे जीविका निर्व्वाह, कुटिलता, कौलटेय अर्थात् पराई स्त्रीसे व्यभिचार और कुसीद अर्थात ऋणदेना वा उसकी वृद्धि तथा व्याज लेना, इन सब कार्य्योंको परित्याग करे। महाराज! ब्रह्मबन्धु अर्थात् अधम ब्राह्मण और दुश्चरित्री, निजधर्म्मको त्यागनेवाला, वृषलीपति, धूर्त्त, नाचनेवाला, ग्रामप्रेष्य, और कुकर्म्मोंमें रत रहनेवाला ब्राह्मण शूद्रके समान है; इससे वह चाहे देवताओंके कहे हुए मन्त्रोंको जपे वा न जपे, दासोंकी भांति शूद्रोंकी पंक्तिमें भोजन करनेके योग्य होजाता है। महाराज! राजसेवक सब ही शूद्रके समान हैं; इससे उन्हें देव कर्म्मोंसे रोकना उचित है। हे राजन्! ब्राह्मण मर्य्यादा रहित, अपवित्र, क्रूरवृत्तिवाला हिंसक और निज धर्म्म तथा वृत्तिको त्याग करनेवाला हो, तो उसे हव्य कव्य आदि जो कुछ दिया जाता है, वह सब बिन दिये हुएके समान होजाता है, महाराज! इस ही कारण पितामहने ब्राह्मणोंके निमित्त पवित्रता, विनीतता और आश्रमोंका विधान किया है। जो धार्म्मिक सुशील, दयालु, सहनशील, ममतारहित, सरल कोमलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान पुरुष यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करके सोमपान करते हैं,

वेही ब्राह्मण हैं, इसके अतिरिक्त पाप कर्म्म करनेवाले ब्राह्मण कहके नहीं गिने जाते। हे महाराज पाण्डुपुत्र! धर्म्मकी इच्छा करनेवाले पुरुष शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रियोंका आसरा ग्रहण करते हैं; इस ही कारण विष्णु सब वर्णोंको शान्ति-धर्म्ममें असमर्थ समझके उनके मंगलकी इच्छा नहीं करते। इससे स्वर्गलोकमें सुख आदि प्राप्त होनेकी लालसासे चारों वर्णोंके वेदवाद, सब भांतिके यज्ञ और सब लोगोंकी समस्त क्रिया नष्ट होती हैं; तथा आश्रमस्थ पुरुष भी निज धर्म्ममें स्थित नहीं रहते। हे पाण्डुनन्दन! जिससे राजा निज राज्यमें ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंको यथा उचित आश्रमोंके धर्म्माचरण करानेकी इच्छा करेगा अब उस अवश्य आचरणीय चातुराश्रम इष्ट समस्त धर्म्मोंको सुनो। हे पृथ्वीनाथ! वेदान्तमें अधिकार रहित परन्तु पराणादिकोंसे आत्मशुभेच्छु जो शूद्रपुत्र उत्पन्न करके शरीरके सामर्थके अनुसार त्रैवर्णिक कार्य्योंका आचरण करके राजाके समीप जाहिर होता है, वैसे योग्य-शास्त्रमें अनधिकारी त्रैवर्णिक समान शूद्रके विषयमें त्यागके अतिरिक्त सब आश्रम ही विहित हुआ है। हे राजेन्द्र! इसी भांति स्वधर्म्माचारी शूद्रके वास्ते भैक्षचर्य्य रूप चौथा आश्रम भी कहा गया है। महाराज! वैश्य और क्षत्रिय भी इस धर्म्मका आचरण करें। वैश्य लोग परिश्रमके सहित पशुपालन रूप धर्म्मोंका आचरण करते हुए गृहस्थाश्रममें कृतकृत्य होकर राजाकी आज्ञानुसार क्षत्रिय आश्रमका आसरा ग्रहण करें। हे बोलनेवालोंमें मुख्य युधिष्ठिर! क्षत्रिय लोग धर्म्मपूर्व्वक राज शास्त्र और वेद पढ़के पुत्र उत्पन्न आदि कर्म्म, सोमपान, धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन, रणभूमिमें विजय लाभ और राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको आह्वान कर यथा उचित दक्षिणा प्रदान करें। हे क्षत्रियर्षभ पाण्डुपुत्र! तिसके अनन्तर प्रजापालनमें समर्थ पुत्रको अथवा शास्त्रमें कहे हुए लक्षणसे युक्त अन्य गोत्री क्षत्रियको निजसिंहासन पर बैठाके पितृयज्ञसे पितरों, यज्ञादिकोंसे देवताओं और वेदोंसे ऋषियोंको यत्नपूर्व्वक यथारीतिसे पूजा कर अन्त समयमें आश्रमान्तरमें गमन करनेकी इच्छा करें। हे राजन्! इसी भांति यथा रीतिसे सब आश्रमोंके धर्म्माचरण करनेसे क्षत्रिय सिद्धिलाभ कर सकते हैं। हे राजेन्द्र! क्षत्रिय लोग गृहस्थ धर्म्म त्याग कर अपनेको राजर्षि न समझके केवल मात्र जीवन रक्षाके निमित्त भिक्षावृत्ति अवलम्बन करें; परन्तु भोगकी अभिलाषासे वैसी वृत्तिको अवलम्बन न कर सकेंगे। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले! आर्य्य लोग कहा करते हैं, कि यह भैक्षचर्य्य धर्म्म क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंकेनिमित्त नित्य नहीं है, वे लोग इच्छानुसार इस धर्म्मका ग्रहण करते वा नहीं भी कर सकते हैं। हे राजन्! लोकसमाजमें श्रेष्ठ धर्म्म आचरण करनेवाले क्षत्रियोंको बाहुबलसे सब प्राणियोंको वशमें करना उचित है; क्यों कि वेदमें ऐसा कहा गया है, कि ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनोंके धर्म्म तथा उपधर्म्म सब राजधर्म्मसे ही उत्पन्न हुए है। महाराज! जैसे क्षुद्र जन्तुओंके पांवके चिन्ह हाथीके पांव चिन्हमें लीन होजाते है, वैसे ही सब भांतिके धर्म्मको ही राजधर्म्ममें लीन समझना चाहिये। धर्म्मजाननेवाले पुरुष अन्य सब कर्म्मोंको अल्प आश्रय और स्वल्प फलदायक कहा करते हैं; क्यों कि आर्य्य लोग महा आश्रय, अनेक भांतिसे कल्याणदायक क्षात्रको ही धर्म्म कहते हैं, और इतर धर्म्मोंको धर्म्म नहीं कहते है। हे राजन्! सब धर्म्मोंमें राजधर्म्म मुख्य है, राजधर्म्मसे ही सब वर्ण रक्षित होते हैं और राजधर्म्ममें ही सब भांतिके दान कहे गये हैं, इससे राजधर्म्म ही मुख्य है; क्यों कि आर्य्य लोग

दानको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। राजाओंके दण्डनीति रहित होनेपर खेवनेवालेसे हीन नौकाकी भांति तीनों डूबते हैं, इससे सब धर्म्म ही नष्ट होजाते है। प्राचीन चत्रियधर्मको त्यागने पर सब आश्रम-धर्म्म भी नष्ट होजाते हैं। राजधर्म्ममें ही सब भांतिका दान दीख पड़ता है, दीचाकी सब रीति राजधर्म्ममें ही कही गई है; सब विद्या राजधर्म्मसे युक्त और सब लोग ही राजधर्म्ममें प्रविष्ट हैं। हे महाराज! अधिक क्या कहूं, जैसे मृगोंका समूह नीचोंसे पीड़ित होकर उन मारनेवालोंके सुने तथा देखे हुए धर्म्मनाशका कारण होता है, वैसे ही यज्ञादि समस्त धर्म्म, कर्म्म राजधर्म्ममें नियुक्त होनेपर चोर लोग उन यज्ञादिकोंका नाश करते हैं, इससे लोग यज्ञादिकोंका अनादर करते हुए आत्मरचाके वास्ते निज धर्म्मको परित्याग करते है।

६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे पाण्डुनन्दन! लौकिक, वैदिक, चारों आश्रम और यतिधर्म्म राजधर्म्ममें ही स्थित हैं। हे भरतसत्तम! सब धर्म्म ही चात्रधर्म्मके अधीन हैं, इससे चात्रधर्म्मके अस्थिर होनेसे सब प्राणी विषरहित सर्पकी भांति नष्ट होते हैं। महाराज! आश्रमवासियोंके धर्म्म अप्रत्यच और बहुद्वार हैं, परन्तु पुण्य वचनोंसे लोक निश्चयवादी और धर्म्मतत्वको न जाननेवाले सब लोग परिणामफलको बिना विचारे ही अन्य धर्म्मसे नष्टबुद्धि होकर विरुद्ध वचनोंसे उनके उस नित्यभावको प्रकाशित किया करते हैं। हे महाराज युधिष्ठिर! जैसे गार्हस्थ्य नामक धर्म्माश्रममें तीनों वर्णोंके धर्म्मका अन्तर्भाव प्रकट हुआ है, वैसे ही इस राजधर्म्मके बीच नैष्टिक वाणप्रस्थ, यति और ब्राह्मण आदि सब धर्म्म तथा उत्तम चरित युक्त इतर धर्म्मोंके सहित सब प्राणी ही अन्तर्हित हुए हैं। हे राजेन्द्र! जिस प्रकार शूर और राजाओंकी दण्डनीति और आश्रम विहित सब धर्म्मश्रेष्ठ हैं, इस विषयको दृष्टान्तके सहित मालूम करनेके वास्ते सब प्राणियोंके ईश्वर देवताओंने प्रभु, नारायण विष्णुके निकट गमन करके उनकी उपासनाकी थी; वह उदाहरण मैंने तुमसे पहिले ही कहा है। अब जिस प्रकार साध्य, देवता, वसु, रुद्र, विश्व और मरुत आदि तथा दोनों अश्विनीकुमार आदि देव नारायणसे उत्पन्न होके चात्रधर्म्ममें प्रवृत्त हुए थे; उस धर्म्म पूरित अर्थ युक्त इतिहासको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। सुनो? हे राजेन्द्र! पहिले जब दानव रूपी समुद्र निज मर्य्यादा अतिक्रम करके देवताओंको पीड़ा देनेवाला हुआ था; उस समय पृथ्वी पर मान्धता नाम एक बलवान राजा थे। हे राजशार्दूल! राजाने आदि, मध्य और अन्तहीन देवोंके देव परमेश्वर नारायणके दर्शनकी इच्छासे यज्ञ किया; तब विष्णु इन्द्रका रूप धरके उनके दृष्टि-गोचर हुए। अनन्तर राजा मान्धाताने सभामें स्थित राजाओंके सहित उस प्रभु इन्द्रके चरण पर गिरके उनकी यथारीतिसे पूजाकी। हे युधिष्ठिर! तिसके अनन्तर महात्मा इन्द्रके सङ्ग राजसिंह मान्धाताका महातेजस्वी विष्णुके विषयमें यह महत सम्वाद हुआ था।

इन्द्र बोले, हे धार्म्मिक श्रेष्ठ! तुम्हारा क्या अभिप्राय है? तुम किस कारणसे उस अप्रमेय, अनन्त मायासे युक्त, अमित मल्लवीर्य्य आदिदेव पुरुष पुराण नारायणको देखनेकी इच्छा करते हो? हे राजन्! दूसरेकी बात तो दूर रहे, ब्रह्मा अथवा मैं भी उस विश्वरूप परम देव विष्णुका प्रत्यच दर्शन नहीं कर सकता; इससे इसके अतिरिक्त तुम्हारे मनमें दूसरी जो अभिलाष हो, वह सब पूरी करूंगा; क्योंकि